ओशो – गीता-दर्शन – भाग 3
अनन्य निष्ठा (अध्याय—7) प्रवचन—1

श्रीमद्भगवद्गीता

अथ सप्तमोऽध्यायः
श्रीभगवानुवाच
मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युग्जन्मदाश्रयः।
असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु।। 1 ।।
श्रीकृष्ण भगवान बोले, हे पार्थ, तू मेरे में अनन्य प्रेम से आसक्त हुए मन वाला और अनन्य भाव से मेरे परायण योग में लगा हुआ मुझको संपूर्ण विभूति, बल, ऐश्वर्यादि गुणों से युक्त सबका आत्मरूप जिस प्रकार संशयरहित जानेगा, उसको सुन।

धर्म मौलिक रूप से जीवन के प्रति एक प्रेमपूर्ण निष्ठा का नाम है।

जीवन के प्रति दो दृष्टियां हो सकती हैं। एक–नकार की, इनकार की, अस्वीकार की। दूसरी–स्वीकार की, निष्ठा की, प्रीति की। जितना अहंकार होगा भीतर, उतना जीवन के प्रति अस्वीकार और विरोध होता है। जितनी विनम्रता होगी, उतना स्वीकार। जैसा है जीवन, उसके प्रति एक भरोसा और ट्रस्ट। और जीवन जहां ले जाए, उसका हाथ पकड़कर जाने की संशयहीन अवस्था होती है।

कृष्ण इस सूत्र में अर्जुन से कह रहे हैं कि जो अनन्य भाव से मेरे प्रति प्रेम और श्रद्धा से भरा है!

अनन्य भाव को ठीक से समझ लेना जरूरी है।

प्रेम दो तरह के हो सकते हैं। एक प्रेम वैसा, जिसमें अन्य का भाव मौजूद रहता है, दूसरा दूसरा ही रहता है, और हम प्रेम करते हैं। पिता बेटे को प्रेम करता है, वह अनन्य नहीं होता। बेटा बेटा ही होता है, पिता पिता ही होता है। प्रेम में ऐसा नहीं होता कि पिता बेटा हो जाए, बेटा पिता हो जाए। भेद कायम रहता है। अलगाव मौजूद रहता है। दोनों के बीच दीवाल बनी ही रहती है। कितनी ही पारदर्शी हो, कितनी ही ट्रांसपैरेंट हो, पर दीवाल बनी ही रहती है। पति पत्नी को प्रेम करता है, या मित्र मित्र को प्रेम करता है, तो भी अन्य भाव मौजूद रहता है। दि अदर, वह जो दूसरा है, कितना ही अपना मालूम पड़े, फिर भी दूसरा ही होता है। कितने ही निकट हो, फिर भी एक नहीं हो जाता।

कृष्ण कहते हैं, अनन्य भाव से जो मुझे प्रेम करता! जो इस भांति प्रेम करता है कि एक ही बचे, दो न रह जाएं।

प्रार्थना और प्रेम का यही फर्क है। जहां दो कायम रहते हैं, वहां प्रेम; और जहां दो विलीन हो जाते हैं, वहां प्रार्थना।

यह प्रार्थना का सूत्र है। अनन्य भाव की दशा केवल परमात्मा के प्रति हो सकती है, किसी व्यक्ति के प्रति नहीं हो सकती है। किसी व्यक्ति के प्रति इसलिए नहीं हो सकती कि जब भी दूसरा व्यक्ति होता है, तब उसकी सीमाएं हैं। और जब हम भी उसके पास व्यक्ति की भांति जाते हैं, तो अपनी सीमाओं को साथ लेकर जाते हैं। दोनों की सीमाएं ही दीवाल बन जाती हैं, और दोनों की सीमाएं ही दोनों को दूर करती हैं।

मनुष्य के प्रेम में हम कितने ही निकट आ जाएं, निकट आकर भी दूरी कायम रहती है। बल्कि सच तो यह है, जितने निकट आते हैं, उतनी ही दूरी का एहसास गहन, स्पष्ट होता है। प्रेमी जितने निकट आते हैं, उतना ही प्रतीत होता है कि दोनों के बीच एक बड़ा फासला है, जो पार नहीं किया जा सकता; अनब्रिजेबल; कुछ है, जिस पर कोई सेतु नहीं बन सकता।

वही तो प्रेम की पीड़ा है और कष्ट है। प्रेमी दूर हो, तो इतनी पीड़ा नहीं मालूम पड़ती, क्योंकि लगता है, पास आ सकते हैं। लेकिन जब प्रेमी बिलकुल ही पास आ जाए, और पास आने का उपाय न रह जाए, तब पीड़ा सघन हो जाती है।

क्योंकि अब पास आने का कोई उपाय भी न रहा। जितने पास आ सकते थे, उतने पास आ गए। लेकिन फिर भी दूरी कायम है। वह दूरी सिर्फ प्रार्थना में ही टूटती है। और वह दूरी उसके साथ ही टूट सकती है, जिसकी कोई सीमा न हो। जिसकी भी सीमा है, उसके साथ वह दूरी नहीं टूट सकती है।

सिर्फ परमात्मा की तरफ ऐसा प्रेम हो सकता है जो अनन्य हो जाए, जिसमें दूसरा मौजूद न रहे, जिसमें दूसरा मिट ही जाए। बड़े मजे की बात है लेकिन यह, क्योंकि जब दूसरा मिटता है, तो मैं भी मिट जाता हूं। मैं भी तभी तक हो सकता हूं, जब तक दूसरा है। जब तक तू है, तभी तक मैं भी हो सकता हूं। मैं और तू एक ही चीज के दो पहलू हैं। एक को फेंक देंगे, दूसरा भी खो जाएगा। ऐसा नहीं हो सकता कि मैं एक को बचा लूं और दूसरे को छोड़ दूं।

इसलिए वेदांत बहुत अदभुत शब्द का उपयोग करता है, वह शब्द है, अद्वैत। वेदांत कहता है कि उस परम स्थिति में ऐसा नहीं कहते हम कि एक बचेगा; हम इतना ही कहते हैं कि दो न बचेंगे। वेदांत ऐसा भी कह सकता था कि उस परम स्थिति में एक ही बचेगा, लेकिन एक तो बच नहीं सकता बिना दूसरे के बचे। दूसरा रहेगा, तो ही एक हो सकता है। इसलिए वेदांत बड़े उलटे ढंग से इस बात को कहता है। वह कहता है, दो न बचेंगे, अद्वैत होगा। यह नहीं कहते कि एक बचेगा; इतना ही कहते हैं कि दो न बचेंगे।

अनेक लोग सोचते हैं कि जब दो न बचेंगे, तो एक बच जाएगा। वहां भूल होती है। उस भूल को मैं आपको साफ करना चाहता हूं।

अगर दो न बचेंगे और एक ही बच जाएगा, तो फिर वेदांत को यही कहना था कि एक बचेगा। अद्वैत की बात करनी व्यर्थ थी। कहनी थी एकत्व की बात, एक बचेगा। इसमें भी कृष्ण यह कहते हैं कि दूसरा नहीं बचेगा, दि अदर विल नाट बी, अनन्य।

लेकिन अगर आप सोचते हों कि दूसरा न बचेगा, तो मैं बच जाऊंगा, तो आप गलत सोचते हैं। दो बचें, तो ही आप बच सकते हैं। अगर दूसरा न बचा, तो आप भी खो जाएंगे। आपको बचने की भी कोई जगह न बचेगी।

अनन्य प्रेम का अर्थ है, प्रेम ही बचेगा। न तो प्रेमी बचेगा, और न प्रेयसी बचेगी। न तो प्रेमी बचेगा, न प्रेमपात्र बचेगा; प्रेम ही बच जाएगा। सिर्फ प्रेम ही रह जाएगा। दोनों के बीच में जो है, वही बचेगा, और दोनों खो जाएंगे।

ऐसे अनन्य भाव को जो उपलब्ध हो, उस व्यक्ति को ही कृष्ण कहते हैं, वही योगी है, वही भक्त है। उसे हम जो भी नाम देना चाहें। लेकिन जहां दोनों मिट जाएं, जहां एक भी न बचे।

डर लगता है कि अगर दोनों मिट जाएंगे, तो फिर तो कुछ भी न बचेगा। और मजे की बात यह है कि जब दोनों मिटते हैं, तभी उसका पता चलता है, जो सब कुछ है। और जब तक दोनों रहते हैं, तब तक हमें कुछ भी पता नहीं चलता उसका, जो है। तब तक केवल दो बर्तनों के टकराने की आवाज सुनाई पड़ती है। इसलिए सभी हमारे प्रेम कलह बन जाते हैं। ऐसा प्रेम हमारे जीवन में खोजना कठिन है, जो कलह और कांफ्लिक्ट न बन जाए। कलह बन ही जाएगी।

दो व्यक्ति प्रेम में पड़े कि जानना चाहिए कि वे कलह की तैयारी में पड़ रहे हैं। शीघ्र ही कलह प्रतीक्षा करेगी। बस, दो बर्तन आवाज करेंगे, संघर्ष करेंगे, टकराएंगे। क्योंकि जहां भी मैं मौजूद हूं और दूसरा मौजूद है, वहां डामिनेशन की कोशिश जारी रहेगी, वहां मालकियत की कोशिश जारी रहेगी। अगर एक कमरे में हम दो आदमियों को बंद कर दें, तो वे न भी बोलें, चुप भी बैठें, आंख भी बंद रखें, तो भी उनकी दोनों की कोशिश एक-दूसरे के मालिक बनने की शुरू हो जाएगी। जहां दूसरा मौजूद हुआ कि मालकियत शुरू हो गई, हिंसा शुरू हो गई। दूसरे के ऊपर हावी होने की कोशिश शुरू हो गई।

अनन्य भाव का अर्थ है, जहां कोई मालकियत का सवाल नहीं है; जहां कोई ऊपर नहीं, कोई नीचे नहीं; जहां दूसरा ही नहीं। अगर दूसरा मौजूद है, तो वह हमारा ही तथाकथित प्रेम है, उसे चाहे हम भक्ति कहें। लेकिन अगर दूसरा मालूम पड़ता है कि दूसरा है, तो वह भक्ति नहीं है, हमारे सांसारिक प्रेम का ही थोड़ा-सा सब्लिमेटेड, थोड़ा-सा शुद्ध हुआ रूप है। और उस शुद्ध हुए रूप में सारी बीमारियां शुद्ध होकर मौजूद रहेंगी। और बीमारियां जब शुद्ध हो जाती हैं, तो

और भी खतरनाक हो जाती हैं। जब बीमारी पूरी शुद्ध होती है, तो उसका डोज होमियोपैथिक हो जाता है, बहुत सूक्ष्म हो जाता है, बहुत प्राणों तक छेदता है।

सुना है मैंने कि एक बौद्ध भिक्षुणी अपने साथ बुद्ध की एक स्वर्ण-प्रतिमा रखती थी छोटी। पर बुद्ध के प्रति प्रेम वैसा ही था, जैसा कि लोगों का लोगों के प्रति होता है। अगर कोई राम का नाम ले देता, तो उसे पीड़ा होती। अगर कोई कृष्ण का नाम ले देता, तो उसे चोट पहुंचती। अगर कोई जीसस का नाम ले देता, तो वह बेचैन होती। यह कोई अनन्य भाव न था। इसमें बुद्ध भी एक दूसरे व्यक्ति थे, वह भी स्वयं और थी। और अभीर् ईष्या कायम थी। बुद्ध का प्रेम कृष्ण के प्रति प्रेम में बाधा बनता।

लेकिन यह तो समझ में आ सकता है कि बुद्ध और कृष्ण और महावीर के बीच उसेर् ईष्या मालूम पड़े। लेकिन एक बार वह चीन के एक मंदिर में ठहरी, जो मंदिर सहस्र बुद्धों का मंदिर कहलाता है। उसमें एक सहस्र बुद्ध की प्रतिमाएं हैं। बड़ी-बड़ी प्रतिमाएं, विशालकाय। जब सुबह वह अपने बुद्ध की--अपने बुद्ध की--पूजा करने बैठी, तो उसके मन में हुआ कि मैं धूप जलाऊंगी, लेकिन धुआं तो ये जो बड़े-बड़े बुद्धों की मूर्तियां खड़ी हैं, ये ले जाएंगी। मैं फूल चढ़ाऊंगी, लेकिन सुगंध तो इन बड़े-बड़े बुद्धों की मूर्तियों तक पहुंच जाएगी। उसके पास तो छोटे-से बुद्ध थे। और हमारे पास बड़ी चीज हो भी नहीं सकती। हम इतने छोटे हैं कि हमारा भगवान भी उतना ही छोटा हो सकता है। हमसे बड़ी चीज हमारे पास नहीं हो सकती। उसे हम सम्हालेंगे कैसे?

जितना छोटा उसका मन था, उससे भी छोटे उसके भगवान थे। रखी उसने मूर्ति, लेकिन उसे बड़ी पीड़ा हुई कि यह मैं जलाऊंगी तो धूप अपने बुद्ध के लिए, पहुंच जाएगी न मालूम किन के बुद्धों के लिए! तो उसने एक बांस की पोंगरी बनाई। धूप जलाई और बांस की पोंगरी से धूप के धुएं को अपने बुद्ध की नाक तक पहुंचाया।

स्वभावतः जो होना था, वह हो गया। बुद्ध का मुंह काला हो गया! सभी भक्त अपने भगवानों का मुंह काला करवा देते हैं! बुद्ध का मुंह काला हो गया। बहुत बेचैन हुई, बहुत घबड़ाई। भीड़ इकट्ठी हो गई। रोने लगी। लोगों ने कहा, पागल तूने यह क्या किया है? उसने कहा, यह सोचकर कि मेरे जलाए हुए धूप की सुगंध मेरे बुद्ध तक ही पहुंचे। उस भीड़ में खड़ा था एक भिक्षु, वह हंसने लगा। उसने कहा कि तब, जहां भी अहंकार है, वहां यह होगा ही।

यह भक्ति नहीं है, यह वही राग है। वही राग जो हम जिंदगी में बसाते हैं और एक-दूसरे का मुंह काला कर देते हैं। कलह औरर् ईष्या और हिंसा और दुख और पीड़ा, वही पूरा नर्क वहां भी मौजूद हो गया।

अनन्य भाव का अर्थ है, न भक्त बचे, न भगवान बचे, भक्ति ही बच जाए। न प्रेमी बचे, न प्रेमपात्र बचे, प्रेम ही बच जाए।

और जिस दिन ऐसी घटना घटती है--और घटती है, और किसी के भी जीवन में कभी भी घट सकती है, सिर्फ अपने को मिटाने की तैयारी चाहिए--तो जिस दिन ऐसी घटना घटती है, उस दिन फिर ऐसा नहीं होता कि यह रहा भगवान। उस दिन फिर ऐसा होता है कि ऐसी कोई जगह नहीं, जहां भगवान नहीं। फिर ऐसा कोई चेहरा नहीं, जो भगवान का चेहरा नहीं। फिर ऐसा कोई पत्थर नहीं, जो उसकी प्रतिमा नहीं। और ऐसा कोई फूल नहीं, जो उसका नैवेद्य नहीं। फिर सभी कुछ उसका है। फिर उसके अलावा कोई और नहीं है।

कृष्ण कहते हैं, अनन्य भाव से जो मुझे प्रेम करे।

और जब भी कृष्ण इस पूरी चर्चा में प्रयोग करेंगे मुझे, तब आप थोड़ा ठीक से समझ लेना। क्योंकि कृष्ण जब भी कहते हैं मुझे, तो कृष्ण के पास ईगो जैसी, अहंकार जैसी कोई चीज बची नहीं है। इसलिए कृष्ण का मैं अहंकार का सूचक नहीं है। कृष्ण के भीतर मैं को रिफर करने वाली वैसी कोई चीज नहीं बची है, जैसी हमारे भीतर है।

जब हम कहते हैं मैं, तो हमारी एक सीमा है मैं की। और जब कृष्ण कहते हैं मैं, तो मैं असीम है। फिर यह जो विराट आकाश है, यह भी उस मैं में समाया हुआ है। और ये जो फूल खिलते हैं वृक्षों के, ये भी उसी मैं में खिलते हैं। और ये जो पक्षी उड़ते हैं आकाश में, ये भी उसी मैं में उड़ते हैं। यह मैं विराट है। यह मैं किसी व्यक्ति का मैं नहीं है। यह मैं

कृष्ण का मैं नहीं है। कृष्ण का प्रयोग किया जा रहा है, केवल एक वीहिकल, एक साधन की भांति। और जब भी कृष्ण बोलते हैं, तो परमात्मा बोलता है।

इसलिए बहुत बार भूल हो जाती है। कृष्ण की गीता पढ़ते वक्त बहुत लोगों को ऐसी कठिनाई होती है कि कृष्ण भी कैसे अहंकारी आदमी रहे होंगे! अर्जुन से कहते हैं, जो मुझे अनन्य भाव से प्रेम करेगा। मुझे! अर्जुन से कहते हैं, जो सब छोड़कर मेरी शरण में आ जाएगा। मेरी शरण में! कहते हैं अर्जुन से, मुझ वासुदेव को जो सब भांति समर्पित है। मुझ वासुदेव को!

जो भी पढ़ते हैं, दो तरह की भूलें होती हैं। अगर वे कृष्ण के प्रति रागयुक्त हैं, तो वे समझते हैं कि कृष्ण, वासुदेव नाम के जो व्यक्ति हैं, उनके प्रति समर्पण करना है। यह भी भूल है, राग की भूल है। जो कृष्ण के प्रति रागयुक्त नहीं हैं, उन्हें लगता है, कृष्ण भी कैसे अहंकारी हैं; कहते हैं, मेरी शरण में आ जाओ! पर दोनों की भूल एक ही है। दोनों मान लेते हैं कि कृष्ण का मैं अहंकार का सूचक और प्रतीक है।

जिसने भी कृष्ण के मैं को ठीक से न समझा, वह पूरी गीता को ही समझने में असफल हो जाएगा। इस एक छोटे-से शब्द पर गीता का पूरा सार, पूरी कुंजी निर्भर करती है। अगर आप कृष्ण के मैं को न समझ पाए, तो पूरी गीता को ही आप न समझ पाएंगे। क्योंकि गीता कृष्ण के द्वारा कही गई है, कृष्ण से नहीं कही गई है। गीता कृष्ण से प्रकट हुई है, कृष्ण गीता के रचयिता नहीं हैं। गीता कृष्ण से बही है, लेकिन कृष्ण गीता के स्रोत नहीं हैं; स्रोत तो परम ऊर्जा है, परम शक्ति है। स्रोत तो भगवान है।

इसलिए कृष्ण को अगर गीताकार बार-बार कहता है, भगवानुवाच, भगवान ने ऐसा कहा, तो थोड़ा सोचकर, समझकर कहा है। यह भगवान कहना कृष्ण को, सिर्फ इसी अर्थ में है कि कृष्ण ने नहीं कहा, भगवान ने कहा; कृष्ण से कहा है, कृष्ण के द्वारा कहा है।

भगवान को भी चलना हो, तो हमारे पैरों के अतिरिक्त उसके पास अपने कोई पैर नहीं। और भगवान को भी बोलना हो, तो हमारी वाणी के अतिरिक्त उसके पास अपनी कोई वाणी नहीं। और भगवान को भी देखना हो, तो हमारी आंखों के अतिरिक्त उसके पास देखने की कोई आंख नहीं।

लेकिन जब किसी आंख से भगवान देखता है, तो वह आंख आदमी की नहीं रह जाती। हां, जो नहीं जानते, उनके लिए तो फिर भी वह आंख वही रहेगी, जो आदमी की थी। कृष्ण को जो आंख मिली है, वह तो मां-बाप से मिली है। लेकिन आंख के पीछे से जो देख रहा है, वह परमात्मा है। अगर आप आंख पर रुक गए, तो समझेंगे कि मां-बाप से मिली हुई आंख है। कृष्ण को जो गला मिला है, वह तो मां-बाप से मिला है। लेकिन जो वाणी है, वह परमात्मा की है। अगर आप गले पर रुक गए, तो वाणी को न पहचान पाएंगे।

इसलिए कृष्ण जिस सहज मन से कहते हैं कि मेरी शरण आ; ध्यान रखें, कोई अहंकारी इतने सहज भाव से नहीं कह सकता कि मेरी शरण आ।

अगर अहंकारी को आपको अपनी शरण बुलाना है, तो बड़ी तरकीबों से बुलाएगा। अहंकार कभी भी इतना सीधा-साफ नहीं होता। अहंकार बहुत चालाक है। अहंकारी कभी न कहेगा कि मेरी शरण आ, क्योंकि अहंकारी भलीभांति जानता है कि अगर किसी से यह कहा कि मेरी शरण आ, तो उस आदमी के अहंकार को चोट लगेगी और वह शरण न आ सकेगा। बल्कि वह आदमी आपको अपनी शरण में लाने की कोशिश करेगा।

इसलिए अहंकारी आदमी दूसरे के अहंकार को जरा भी चोट नहीं पहुंचाता; परसुएड करता है, फुसलाता है, राजी करता है, खुशामद करता है। उसके अहंकार को इस तरह राजी करता है कि वह शरण में भी आ जाए और अहंकार को चोट भी न लगे।

लेकिन कृष्ण जितनी सरलता से और सहजता से कहते हैं, अगर ऐसा कहें तो पैराडाक्सिकल मालूम पड़ेगा, उलटबांसी मालूम पड़ेगी कि कृष्ण जितनी विनम्रता से घोषणा करते हैं कि मेरी शरण आ, वह खबर दे रही है कि पीछे कोई अहंकार नहीं है।

अहंकार कभी भी इतना सरल नहीं होता। अहंकार हमेशा दांव-पेंच करता है, जटिल होता है। तिरछे रास्तों से यात्रा करता है; सीधा रास्ता अहंकार नहीं लेता। क्योंकि अहंकार को अनुभव है कि सीधे रास्ते से दूसरे के अहंकार को कभी भी झुकाया नहीं जा सकता।

लेकिन कृष्ण बड़ी सरलता से कहते हैं कि मुझे जो अनन्य भाव से समर्पित है अर्जुन, वही योग को उपलब्ध होता है। जिसकी निष्ठा मुझमें पूरी है, असंशय, वह असंदिग्ध ज्ञान को उपलब्ध होता है।

असंशय निष्ठा को भी थोड़ा-सा खयाल में ले लेना चाहिए।

निष्ठा भी दो तरह की हो सकती है। ससंशय निष्ठा होती है। जिसको विज्ञान में हाइपोथीसिस कहते हैं, वह ससंशय निष्ठा है। एक वैज्ञानिक प्रयोग करता है एक हाइपोथेटिकल भरोसे, एक विश्वास के साथ। जब प्रयोग करता है, तो एक विश्वास को लेकर प्रयोग करता है, लेकिन पूरे संशय के साथ। संशय रखता है कायम अपने भीतर, ताकि जांच कर सके कि बात सही निकली या नहीं निकली। अपने को खो नहीं देता; अपने को कायम रखता है। संशय को भी कायम रखता है। डाउट को मौजूद रखता है। और फिर भी प्रयोग करता है। प्रयोग करेगा, तो निष्ठा जरूरी है। प्रयोग तो बिना निष्ठा के न हो सकेगा। एक कदम भी बिना निष्ठा के नहीं उठाया जा सकता।

अगर आप यहां से घर वापस लौटेंगे, तो आप इस निष्ठा से ही लौट रहे हैं कि घर उसी जगह होगा, जहां आप छोड़ आए थे। पता आपको हो या न हो, लेकिन यह निष्ठा अंदर खड़ी है कि घर वहीं मिलेगा, जहां छोड़ आए थे। यह निष्ठा पीछे काम कर रही है। कल सुबह जब आप उठेंगे, तो इसी निष्ठा से कि सूरज निकल आया होगा, जैसा कि कल निकला था।

जरूरी नहीं है। किसी दिन तो ऐसा होगा कि सूरज नहीं निकलेगा। एक दिन तो ऐसा जरूर होगा कि सूरज नहीं निकलेगा। वैज्ञानिक कहते हैं, कोई चार हजार साल में ठंडा हो जाएगा। चार हजार साल बाद किसी शरीर में आप जरूर होंगे कहीं, और किसी दिन सुबह उठेंगे और सूरज नहीं निकलेगा।

वैज्ञानिक निष्ठा तो रखता है कि सूरज निकलेगा, लेकिन ससंशय। संशय कायम रखता है कि हो सकता है कि वह दिन आज ही हो, कि न निकले। वह दिन कभी भी हो सकता है। प्रयोगशाला में प्रवेश करता है, तो निष्ठा तो रखता है कि प्रकृति अपने पुराने नियम से ही चलती होगी। कल भी आग ने जलाया था, आज भी जलाएगी। लेकिन जरूरी नहीं है। क्योंकि कोई पक्का कैसे हो सकता है कि कल आग ने जलाया था, तो आज भी जलाएगी! तो वैज्ञानिक एक हाइपोथेटिकल बिलीफ, एक ससंशय निष्ठा के साथ प्रयोगशाला में प्रवेश करता है।

विज्ञान में प्रवेश करना हो, तो ससंशय निष्ठा ही मार्ग है। लेकिन धर्म में अगर प्रवेश करना हो, तो निःसंशय निष्ठा मार्ग है। निःसंशय निष्ठा बड़ी और बात है। उसे थोड़ा समझ लेना जरूरी है।

निःसंशय निष्ठा का अर्थ यह है कि अगर विपरीत भी हो, अगर आज सूरज न भी निकले, तो भी जो निष्ठावान, जिसकी कृष्ण बात कर रहे हैं, वैसा निष्ठावान व्यक्ति समझेगा कि मेरी आंख में कोई खराबी है; सूरज तो निकला ही होगा। आप फर्क समझ लेना। अगर कल सुबह ऐसा हो कि सूरज न निकले, तो निष्ठावान व्यक्ति कहेगा, मेरी आंख में कोई खराबी है, सूरज तो निकला ही होगा। अगर निष्ठावान व्यक्ति घर वापस पहुंचे और पाए कि उसका घर वहां से हट गया है, तो निष्ठावान व्यक्ति कहेगा, घर तो वहीं होगा, मैं ही भटक गया हूं।

फर्क यह है, संशय वाला व्यक्ति हमेशा संशय बाहर आरोपित करेगा और निःसंशय व्यक्ति संशय को सदा अपने पर आरोपित करेगा। संशयवान व्यक्ति सदा भूल कहीं और खोजेगा; निःसंशय व्यक्ति सदा भूल अपने में खोजेगा।

निष्ठावान, संशयहीन निष्ठावान व्यक्ति अपने अतिरिक्त जगत में कहीं भूल नहीं देखेगा। अगर भूल होगी कहीं, तो मुझमें होगी; और कहीं नहीं। जीवन में जो भी घटेगा, चाहे सुख, चाहे दुख, उससे उसकी निष्ठा में कोई डांवाडोल स्थिति, कोई कंपन पैदा नहीं होगा। अगर जीवन पूरा दुख भी बन जाए, तो भी वैसा व्यक्ति जानेगा कि कहीं उसकी ही भूल है; परमात्मा की कृपा में कोई अंतर नहीं है। कहीं मैं ही चूक रहा हूं; उसका प्रसाद तो बरस रहा है। कहीं मेरा ही बर्तन उलटा रखा होगा; उसकी वर्षा तो जारी है।

संशयवान व्यक्ति का बर्तन भी उलटा रखा हो, वर्षा भी हो रही हो, तो भी वह यही कहेगा कि मुझमें पानी नहीं भर रहा है, इससे साफ जाहिर है कि वर्षा नहीं हो रही।

इस भेद को ठीक से समझ लेना, क्योंकि यह भेद धर्म में प्रवेश में अंतर लाएगा। क्योंकि धर्म का मौलिक आधार व्यक्ति का रूपांतरण है। विज्ञान का मौलिक आधार वस्तु का रूपांतरण है। विज्ञान की खोज वस्तु की खोज है, धर्म की खोज व्यक्ति की खोज है। इसलिए उचित है कि विज्ञान वस्तु के भीतर भूल-चूक देखे और उचित है कि धर्म व्यक्ति के भीतर भूल-चूक देखे।

अगर आपका डाउट अदर ओरिएंटेड है, दूसरे पर ठहरा हुआ है, तो आपका चित्त वस्तु के संबंध में बहुत-सी बातें खोज लेगा, लेकिन स्वयं के संबंध में कुछ भी न खोज पाएगा। इसलिए धर्म और विज्ञान के आयाम, डायमेंशन अलग हैं।

कृष्ण कहते हैं, जो निःसंशय होकर मुझमें निष्ठा रखता है!

बड़ी कठिन है यह बात। निःसंशय होकर निष्ठा कैसे रखी जा सकती है! अगर निःसंशय होकर हम निष्ठा रखेंगे--यह संभव ही कहां मालूम पड़ता है! आज किसी भी व्यक्ति से कृष्ण यह कहेंगे, तो वह कहेंगे कि आप असंभव की आकांक्षा करते हैं। यह नहीं हो सकेगा। मैं कैसे सब छोड़ दूं?

लेकिन जब कृष्ण ने अर्जुन से यह कहा था, तो अर्जुन ने ऐसा सवाल नहीं उठाया। यह थोड़ा विचारणीय है। अर्जुन उस जमाने के सुशिक्षिततम लोगों में से एक था। सभ्यतम, कुलीनतम, उस समाज में जो श्रेष्ठतम जन थे, उन श्रेष्ठियों में, उन आर्यों में एक था। कृष्ण ने बहुत बार यह कहा है कि तू सब शंकाएं छोड़कर मुझ पर निष्ठा कर ले। अर्जुन जरूर यह कहता है कि मन बड़ा चंचल है, मन ठहरता नहीं। लेकिन कहीं भी अर्जुन यह नहीं कहता--यह बड़ी आश्चर्य की बात है--कि मैं कैसे आप पर निष्ठा कर लूं? निष्ठा कैसे संभव है?

अर्जुन यह जरूर कहता है कि मेरी कमजोरियां हैं। आप जो कहते हैं, ठीक कहते हैं; ठीक ही कहते होंगे। मेरी कमजोरियां हैं। मैं न कर पाऊं। शायद न कर पाऊं। लेकिन अर्जुन एक भी बार यह सवाल नहीं उठाता, जो कि बहुत जरूरी है। हमारे मन में उठेगा। और अर्जुन तो उस समय का श्रेष्ठतम व्यक्ति था। आज अगर हम छोटे बच्चे से भी पूछेंगे, तो उसके मन में भी उठेगा कि भरोसा! यह तो ब्लाइंड फेथ हो जाएगा, यह तो अंधा विश्वास हो जाएगा! यह तो कृष्ण अंधेपन की शिक्षा दे रहे हैं। हमारे मन में यह उठता है। अर्जुन के मन में नहीं उठता। कुछ कारण होंगे। कुछ कारण हैं।

सबसे बड़ा कारण यह नहीं है कि आदमी बदल गया। सबसे बड़ा कारण यह है कि आदमी की कंडीशनिंग, संस्कार बदल गए। आदमी तो वही है। जब आपके मन में यह सवाल उठता है कि यह तो अंधेपन की शिक्षा है। हम भरोसा कर लें आंख बंद करके! शंका भी न करें, संदेह भी न करें! तब तो हम मिटे।

असल में आपको मिटाने के लिए ही सारा आयोजन है। अगर धर्म के जगत में प्रवेश करना है, तो स्वयं को मिटने की, मिटाने की सामर्थ्य चाहिए पड़ेगी। अगर आप अपने को बचाते हैं, तो फिर भीतर प्रवेश न हो सकेगा।

इसलिए द्वार पर ही लिखा है कि जो निःसंशय श्रद्धा कर सके, वह भीतर आ जाए। जिसकी अभी शंका मौजूद हो, वह थोड़ा और घूमे; मंदिर के बाहर थोड़े और चक्कर लगाए। वह थोड़ा और दौड़े। वह और अपनी शंकाओं को थोड़ा थका ले। और जब शंका से कुछ न पाए...। और आदमी ने शंका से कुछ पाया नहीं। हां, वस्तुएं मिलेंगी। धन मिलेगा,

पद मिलेगा। लेकिन पाने जैसा कुछ भी न मिलेगा। जिस दिन शंका थक जाए और ऐसा लगे कि शंका से कुछ मिला नहीं, उस दिन भीतर प्रवेश कर आना। उस दिन भीतर चले आना उस मंदिर के, जहां शंका को बाहर रख आना पड़ता है।

आदमी वही है, संस्कार बदले हैं। आज की पूरी शिक्षा विज्ञान की है, इसलिए सवाल उठता है। सवाल आप नहीं उठा रहे हैं; शिक्षा उठा रही है। क्योंकि सारी शिक्षा डाउट की है; सारी शिक्षा संदेह की है। छोटे-से बच्चे को हम संदेह करना सिखा रहे हैं। जरूरी है विज्ञान की शिक्षा के लिए, अन्यथा विज्ञान खड़ा नहीं होगा।

इसीलिए भारत में विज्ञान खड़ा नहीं हो सका। क्योंकि जिस देश ने गीता में भरोसा किया, वह देश विज्ञान पैदा नहीं कर पाएगा। लेकिन पश्चिम में धर्म डूब गया। क्योंकि जो चिंतना संदेह में भरोसा करेगी, वह धर्म से वंचित रह जाएगी।

और अगर लंबे हिसाब में तौला जाए, तो शायद हम नुकसान में नहीं हैं। और शायद इस सदी के पूरे होते-होते हमें पता चलेगा कि हम फायदे में हैं। कभी-कभी उलटा हो जाता है। अभी तो हमें लगता है कि हम बड़े नुकसान में पड़ गए हैं। न विज्ञान है, न टेक्नीक है हमारे पास। गरीबी ज्यादा है, मुसीबत ज्यादा है। लेकिन कोई नहीं कह सकता कि इस सदी के घूमते ही, इस सदी के जाते ही पश्चिम भारी मुसीबत में नहीं पड़ जाएगा। पड़ जाएगा, पड़ रहा है।

क्योंकि संदेह न करके हमने बाहर की बहुत-सी चीजें खोईं, लेकिन श्रद्धा रखकर हमने भीतर का एक द्वार खुला रखा। पश्चिम ने संदेह करके बाहर की बहुत चीजें पाईं, लेकिन भीतर जाने वाले द्वार पर जंग पड़ गई, और वह बिलकुल बंद हो गया। आज कितना ही ठोंको, पीटो, खटखटाओ, वह खुलता हुआ मालूम नहीं पड़ता। हालत ऐसी हो गई कि भीतर जाने वाला कोई द्वार भी है, ऐसा भी मालूम नहीं पड़ता। द्वार इतनी मजबूती से बंद है, इतने दिनों से बंद है कि करीब-करीब दीवाल हो गया है। कहीं कोई द्वार नहीं मालूम पड़ता।

याद आता है मुझे कि एक बार पिछले महायुद्ध के समय चीन में ऐसा हुआ। दो भाइयों का बंटवारा हुआ। बाप मरणशय्या पर था, तो बाप ने बंटवारा कर दिया। एक-एक लाख रुपए दोनों भाइयों के हाथ में लगे। एक भाई ने तो बहुत मेहनत करनी शुरू कर दी रुपयों से। एक-एक पैसा बचाकर, जीवन दांव पर लगाकर कमाने में लग गया। दूसरे भाई ने तो लाख रुपए की शराब पी डाली। सिर्फ शराब की बोतलें भर उसके पास इकट्ठी हो गईं।

स्वभावतः जिसने शराब पी थी, सारे लोगों ने कहा कि बर्बाद हो गए, मिट गए। लेकिन वहां कोई सुनने वाला भी नहीं था। वह तो इतना पीए रहता था कि कौन बर्बाद हो गया! कौन मिट गया! किसके संबंध में बात कर रहे हो! कुछ पता नहीं था। पर बोतलें जरूर इकट्ठी होती चली गईं।

और जिंदगी बड़े मजाक करती है कभी। और मजाक हुआ। जिस भाई ने लाख रुपया धंधे में लगाया था, उसका तो लाख रुपया डूब गया। और युद्ध आया, और शराब की बोतलों के दाम बहुत बढ़ गए। और उस आदमी ने सब बोतलें बेच लीं। और कहते हैं कि लाख रुपए उसको वापस मिल गए। लाख रुपए की बोतलें बेच लीं उसने।

जिंदगी कभी-कभी अनूठे मजाक करती है। करीब-करीब यह सदी पूरी होते-होते ऐसा ही मजाक जिंदगी में घटित होने वाला है।

यह पूरब ने भीतर का एक द्वार तो खुला रखा, बाहर का सब कुछ खो दिया। निश्चित ही, हम नासमझ सिद्ध हुए। हमारे पास कुछ है नहीं। हमने भी एक तरह की शराब पी, जिसको भीतरी शराब कहें। और ऐसा मैं कह रहा हूं, ऐसा नहीं। जो भी जानने वाले हैं, वे यही कहते रहे हैं कि एक शराब है, एक नशा है, एक मदहोशी है भीतर की, जहां डूबकर कोई वापस लौटता नहीं।

उमर खय्याम ने उसी के गीत गाए हैं। लेकिन लोग समझे नहीं कि उमर खय्याम तो एक सूफी फकीर था। लोग समझे कि वह इसी मधुशाला की बात कर रहा है, जो बाजार में खुली हुई है। वह तो उस मधुशाला की बात कर रहा है, जो भीतर खुलती है। वह तो उस पीने और पिलाने की बात कर रहा है, जो परमात्मा का नशा है।

भीतर का यह द्वार तो श्रद्धा से खुलता है। श्रद्धा का अर्थ है, असंशय निष्ठा। लेकिन शिक्षण पूरा विज्ञान का है, इसलिए हमारा मन संदेह के सवाल उठाता है। स्वाभाविक! उस जमाने में विज्ञान का कोई शिक्षण न था, शिक्षण धर्म का था, इसलिए अर्जुन ने कोई सवाल नहीं उठाया।

अभी मैं एक छोटे-से बच्चे का जीवन पढ़ रहा हूं। उस बच्चे ने बड़ी हैरानी का प्रयोग किया। बारह साल का लड़का घुमक्कड़ जिप्सियों के साथ भाग गया। उसके पिता ने उसको सहायता दी। कहना चाहिए, पिता ने उसे भगाया जिप्सियों के साथ। यह जानने के लिए कि छः साल वह बच्चा जिप्सियों के साथ रहेगा, तो जिप्सियों की आंतरिक जिंदगी के रहस्य पता लगा लाएगा। क्योंकि जिप्सियों के संबंध में जो भी लिखा गया है, वह बाहर के लोगों की लिखावट है। और जब तक हम किसी को भीतर से न जानें, सच्चाइयों का कोई पता नहीं चलता।

तो उस बच्चे को भगा दिया जिप्सियों के साथ। जिप्सियों का एक कबीला ठहरा है गांव के बाहर। उसके बच्चों से दोस्ती करवा दी बारह साल के बच्चे की। और उस बारह साल के बच्चे को मुसीबत की दुनिया में यात्रा पर भेज दिया। वह बच्चा भाग गया। उस बच्चे ने जो अपने संस्मरण लिखे हैं, उसमें से एक बात इस संबंध में आपसे कहना चाहता हूं।

जिप्सियों के पास कोई मकान नहीं हैं। घुमक्कड़ कौम है, खानाबदोश। यह खानाबदोश शब्द अच्छा है। इसका मतलब होता है, जिसका मकान खुद के कंधे पर है--खानाबदोश। दोश यानी कंधा, खाना यानी मकान। और जिसके कंधे पर ही अपना मकान है, उसको कहते हैं खानाबदोश।

तो जिप्सियों का तो कोई घर नहीं है। आज इस गांव में, कल दूसरे गांव में, परसों तीसरे गांव में। घुमक्कड़ कौम है। निश्चित ही, प्राइवेसी की कोई धारणा जिप्सियों में नहीं है, एकांत की। हो भी नहीं सकती। रात खुले आकाश के नीचे सोते हैं सब। एकांत का कोई सवाल भी नहीं है। प्रेम भी करना हो, तो खुले आकाश के नीचे ही करना पड़ेगा। कोई उपाय नहीं है।

यह बच्चा पहले ही दो-चार-आठ दिनों में जब जिप्सियों के साथ रहा, तो उसे जब भी पेशाब करनी हो, तो वह अकेले में जाकर किसी वृक्ष के नीचे बैठ जाए। जिप्सी बच्चों ने उसे बहुत बुरा माना और कहा कि तुम बहुत गलत बात करते हो! उसने कहा, इसमें कौन-सी गलत बात है? उन बच्चों ने कहा, यह बिलकुल गलत बात है। सब काम बांटकर करने चाहिए। उसने कहा, अजीब पागलपन की बात कर रहे हो! इसको कैसे बांटा जा सकता है? उन्होंने कहा, हम भी साथ दे सकते हैं, हम भी कोआपरेट कर सकते हैं। जब तुम जाते हो, हमसे भी कह सकते हो कि तुम भी चलो। लेकिन तुम अकेले ही चले जाते हो! उस बच्चे ने कहा, लेकिन हमारे घर में तो बाथरूम होता है। और हम अंदर जाकर बंद करके ही अपनी शंका का निवारण करते हैं। वे जिप्सी बच्चे बहुत हंसे। वे बोले, कैसे नासमझ हो तुम सब! क्योंकि कोई भी आदमी उठकर बाथरूम में जाएगा, तो सबको पता है कि वह क्या करने गया! जब पता ही है, तो छिपाने का फायदा क्या है!

इस बच्चे को बड़ी कठिनाइयां आईं, क्योंकि इसकी समझ में ही न आए। क्योंकि जिप्सियों के सोचने का ढंग और, उनके संस्कार और। ग्रुप माइंड! इंडिविजुअल का कोई सवाल नहीं है, व्यक्ति का कोई सवाल नहीं है, समूह मन है। जो भी आएगा, बांटकर खाएंगे। जो भी मुसीबत होगी, उसको भी बांट लेंगे। जो भी सुख आएगा, उसको भी बांट लेंगे। साथ जीएंगे। तो खयाल ही नहीं है कि कोई आदमी व्यक्तिगत कोई काम भी कर सकता है। तो बच्चों को सवाल उठा कि तुम व्यक्तिगत जाकर कोई काम कैसे कर सकते हो? यह असंभव है।

हमारे मन में वही सवाल उठते हैं, जो हमारा संस्कार हो जाता है।

जैसे जिप्सियों के साथ रहकर इस बच्चे को पता चला कि चोरी वे बुरा नहीं मानते हैं। हां, उस चोरी को बुरा मानते हैं, जिसको कोई संग्रह करे। जैसे कोई आदमी चोरी कर लाए और संग्रह कर ले, चुपचाप छिपा ले और सबको न बांटे, तो उसे बुरा मानते हैं। या कोई ऐसी चीज चुरा लाए, जिसका आज उपयोग न हो, छः महीने बाद उपयोग हो, तो उसको भी बुरा मानते हैं। लेकिन कोई आदमी जाकर खेत से घास तोड़ लाए, तो जिप्सी उसे बुरा नहीं मानते।

और जब पहली दफा इस बच्चे के सामने पुलिस आई और जिप्सियों को पकड़ा, क्योंकि उन्होंने अपने घोड़ों के लिए किसी खेत से घास काट लिया था। तो जिसने काटा था, उसने कहा कि इसमें चोरी कहां है? घास तुम तो नहीं बढ़ाते; परमात्मा बढ़ाता है। जमीन परमात्मा की, आकाश परमात्मा का, सूरज परमात्मा का, घोड़े परमात्मा के, तुम परमात्मा के, हम परमात्मा के। तुमने कोई घास तो बढ़ाया नहीं! हां, अगर हम घास इकट्ठा कर रहे हों, घोड़ों को खिलाने से ज्यादा इकट्ठा कर रहे हों, तो हम जुर्मी हैं। लेकिन इसमें चोरी कैसी?

जिप्सी को समझ में नहीं आता कि इसमें चोरी कैसी। क्योंकि व्यक्तिगत संपत्ति की धारणा उसके मन में नहीं है। व्यक्तिगत संपत्ति जैसी कोई चीज ही नहीं है। धारणा भी कैसे होगी? हमारे मन में खयाल उठता है, चोरी हो गई, क्योंकि हमारा संस्कार है एक।

आज हम सारी दुनिया में विज्ञान का संस्कार दे रहे हैं बच्चों को। हम सबके मन में संदेह का संस्कार है। संशय हमारे द्वार पर खड़ा है। संशय के बिना हम एक कदम चलते नहीं। लेकिन कृष्ण ने जब यह शिक्षा दी, तब आदमी के द्वार पर संशय की जगह श्रद्धा थी। पूरा द्वार बदल गया, आदमी वही है।

इसलिए आप जब गीता को पढ़ते हैं, आपके काम नहीं पड़ेगी। क्योंकि आपके दरवाजे पर जो पहरेदार खड़ा है, वह बिलकुल बदल गया है। वह गीता को भीतर प्रवेश ही न करने देगा। आप रट भी लेंगे, कंठस्थ भी कर लेंगे, दोहराने भी लगेंगे, लेकिन हृदय के भीतर गीता का कोई प्रवेश न होगा। क्योंकि वह प्रवेश तभी हो सकता है, जब कृष्ण की शर्त पूरी हो। वे कहते हैं, असंशय! लेकिन असंशय कैसे आएगा? क्या मैं जबर्दस्ती कोशिश कर लूं कि संशय को छोड़ दूं?

नहीं; आज इसका कोई उपाय नहीं है कि हम कोशिश करके संशय को छोड़ दें। आज कोशिश करके संशय नहीं छोड़ा जा सकता। आज तो आप संशय पूरी तरह से कर लें, तो ही संशय छूट सकता है।

इतना पूरी तरह से संशय कर लें कि थक जाएं, एक्झास्टेड; ऊब जाएं, घबड़ा जाएं। और संशय इतना कर लें कि कहीं न पहुंचें सिवाय नर्क के, दुख ही दुख चारों तरफ खड़ा हो जाए। इतना संशय कर लें कि कांटे ही कांटे संशय के सब तरफ से छिद जाएं और भीतर जिंदगी में कोई सुख का फूल न खिले। संशय कर लें पूरा, टोटल। तो शायद; तो शायद संशय से ऊब जाएं और पार हो जाएं। तो शायद संशय किसी क्षण में गिर जाए और आप बाहर हो जाएं। और वह निःसंशय स्थिति बन जाए, जो कृष्ण कहते हैं, पहली शर्त है। और इतना निःसंशय हो जा अर्जुन, तू फिर इतना निःसंशय होकर मुझे सुन।

बड़ी मजे की बात है। सुनने के लिए इतनी शर्त! कहते हैं, इतना निःसंशय होकर, इतना अनन्य होकर फिर तू मुझे सुन। अगर सुनने के ऊपर इतनी शर्त है, तब तो हममें से कोई भी सुनने में समर्थ नहीं है।

हम सब सोचते हैं कि हम सब सुनने में समर्थ हैं, क्योंकि कान हमारे पास हैं। क्योंकि ध्वनि हमारे कान में पहुंच जाती है, तो हम समझते हैं, हम सुनने में समर्थ हैं। हम सब सुनने में समर्थ नहीं हैं। कान पर आवाज पड़ती है जरूर, ध्वनि पैदा होती है जरूर, लेकिन सुनना और आंतरिक घटना है।

कृष्ण कहते हैं, इतनी शर्त तू पूरी कर, अनन्य भाव से भर जा; असंशय निष्ठा हो तेरी मुझमें, तो तू मुझे सुन पाएगा। फिर सुन! क्योंकि फिर मैं तुझे राज खोल सकता हूं वे, जो बुद्धि के लिए नहीं खोले जा सकते। फिर मैं वे रहस्य खोल सकता हूं तेरे समक्ष, जो केवल हृदय के समक्ष खोले जाते हैं, तर्क के समक्ष नहीं खोले जाते। फिर मैं तुझसे कह सकूंगा वह आंतरिक बात, जो केवल प्रेम में ही कही जाती है, जो विवाद में नहीं कही जाती।

और जिंदगी में गहरे जो सत्य हैं, वे विवाद में नहीं कहे जाते। वे प्रेम में ही कहे जा सकते हैं। एक सिम्पैथेटिक एटीटयूड, एक सहानुभूति से भरे हुए हृदय से ही कहे जा सकते हैं। जीवन के जो भी गहन सत्य हैं, वे अनन्य भावदशा में ही कहे जा सकते हैं, क्योंकि तभी कम्युनिकेशन, तभी एक बात दूसरे तक पहुंचती है।

अन्यथा हम, जैसे युद्ध के मैदान पर सिपाही खड़े होते हैं, ऐसे बोलने और सुनने वाले भी खड़े हों। और अक्सर ऐसे ही खड़े होते हैं, अपनी रक्षा में तत्पर! दोनों के द्वार बंद। आवाज गूंजती है, संवाद नहीं होता। शब्द बिखर जाते हैं, कोई प्रतीति नहीं आती। बहुत सुना जाता है, कुछ पल्ले नहीं पड़ता; सब खाली-खाली रह जाता है।

यह शर्त कीमती है। और यह शर्त इसलिए है कि कृष्ण कुछ ऐसी बात कहना चाहते हैं अर्जुन से, जो तर्क और संशय से भरे चित्त को नहीं कही जा सकती। सिर्फ उसे ही कही जा सकती है, जो बिलकुल खुलकर बैठा है, ओपन। जिसकी कोई क्लोजिंग नहीं है। जिसका कोई डिफेंस, जिसकी कोई सुरक्षा नहीं है। जो इतने भरोसे से भरा है कि अगर उसकी छाती में छुरा भी भोंक दो, तो वह उस छुरे को भी स्वीकार कर लेगा। अनन्य प्रेम, छाती में छुरा भी भोंक दो, तो स्वीकार कर लेगा। और सोचेगा कि मेरे हित में होगा, इसीलिए। जो अपनी छाती में छुरा लेने को तैयार है, उसी की छाती में सत्य भी प्रवेश करते हैं।

कबीर ने कहा है, जो घर बारे आपना, चले हमारे संग। तैयारी हो अगर अपने घर को जला डालने की, तो आओ मेरे साथ।

कौन-सा घर? कबीर ने किसी का घर कभी जलवाया नहीं। एक और घर है हमारे चारों तरफ सुरक्षा का, जैसे कि सिपाही अपने चारों तरफ जिरह-बख्तर बांधकर युद्ध के मैदान पर जाता है। हम सब भी एक बड़ा जिरह-बख्तर अपने चारों तरफ बांधे हुए तैयार रहते हैं कि कहीं कोई ऐसी बात प्रवेश न कर जाए कि हमारी सुरक्षा खतरे में पड़ जाए। कहीं कोई ऐसा सत्य भीतर न चला जाए कि हमारी जिंदगी हमें बदलनी पड़े। कहीं कोई ऐसी प्रेरणा न मिल जाए कि हमें कुछ और होना पड़े। कहीं कोई हमारा जो इस्टैब्लिश्ड, हमारा जो व्यवस्थित जगत है, उसमें कोई गड़बड़ न हो जाए।

एक मित्र परसों मेरे पास आए थे। उन्होंने कहा कि मैं आपकी बात सुनने आना चाहता हूं, लेकिन जब से आपने संन्यास की बात की है, तब से मन में भय लगता है। क्या भय की बात है? उन्होंने कहा, भय लगता है कि कहीं किसी दिन मुझे भी समझ में आ जाए कि संन्यास लेना है, तो फिर क्या होगा?

अब ये आदमी अगर मुझे सुनने आए होंगे--जरूर आए होंगे, सदा आते हैं--तो जिरह-बख्तर बांधकर बैठे होंगे कि कहीं कोई बात भीतर न चली जाए। कैसा मजा है! बात सुननी भी है और भीतर नहीं भी जाने देनी है, तो व्यर्थ मेहनत क्यों करनी? मत सुनें, बेहतर है। सुनें, तो फिर भीतर प्रवेश करने दें।

तो कृष्ण कहते हैं, यह पहली शर्त है।

पुराने समस्त गुरु शर्तें पहले लगा देते थे। कहते थे, पहले ये शर्तें पूरी कर दो, फिर हम तुमसे कहेंगे। क्योंकि कहीं ऐसा न हो कि तुम बेकार हमारा समय जाया करो।

अगर सूफी फकीर के पास आप सीखने जाएं, तो कहेगा कि दो साल घर में झाड़ू-बुहारी लगाते रहो। आप कहेंगे, मैं सत्य खोजने आया हूं, झाड़ू-बुहारी लगाने नहीं। तो वह कहेगा, सत्य की खोज का यह पहला चरण हुआ। तुम दो साल झाड़ू-बुहारी लगाओ। बीच में मुझसे पूछना मत। लगाते रहना। जब मैं समझूंगा कि वह वक्त आ गया, अब मैं तुमसे कहूं, दि टाइम इज़ राइप, समय पक गया, तब मैं तुमसे कह दूंगा। भाग जाएंगे हम तो तभी!

सुना है मैंने कि एक सूफी फकीर के पास एक आदमी आया और उसने कहा कि मैं सत्य की खोज में आया हूं। उस फकीर ने कहा, यह खोज बड़ी कठिन है। तुम्हारी तैयारी पूरी है? उसने कहा, मेरी तैयारी पूरी है। तो फकीर ने कहा, अपना नाम-पता लिखा दो; अगर इस खोज में तुम मर जाओ, तो तुम्हारे अस्थिपंजर मैं कहां भेजूं! व्हेयर शुड आई सेंड दि रिमेंस--जो बच रहे पीछे, उसे मैं कहां भेजूं! उस आदमी ने कहा कि अगर आप बुरा न मानें, तो मैं अस्थिपंजर खुद ही लिए जाता हूं। और भाग खड़ा हुआ! आपको कष्ट होगा भेजने का, मैं खुद ही लिए जाता हूं!

उसने सोचा भी न था कि सत्य की खोज में अस्थिपंजर भी कभी भेजने की जरूरत पड़ सकती है। वह भी नहीं समझा। अस्थिपंजर से उस फकीर का मतलब बड़ा गहरा रहा होगा।

वह जो हम अपने चारों तरफ बांधे हैं, जिसकी वजह से हम सब तरफ से कट जाते हैं; एक आईलैंड, एक द्वीप की तरह बन जाते हैं; सब तरफ से टूटकर अलग खड़े हो जाते हैं। उसमें सत्य प्रवेश नहीं करेगा। सत्य के लिए द्वार चाहिए।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, इतनी तैयारी हो अर्जुन, तो फिर सुन।

प्रश्न:
भगवान श्री, एक छोटा-सा प्रश्न है। अनन्य प्रेम को यहां मूल संस्कृत में कहा गया है, आसक्तमना। मेरे में आसक्त मन वाले का कैसा आध्यात्मिक अर्थ होगा? इसे स्पष्ट करें।
शब्द तो वही रहते हैं। रुख बदल जाए, तो सब बदल जाता है।

परमात्मा में आसक्त मन वाला। और परमात्मा में आसक्त मन वाला जब हम कहेंगे, तो आसक्त शब्द का वही अर्थ न रह जाएगा, जो धन में आसक्ति वाला, यश में आसक्ति वाला।

शब्द तो बदल जाते हैं तत्काल, जैसे ही उनका आयाम बदलता है। हमारे पास शब्द तो थोड़े हैं। और हमारे सब शब्द जूठे हैं। कृष्ण के पास भी कोई उपाय नहीं है नए शब्दों के बोलने का। हमारे ही शब्दों का उपयोग करना है। अगर कहेंगे प्रेम, तो हमारे मन में जो खयाल आता है, वह हमारे ही प्रेम का आता है। अगर कहेंगे आसक्त, तो हमारे मन में जो अर्थ आता है, वह हमारी ही आसक्ति का आता है। लेकिन जो शर्त लगी है, परमात्मा में आसक्त मन वाला!

परमात्मा में कौन होता है आसक्त?

तो कृष्ण ने पहले बहुत व्याख्या की है उसकी, कि जो सब भांति अनासक्त हो गया, वही परमात्मा में आसक्त होता है। परमात्मा में आसक्ति का मतलब है, पूर्ण अनासक्ति। पूर्ण अनासक्ति न हो, तो परमात्मा में आसक्ति न होगी। जरा-सी भी आसक्ति कहीं बची हो, तो परमात्मा में आसक्ति न होगी।

तो चाहे हम कहें, आसक्ति। आसक्ति का अर्थ है, जिसमें हम आकर्षित हो रहे हैं; जिसमें हम खींचे जा रहे हैं; जिसमें हम बुलाए जा रहे हैं; जिसमें हम पुकारे जा रहे हैं; जिसके बिना हम न जी सकेंगे। तो चाहे कहें आसक्ति, चाहे कहें प्रेम, चाहे कहें अनन्य राग, चाहे कहें भक्ति; इससे कोई अंतर नहीं पड़ता। इतना ही प्रयोजन है कि जो परमात्मा की तरफ खिंचा जा रहा है; जिसके आकर्षण का बिंदु परमात्मा हो गया। और परमात्मा का क्या अर्थ होता है?

परमात्मा का अर्थ है, सब कुछ। जो इस सब को घेरे हुए है, जो इस सब के भीतर छिपा है, वह निराकार और अरूप जो सब रूपों में व्याप्त है, उसकी तरफ जो आकर्षित हो गया। जो अब बूंद में आकर्षित नहीं है, बूंद में छिपे महासागर में आकर्षित है। जो व्यक्ति में आकर्षित नहीं है, व्यक्ति के भीतर छिपे अव्यक्ति में आकर्षित है। जो अब अगर अपनी पत्नी को भी प्रेम कर रहा है, तो पत्नी को प्रेम नहीं कर रहा है, पत्नी में छिपे परमात्मा को प्रेम कर रहा है। अब जो सब तरफ, उस परमात्मा से ही खींचा जा रहा है और बुलाया जा रहा है। जो सब भांति उसी की तरफ दौड़ रहा है, उसी महासागर के मिलन की तरफ। तो मुझ परमात्मा में आसक्त मन वाला। तो प्रेम कहें, आसक्ति कहें, इससे फर्क नहीं पड़ता। फर्क इससे पड़ता है कि आप उसका उपयोग क्या कर रहे हैं।

शब्द अपने आप में अर्थहीन हैं। सब कुछ उपयोग पर निर्भर करता है। शब्दों में खुद कोई अर्थ नहीं है। अर्थ तो हम डालते हैं और हम देते हैं। और अर्थ बदल जाता है तत्काल, जैसे ही शब्द का आयाम बदलता है, तब अर्थ बदल जाता है।

यह शर्त है कृष्ण की कि परमात्मा की तरफ आ रहे मन वाला अगर तू है, तो मुझे सुन। क्योंकि वे जो कहने जा रहे हैं, वह जो परमात्मा की तरफ पीठ करके चल रहा है, वह न सुन सकेगा; उसके किसी काम का नहीं है। वह बहरे से बात करनी हो जाएगी। उसका कोई अर्थ नहीं है।

अभी मैं एक झेन फकीर का जीवन पढ़ता था। एक युवक आया है उस फकीर के पास और उस युवक ने कहा कि मैंने सुना है, बुद्ध ने कहा है कि मेरी बात सब के उपयोग की है। धर्म सब के लिए है। लेकिन, उस युवक ने कहा, इसमें मुझे बड़ी शंका होती है। मुझे शंका होती है कि बुद्ध के वचन अगर सब के उपयोग के लिए हैं, तो बहरों का क्या होगा? क्योंकि बहरे तो सुन ही न सकेंगे, तो उनके लिए उपयोग कैसे होगा? बुद्ध खड़े भी रहें, अंधे तो देख ही न सकेंगे, तो सत्संग कैसे होगा?

उस फकीर ने क्या किया? उस फकीर ने वही किया, जो फकीरों को करना चाहिए। पास में पड़ा था एक डंडा, उसने जोर से उस आदमी के पेट में डंडे का जोर से धक्का दिया। उस आदमी ने चीख मारी। उसने कहा, आप यह क्या करते हैं? तो उस फकीर ने कहा, अहा! मैं तो समझता था कि तुम गूंगे हो। तो तुम गूंगे नहीं हो, बोलते हो! जरा मेरे पास आओ। तो वह आदमी डरता हुआ पास आया। उसने कहा, अहा! मैं तो सोचता था कि तुम लंगड़े हो। लेकिन तुम तो चलते हो!

उस आदमी ने कहा, इन बातों से क्या मतलब जो मैं पूछने आया हूं! तो उस फकीर ने कहा कि तुम इसकी फिक्र छोड़ो, दूसरे अंधे, लूले और गूंगों की। अगर तुम गूंगे नहीं हो, लूले नहीं हो, अंधे नहीं हो, तो कम से कम तुम लाभ ले लो। और जब कोई अंधे आएंगे, तब उनसे मैं निपट लूंगा। जब कोई गूंगे आएंगे, तब उनसे मैं निपट लूंगा। तुम फिक्र छोड़ो। इतना तय है कि तुम अंधे, लूले, लंगड़े, गूंगे नहीं हो। तुमने क्या लाभ लिया बुद्ध के वचनों का? उसने कहा, अभी तक तो कुछ नहीं लिया! तो उस फकीर ने कहा कि पागल, तू फिक्र कर रहा है उनकी, जो न ले सकेंगे; और तू अपनी फिक्र कब करेगा, जो ले सकता है!

तो उस फकीर ने कहा कि जो गूंगे हैं, वे तो गूंगे हैं ही; और जो बहरे हैं, वे तो बहरे हैं ही; लेकिन तेरे बहरेपन को हम क्या करें? तेरे गूंगेपन को हम क्या करें?

कृष्ण, अर्जुन का गूंगापन, बहरापन टूट जाए, उसकी पीठ मुड़ जाए, वह परमात्मा की तरफ उन्मुख हो जाए--क्योंकि अभी तक अर्जुन की जो उन्मुखता है, वह युद्ध से बचने की है। किसी तरह युद्ध से बच जाए। यह हिंसा न हो। बस, इससे ज्यादा उसकी उत्सुकता नहीं है।

यह बड़े मजे की बात है, अर्जुन किसी ब्रह्मज्ञान को लेने कृष्ण के पास गया नहीं था। ये कृष्ण जबर्दस्ती उसको ब्रह्मज्ञान दिए देते हैं! कारण है। क्योंकि कृष्ण के पास जो है, वही दे सकते हैं। आप अगर अमृत के सागर के पास विष लेने भी जाएं, तो भी अमृत का सागर क्या कर सकता है? वह आपको अमृत ही दे देगा। भला आप पीछे पछताएं कि गलत जगह पहुंच गए। फंस गए!

अर्जुन तो एक बहुत छोटा-सा सवाल लेकर गया था। उसने सोचा भी न होगा कि इतनी बड़ी गीता उससे पैदा होगी। उसने सोचा भी न होगा कि कृष्ण ज्ञान की इतनी गहराइयों में उसे ले जाएंगे।

मगर कृष्ण की भी अपनी मजबूरी है। कृष्ण के पास जो है, वे वही दे सकते हैं। आगे वे कुछ ऐसी गहन बातें कहने वाले हैं, जो कि अर्जुन अगर पूरी तरह उन्मुख हो, तो ही समझ पाएगा, इसलिए यह शर्त लगाई है।

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते।।2।।
मैं तेरे लिए इस रहस्यसहित तत्वज्ञान को संपूर्णता से कहूंगा कि जिसको जानकर संसार में फिर और कुछ भी जानने योग्य शेष नहीं रहता है।

बहुत कुछ है, जो जान लिया जाए, तब भी सब कुछ जानने को शेष रह जाता है। बहुत कुछ है, जो पूरा का पूरा जान लिया जाए, तो भी जो जानने जैसी चीज है, वह शेष ही रह जाती है।

उपनिषद में कथा है कि श्वेतकेतु वापस लौटा। तो उसके पिता ने देखा कि श्वेतकेतु वापस लौट रहा है आश्रम से अध्ययन करके। स्वभावतः, अकड़ उसमें रही होगी। जो भी थोड़ा-बहुत ज्ञान सीख ले, अकड़ पैदा होती है। श्वेतकेतु अकड़ता हुआ चला आ रहा है!

सुबह सूरज निकला है और पिता श्वेतकेतु को आता हुआ देखता है। सब कुछ जानकर लौट रहा है। अठारह शास्त्र, जो उन दिनों प्रचलित थे, उन सबका ज्ञान लेकर आया है। अब अकड़ में और कोई कमी नहीं है। अब तो पिता भी उसके सामने कुछ नहीं जानता। जैसा कि सभी बच्चों को लगता है, जब वे थोड़ा-सा जान लेते हैं। उस दिन के भी बच्चे ऐसे ही थे, जैसे आज के बच्चे हैं।

श्वेतकेतु अकड़ से घर में प्रवेश किया। पिता ने उससे पूछा, तू सब जानकर आ गया, ऐसा मालूम पड़ता है। उसने कहा कि निश्चित ही। आप पूछ देखें। सब परीक्षाओं में उत्तीर्ण हुआ। सब शास्त्र कंठस्थ हैं। गुरु ने जब प्रमाणपत्र दे दिया, तब मैं आया हूं। पर उसके पिता ने पूछा कि तूने अपने गुरु से वह भी जाना या नहीं, जिसको जान लेने से सब जान लिया जाता है?

उसने कहा, वह क्या चीज है, जिसको जान लेने से सब जान लिया जाता है! ऐसी तो कोई चीज गुरु ने मुझे नहीं बताई, जिसको जान लेने से सब जान लिया जाता है। मैं तो वे ही चीजें जानकर आ रहा हूं, जिनको जान लेने से उन्हीं को जाना जाता है। सब का कोई सवाल नहीं है!

तो पिता ने कहा, तू वापस जा। तू बेकार ही श्रम करके घर लौट आया। तेरी अकड़ ने ही मुझे कह दिया कि तू अज्ञानी का अज्ञानी ही वापस आ रहा है। क्योंकि अकड़ अज्ञान का सबूत है। तू वापस जा। तू शास्त्रों के बोझ से तो दब गया, लेकिन ज्ञान की किरण अभी तेरे जीवन में नहीं फूटी। उसे जानकर आ, जिसे जान लेने के बाद कुछ जानने को शेष नहीं रह जाता।

वह बेचारा वापस लौटा, उदास। सब व्यर्थ हो गया, बरसों की मेहनत। गुरु से जाकर उसने कहा कि आपने भी क्या सिखाया! पिता ने कहा कि यह तो कुछ भी नहीं है। और मैं तो यह मानकर लौटा कि सब जान लिया गया। और उन्होंने कहा है कि उसे जानकर आ, जिसे जान लेने से सब जान लिया जाता है। वह क्या है जिसे जान लेने से सब जान लिया जाता है?

उसके गुरु ने कहा, वह तू स्वयं है। लेकिन तूने कभी मुझसे पूछा ही नहीं कि मैं कौन हूं! तूने पूछा नहीं! तूने जो पूछा, वह मैंने तुझे बताया। तूने पूछा, आकाश में बादल कैसे बनते हैं, तो मैंने बताया होगा। तूने पूछा, नदियां कैसे बहती हैं, तो मैंने बताया होगा। तूने पूछा कि अन्न कैसे पचता है, तो मैंने बताया होगा। तूने जो पूछा, वह मैंने तुझे बताया। तूने कभी यह पूछा ही नहीं कि मैं कौन हूं! और जब तक कोई स्वयं को न जान ले, तब तक वह ज्ञान नहीं मिलता, जिसे जानने से सब जान लिया जाता है। या जिसे जान लेने पर फिर जानने को कुछ शेष नहीं रह जाता है।

तो कृष्ण कहते हैं, अब मैं वह रहस्य तुझसे कहूंगा अर्जुन, और पूरा ही बता दूंगा तुझे--तीन-चार बातें कहते हैं--अब मैं वह रहस्य तुझसे कहूंगा अर्जुन।

रहस्य, मिस्ट्री। कह सकते थे कि वह सत्य मैं तुझसे कहूंगा। लेकिन कहते हैं, वह रहस्य मैं तुझसे कहूंगा। क्योंकि उस रहस्य को कहने के लिए सत्य शब्द भी छोटा है। और उसे सत्य नहीं कहा जानकर। क्योंकि उसे कितना ही जान लो, तब भी कभी दावा नहीं कर सकते कि जान लिया है। इसलिए कहा, रहस्य।

रहस्य का मतलब यह है, जानो, तो खुद मिटते हो। और जानो, तो और मिटते हो। और जानो, तो और। और एक दिन आता है कि जानना तो पूरा हो जाता है, लेकिन खुद बिलकुल नहीं रह जाते। दावेदार खतम हो जाता है। वह जो क्लेम कर सकता था कि मैंने जान लिया, सत्य मेरी मुट्ठी में है, वह बचता नहीं। न मुट्ठी बांधने वाला बचता है, न मुट्ठी बचती है। फिर जो बच रहता है, वह एक मिस्ट्री है, वह एक रहस्य है।

इसलिए भी रहस्य कहा कि पूरी तरह जानकर भी, पूरी तरह परिचित होकर भी, वह ज्ञान तर्कबद्ध नहीं होता है। वह लाजिकल नहीं है। वह एक रहस्य की भांति है; धुंधला है। जैसे सुबह, जब सूरज नहीं निकला है, चारों तरफ कुहरा छाया हुआ है। चीजें रहस्यपूर्ण लगती हैं। या रात पूर्णिमा की चांदनी में, जब कि कहीं वृक्षों के नीचे अंधेरा है, और कहीं धीमी चांदनी है, और सब रहस्यपूर्ण हो जाता है। एक मिस्ट, एक धुंध घेरे रहती है।

उस रहस्य में जब कोई पहुंचता है, तो एक गहन चांदनी रात में, जहां सब चीजें रहस्यपूर्ण मालूम पड़ती हैं; कोई चीज अपने में पूरी नहीं मालूम पड़ती; प्रत्येक चीज किसी और चीज की तरफ इशारा करती है। गद्य की भांति नहीं है वह, पद्य की भांति है; काव्य की भांति है; जिसका ओर-छोर नहीं मिलता। जिसे एक तरफ से शुरू करें, तो दूसरा अंत नहीं आता। और जिसमें जितने भीतर प्रवेश करें, उतनी ही पहेली बड़ी होती चली जाती है।

इसलिए नहीं कहा कि तुझे सत्य कहूंगा। कहा कि तुझे कहूंगा वह रहस्य।

और ध्यान रहे, संतों ने कभी भी सत्य का दावा नहीं किया, रहस्य की घोषणा की है। दार्शनिकों ने सत्य का दावा किया और रहस्य की हत्या की है। और इसलिए दर्शन, फिलासफी और धर्म में एक बुनियादी फर्क है।

धर्म रहस्य की खोज है और दर्शनशास्त्र सत्य की। इसलिए दार्शनिक गणित बिठाने में लगा रहता है, और धार्मिक गणित उखाड़ने में लगा रहता है। दर्शनशास्त्री तर्क, कनक्लूजन, निष्पत्तियां निकालता रहता है। और संत, मिस्टिक, सब निष्पत्तियां तोड़कर, वह जो अनंत अज्ञात है, उसमें कूद जाता है।

इसलिए कृष्ण ने कहा, रहस्य।

कृष्ण कोई फिलासफर नहीं हैं, कोई दार्शनिक नहीं हैं; उस अर्थों में जिसमें प्लेटो या अरस्तू या हीगल दार्शनिक हैं। उस अर्थ में कृष्ण दार्शनिक नहीं हैं। कृष्ण उस अर्थ में रहस्यवादी हैं, जैसे जीसस या बुद्ध या लाओत्से।

रहस्यवादी का कहना यह है कि तुम्हारे ज्ञान की घोषणा सिर्फ तुम्हारे अज्ञान का सबूत है। काश, तुम सच में ही जान लो, तो तुम जानने का दावा छोड़ दो। काश, तुम्हें पता चल जाए, तो जो सत्य है, वह इतना बड़ा है कि तुम उसमें कहीं पाओगे भी न कि तुम कहां खड़े हो। तुम उसमें डूब तो सकते हो, लेकिन उसको मुट्ठी में नहीं ले सकते हो।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, रहस्य।

रहस्य वह है, जिसमें हम तो डूब सकते हैं, लेकिन जिसे हम अपनी मुट्ठी में बांधकर घर में लाकर तिजोड़ी में बंद नहीं कर सकते। और हम कितना ही उसे जान लें, और कितना ही उसे पहचान लें, और कितना ही उसके साथ एक हो जाएं, फिर भी हमारे मन में अज्ञात का भाव बना ही रहेगा, दि अननोन मौजूद ही रहेगा। जानें कितना ही, पहचानें कितना ही, मिलन हो जाए कितना ही, फिर भी कुछ अज्ञात, कुछ अननोन शेष रहेगा।

वह अज्ञात जो शेष रह जाता है, सदा शेष रह जाता है, वही कृष्ण को रहस्य कहने के लिए प्रेरित करता है।

दूसरी बात वे कहते हैं, सभी तुझसे कह दूंगा।

इस पर भी विचार कर लेने जैसा है।

एक दिन बुद्ध एक वृक्ष के नीचे से गुजर रहे हैं। पतझड़ हो रही है। पतझड़ है। वृक्षों से सूखे पत्ते नीचे गिरते हैं। हवाएं पत्तों को उड़ाती हैं। पत्तों की आवाज और ध्वनि जंगल में गूंज रही है। आनंद बुद्ध से पूछता है कि प्रभु! आज एकांत का क्षण है, एक बात पूछ लूं। बहुत दिन से पूछने का मन करता है, लेकिन कोई न कोई मौजूद होता है; मैं टाल जाता हूं। आज यहां कोई भी नहीं है, सिवाय इन सूखे गिरते पत्तों के। मैं आपसे पूछ लूं एक बात। आप जो जानते हैं, वह सभी कह दिया है, या कुछ बचा भी लिया है? आपने जो जाना, वह सभी कह दिया है, या कुछ बचा भी लिया है?

तो बुद्ध अपना हाथ खोल देते हैं उसके सामने, और कहते हैं, मैं खुली हुई मुट्ठी की तरह हूं, बंद मुट्ठी की तरह नहीं। मैंने तो सभी कह दिया है, लेकिन तुमने सभी सुन लिया होगा, यह जरूरी नहीं है। मैंने तो सब बता दिया है, लेकिन सब तुमने पा लिया होगा, यह जरूरी नहीं है। मैंने तो कुछ भी नहीं छिपाया है, लेकिन सब प्रकट हो गया होगा, यह जरूरी नहीं है। मैं तो एक खुली किताब हूं, खुली मुट्ठी हूं। सब मेरा खुला है। द्वार-दरवाजे खुले हैं। तुम कहीं से भी प्रवेश करो। तुम सब जान लो। कुछ भी छिपाया नहीं है। कुछ छिपाने का सवाल नहीं है। लेकिन सब तुम्हें प्रकट हो गया होगा, यह जरूरी नहीं है।

कृष्ण अर्जुन को कहते हैं कि सभी कुछ कह दूंगा तुझे--सभी। जो कहा जा सकता है, वह भी कह दूंगा; जो नहीं कहा जा सकता है, वह भी कह दूंगा। सभी में दोनों आ जाते हैं। जो कहा जा सकता है, वह भी कह दूंगा; जो नहीं कहा जा सकता है, वह भी कह दूंगा।

आप पूछेंगे, जो नहीं कहा जा सकता है, उसको कैसे कहिएगा?

शायद जो नहीं कहा जा सकता, उसको कहने की बहुत तरह की कोशिशें दुनिया में की गई हैं अलग-अलग ढंग से। लेकिन कृष्ण ने जैसी कोशिश की है, वैसी बहुत मुश्किल से शायद ही कभी की गई है। इसलिए कृष्ण जब कह-कहकर थक गए, तो फिर उन्होंने दिखाया। वह कहा, जो नहीं कहा जा सकता है। फिर अर्जुन को कहा कि अब तेरी समझ में नहीं आता शब्दों से, तो अब तू देख ले। अब मैं तुझे दिव्य-दृष्टि दे देता हूं और तू देख ले मेरे पूरे विराट को। वह जो नहीं कहा जा सकता है, वह दिखाया।

विट्गिंस्टीन का बहुत प्रसिद्ध वचन है, देयर आर थिंग्स, व्हिच कैन नाट बी सेड, बट कैन बी शोड। विट्गिंस्टीन पश्चिम के आधुनिक मिस्टिक, आधुनिक रहस्यवादियों में कीमती आदमी था। कहता है, ऐसी चीजें हैं, जो नहीं कही जा सकतीं, लेकिन बताई जा सकती हैं। और अगर उसके वचन के लिए कोई गवाही है, तो वे कृष्ण हैं। क्योंकि जब नहीं कह सके वे, तो उन्होंने बताया कि अब तू देख ले।

लेकिन कितना अभागा है हमारा मन! कि कृष्ण जब शब्द का उपयोग करते हैं, तब अर्जुन समझ नहीं पाता। और जब स्थिति का उपयोग करते हैं, सिचुएशन का, प्रकट कर देते हैं पूरा का पूरा, तब वह कहता है, बंद करो! बंद करो! रोको यह रूप। मन बहुत घबड़ाता है। मेरे प्राण बहुत कंपते हैं। इस विराट को वापस ले लो। यह अपनी आंख वापस लो! न सुनकर हम समझ पाते हैं, न देखकर हम समझ पाते हैं।

इसलिए कृष्ण जैसे व्यक्ति की करुणा अपरिसीम है। यह जानते हुए कि हम सुनकर भी नहीं समझ पाएंगे, हम देखकर भी नहीं समझ पाएंगे, फिर भी एक असंभव प्रयास कृष्ण जैसे लोग करते हैं। उनकी वजह से जिंदगी में थोड़ा नमक है, उनकी वजह से जिंदगी में थोड़ी रौनक है, जिन्होंने असंभव प्रयास किया।

कहते हैं, सब कह दूंगा अर्जुन तुझे, सब! पूरा का पूरा कह दूंगा। बस, तू सुनने को राजी हो। और वह बात बताना चाहता हूं, जिसे जान लेने से सब जान लिया जाता है।

इसको भी थोड़ा-सा खयाल में ले लें। क्योंकि इस भारत में हमने सर्वाधिक जिसकी खोज की है, वह इसी एक छोटी-सी बात की, जिसको जान लेने से सब जान लिया जाता है--मास्टर-की।

एक तो ऐसी कुंजी होती है कि एक ताले में लगती है। दूसरे ताले के लिए दूसरी कुंजी की जरूरत होती है। तीसरे ताले के लिए तीसरी कुंजी की जरूरत होती है। लेकिन एक मास्टर-की है, जो सब तालों में लगती है। एक कुंजी मिल गई, तो फिर किसी कुंजी की कोई जरूरत नहीं रहती। सब ताले खुल जाते हैं।

इस मुल्क ने मास्टर-की खोजने की कोशिश की है। पश्चिम भी कुंजियां खोजता है, लेकिन कुंजियां। हमने कुंजी खोजने की कोशिश की है। पश्चिम भी खोजता है। वह कहता है, यह ताला कैसे खुलेगा! तो फिजिक्स का ताला किसी और कुंजी से खुलता है। केमिस्ट्री का किसी और कुंजी से खुलता है। साइकोलाजी का किसी और कुंजी से खुलता है। गणित का किसी और से। हजार कुंजियां खोज लीं उन्होंने।

अब तो हालत यह हो गई है कि कौन-सी कुंजी कौन-सी है, इसका हिसाब रखना मुश्किल हुआ जा रहा है। फिर एक-एक कुंजी को खोजने के बाद और हजार ताले मिल जाते हैं, तो फिर उसमें और सब-ब्रांचेज कुंजी की खोजनी पड़ती हैं। तो केमिस्ट्री कभी केमिस्ट्री थी, अब केमिस्ट्री में बायो-केमिस्ट्री भी है, आर्गेनिक केमिस्ट्री भी है। अब अलग कुंजियां हैं। और कितनी देर तक आर्गेनिक केमिस्ट्री आर्गेनिक रहेगी; उसमें और कुंजियां निकली आती हैं!

अभी पश्चिम में एक बहुत होशियार बुद्धिमान आदमी ने, स्नो ने एक किताब लिखी, जिसमें उसने घोषणा की कि पश्चिम अपने ज्ञान के दबाव में मर सकता है। क्योंकि ज्ञान इतना हो गया, और उसके बीच कोई तालमेल नहीं है। सब के पास कुंजियां हैं, सब के पास ताले हैं। यह पता ही नहीं चलता कि कौन-सा ताला खोलें, कौन-सा न खोलें! कौन-सा क्यों खोलें! और सब तरफ से ताले खुल रहे हैं, और आदमी है कि बिलकुल बंद है, और उसका कुछ खुलता हुआ मालूम नहीं पड़ता। ज्ञान बहुत; अज्ञान अपनी जगह कायम। ज्ञान का भार भारी।

आज जमीन पर जितना ज्ञान है, पृथ्वी पर कभी नहीं था। और अगर इसी मात्रा में ज्ञान बढ़ता है, तो जो लोग हिसाब-किताब लगाते हैं, वे कहते हैं, कुछ ही दिन में पृथ्वी के वजन से ज्यादा पुस्तकें हमारे पास हो जाएंगी। पृथ्वी क्या करेगी उस वक्त, यह अपने को अभी पता नहीं है। ऐसा होने देगी, यह भी पक्का पता नहीं है। लेकिन इसी रफ्तार से बढ़ता है। क्योंकि प्रति सप्ताह दस हजार नए ग्रंथ प्रकाशित हो जाते हैं। यह बोझ बढ़ता चला जाता है।

इसलिए अब सारी दुनिया में जहां बड़ी लाइब्रेरीज हैं, वे लोग चिंतित हैं कि इतनी बड़ी लाइब्रेरीज को अब बचाया नहीं जा सकता। इनको कैसे बचाएंगे? लोगों के लिए रहने की जगह नहीं है; किताबों के लिए कैसे जगह होगी? तो किताबों को माइक्रो बुक्स, छोटी किताबें करो। तो जितनी एक किताब की जगह में कम से कम एक लाख किताबें बन सकें, इतनी छोटी करो। फिर पर्दे पर उसको बड़ा करके पढ़ लो। छोटी-छोटी करो। क्योंकि इतनी किताबें अब नहीं रखी जा सकतीं।

इतना ज्ञान, और आदमी के अज्ञान का कोई हिसाब नहीं है! आदमी निपट अज्ञानी है। मास्टर-की की तलाश नहीं हुई है।

कृष्ण कहते हैं, मैं तुझे मास्टर-की दूंगा। मैं तुझे वह कुंजी दूंगा, जिसे पा लेने के बाद किसी कुंजी की कोई जरूरत नहीं। मैं तुझे वह कुंजी दूंगा कि ताले खोलने नहीं पड़ते, कुंजी को देखते हैं कि खुल जाते हैं। मैं तुझे वह बता दूंगा, जिसे जान लेने से सब जान लिया जाता है। वह एक तत्व मैं तुझे कह दूंगा। वह अनिर्वचनीय, वह एक परम, अल्टिमेट, वह आखिरी सत्य, वह बुनियाद का सत्य, वह अनादि, अनंत मैं तुझे कह दूंगा। उसे जान लेने पर फिर कुछ और जानने को शेष नहीं रह जाता।

शेष हम कल बात करेंगे।

ओशो – गीता-दर्शन – भाग 3
परमात्मा की खोज— अध्याय-7 (प्रवचन—2)

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः।।3।।
परंतु हजारों मनुष्यों में कोई ही मनुष्य मेरी प्राप्ति के लिए यत्न करता है, और उन यत्न करने वाले योगियों में भी कोई ही पुरुष मेरे परायण हुआ मेरे को तत्व से जानता है अर्थात यथार्थ मर्म से जानता है।

प्रभु की यात्रा सरल भी है और सर्वाधिक कठिन भी। सरल इसलिए कि जिसे पाना है, उसे हमने सदा से पाया ही हुआ है। जिसे खोजना है, उसे हमने वस्तुतः कभी खोया नहीं है। वह निरंतर ही हमारे भीतर मौजूद है, हमारी प्रत्येक श्वास

में और हमारे हृदय की प्रत्येक धड़कन में। इसलिए सरल है प्रभु को पाना, क्योंकि प्रभु की तरफ से उसमें कोई भी बाधा नहीं है। इसे ठीक से ध्यान में ले लेंगे।

प्रभु को पाना सरल है, क्योंकि प्रभु सदा ही अवेलेबल है, सदा ही उपलब्ध है। लेकिन प्रभु को पाना कठिन बहुत है, क्योंकि आदमी सदा ही प्रभु की तरफ पीठ किए हुए खड़ा है। आदमी की तरफ से सारी कठिनाइयां हैं, प्रभु की तरफ से कोई भी कठिनाई नहीं है। उसके मंदिर के द्वार सदा ही खुले हैं, लेकिन हम उन मंदिर के द्वारों की तरफ पीठ किए हैं। पीठ ही नहीं किए हैं, पीठ करके भाग भी रहे हैं। भाग ही नहीं रहे हैं, अपना पूरा जीवन, अपनी पूरी शक्ति, अपनी पूरी सामर्थ्य, किस भांति उस मंदिर से दूर निकल जाएं, इसमें लगा रहे हैं।

यद्यपि हम निकल न पाएंगे। हजारों-हजारों जन्मों में दौड़कर भी उस मंदिर से हम दूर न जा पाएंगे। और जिस दिन भी हम पीठ फेरकर देखेंगे, पाएंगे कि वह मंदिर वहीं का वहीं मौजूद है--वहीं, जहां से हमने दौड़ना शुरू किया था।

आदमी की तरफ से बहुत कठिनाइयां हैं। इसलिए कृष्ण के इस सूत्र में उन्होंने कहा, करोड़ों में कोई एक प्रयास करता है। और प्रयास करने वाले करोड़ों में कोई कभी एक मुझे उपलब्ध होता है।

दो बातें। करोड़ों में कभी कोई एक प्रयास करता है। इसे समझें। और फिर प्रयास करने वाले करोड़ों में भी कभी कोई एक मुझे परायण हुआ, मुझे समर्पित हुआ, उपलब्ध होता है।

क्यों करोड़ों लोगों में कभी कोई एक प्रयास करता है उसे पाने के लिए, जिसे पाए बिना कोई चारा नहीं, जीवन में कोई अर्थ नहीं? क्यों करोड़ों में कोई एक प्रयास करता है उसे पाने के लिए, जिसे पाकर सब पा लिया जा सकता है? क्या होगा कारण? होना तो ऐसा चाहिए कि करोड़ों में कभी कोई एक प्रयास न करे, बाकी सारे लोग प्रयास करें। क्योंकि परमात्मा आनंद है, जीवन है, अमृत है। तो करोड़ों में कोई एक क्यों प्रयास करता है? इसके कारण को थोड़ा ठीक से समझ लेना जरूरी है, क्योंकि वह उपयोगी है।

सबसे पहला कारण तो यह है कि जो हमें मिला ही हुआ है, उसे पाने के लिए हम क्यों कर चेष्टा करें? सागर की मछली सब कुछ खोजती होगी, सागर को कभी नहीं खोजती है। सागर की मछली सब खोजों पर निकलती होगी, लेकिन सागर की खोज पर कभी नहीं निकलती है। उसी में पैदा होती है, उसी में जीती है, बड़ी होती है, श्वास लेती है, उसी में समाप्त होती है। उसे पता भी नहीं चलता कि सागर है।

मछली को भी सागर का तभी पता चलता है, जब उसे सागर के बाहर निकालो। अगर मछली सागर के बाहर न आए, तो उसे कभी भी पता नहीं चलता कि सागर है। असल में सागर के साथ इतनी एक है कि पता भी कैसे चले! पता चलने के लिए दूरी चाहिए।

तो मछली तो कभी-कभी सागर के बाहर भी आ जाती है, आदमी तो परमात्मा के बाहर कभी नहीं आता है। मछली को तो कोई मछुवा कभी फांस भी लेता है जाल में और सागर के तट पर भी तड़फने को छोड़ देता है। आदमी के लिए तो ऐसा कोई तट नहीं है, जहां परमात्मा मौजूद न हो। आदमी जहां भी जाए, वहां परमात्मा मौजूद है। जो इतना ज्यादा मौजूद है, उसकी हम फिक्र छोड़ देते हैं, उसका हमें खयाल भूल जाता है।

ध्यान रहे, हमारे ध्यान की जो धारा है, वह जो गैर-मौजूद है, उसकी तरफ बहती है। जैसे आपका एक दांत टूट जाए, तो जीभ उस दांत की तरफ चलने लगती है। जो दांत मौजूद हैं, उनकी तरफ नहीं चलती। और भलीभांति एक दफे पता लगा लिया कि टूट गया, खाली जगह छूट गई, फिर भी दिनभर जीभ वहीं दौड़ती रहती है! जहां अभाव है, वहां हम खोजते हैं। जिसका अति भाव है, जो एकदम मौजूद है घना होकर, वहां हम नहीं खोजते।

मन के गहरे नियमों में एक यह है कि जो हमें उपलब्ध है, उसकी हम विचारणा छोड़ देते हैं। जो हमें उपलब्ध नहीं है, उसकी हम खोज करते हैं। जो हमारे पास है, उसे हम भूल जाते हैं। जो हम से दूर है, उसकी हम स्मृति से भर जाते हैं। जिसे हम खो देते हैं, उसका पता चलता है; और जिसे हम कभी नहीं खोते, उसका पता भी नहीं चलता।

परमात्मा की खोज पर निकलने में जो सबसे बड़ी बाधा है, वह मन का यह नियम है कि हमें उसका ही पता चलता है, जो नहीं है। निगेटिव का पता चलता है, पाजिटिव का पता नहीं चलता। टूट गया दांत, तो पता चलता है। वह दांत चालीस साल से आपके पास था, तब इस जीभ ने कभी उसकी फिक्र न की। आज नहीं है, तो उसकी तलाश है!

मन निगेटिविटी, मन जो है नकार की तरफ दौड़ता है। वैसे ही जैसे पानी गड्ढों की तरफ दौड़ता है, ऐसा ही मन अभाव की तरफ, एब्सेंस की तरफ, जो नहीं है, उसकी तरफ दौड़ता है। जो है, उसकी तरफ मन नहीं दौड़ता।

और परमात्मा सर्वाधिक है। टू मच। इतना ज्यादा है कि उसके सिवाय और कुछ भी नहीं है। वही वही है। सब तरफ वही है। आंख खोलें तो, आंख बंद करें तो; जागें तो, सो जाएं तो। सब तरफ वही वही है। सागर की तरह हमें घेरे हुए है। इसलिए करोड़ों में एक उसकी खोज पर निकलता है।

अगर परमात्मा की खोज पर निकलना हो, करोड़ों में एक बनना हो, तो इस सूत्र से विपरीत चलेंगे तभी, अन्यथा कभी नहीं। जो आपके पास हो, उसका स्मरण रखें; और जो आपसे दूर हो, उसे भूल जाएं। जो दांत अभी मुंह में हो, उसे जीभ से टटोलें; और जो गिर जाए, उसे मत टटोलें। जो आज सुबह रोटी मिली हो, उसका आनंद लें; जो रोटी कल मिलेगी, उसके सपने मत देखें। जो नहीं है, उसे छोड़ दें; और जो है, उसे पूरे आनंद से जी लें। तो आप करोड़ों में एक बनना शुरू हो जाएंगे।

क्योंकि ध्यान रखना, यात्रा सीधी परमात्मा की नहीं हो सकती, जब तक आपके मन का ढंग, आपके मन की व्यवस्था न बदले।

कभी आपने खयाल किया कि आप सोचते हैं, एक मकान बना लें। जब तक नहीं बनाते, तब तक मन बिलकुल आर्किटेक्ट हो जाता है। कितनी कल्पनाएं करता है! कितने नक्शे बनाता है! फिर मकान बन जाता है। फिर उसी मकान में जीने लगते हैं, और मकान को भूल जाते हैं। हां, रास्ते से जो निकलते होंगे, उनके मन में आपके मकान के लिए विचार आता होगा। आपको भर नहीं आता, जो उसके भीतर रहता है!

पढ़ रहा था मैं, एक युवक का विवाह हो रहा है चर्च में। घंटियां बजी हैं, और मोमबत्तियां जली हैं। और मित्र उपहार लाए हैं, और धन्यवाद दे रहे हैं। लेकिन तभी अचानक वह युवक उदास हो गया। तो चर्च के जिस पादरी ने विवाह करवाया था, उसने पूछा कि इतने उदास क्यों हो गए हो? तुम्हें तो खुश होना चाहिए, क्योंकि जिसे तुमने चाहा था, वह स्त्री तुम्हें मिल गई!

वह युवक कहने लगा, इसीलिए तो उत्साह एकदम क्षीण हो गया है। उत्साह एकदम क्षीण हो गया है। जिसे चाहा था, वह मिल गई, इसीलिए तो उत्साह एकदम क्षीण हो गया है। उस युवक ने कहा कि आज मैं सोचता हूं कि मजनू के रास्ते में जिन लोगों ने बाधाएं डालीं और लैला को न मिलने दिया, उन्होंने बड़ी कृपा की। क्योंकि मजनू लैला को याद तो करता रहा। जिन मजनुओं को उनकी लैलाएं मिल जाती हैं, वे और दूसरों की लैलाओं की भला फिक्र करें, अपनी लैलाएं भूल जाते हैं!

मन का नियम है, जो मिल जाता है, वह भूल जाता है। और परमात्मा तो मिला ही हुआ है। उसे तो याद करने की सुविधा भी नहीं बनती।

तो मन के नियम को बदलना पड़ेगा। मन का नियम अभी गड्ढों की तरफ दौड़ना है। मन को पर्वतों की तरफ दौड़ाना शुरू करना पड़ेगा। और कोई कठिनाई नहीं है।

जिंदगी में बहुत कुछ मिला है, उसमें आह्लाद अनुभव करें। जो मिला है, उसमें प्रसन्न हों। जो है पास, उसमें संतुष्ट हों। जो पास है, उसके लिए प्रभु को धन्यवाद दें। जो है, उसे देखें; और जो नहीं है, उसे छोड़ें। बहुत शीघ्र आप पाएंगे कि आपकी परमात्मा की खोज शुरू हो गई।

इसलिए जिन लोगों ने परमात्मा की खोज में संतोष को अनिवार्य बताया है, उसका कारण भी आप समझ लें, वह इस सूत्र में छिपा हुआ है। संतोष में अपने आप कोई मूल्य नहीं है। संतोष अपने आप में कोई वेल्यू नहीं है; उसकी अपने आप में कोई कीमत नहीं है। क्योंकि मरा हुआ आदमी भी, मरा-मराया आदमी भी संतुष्ट दिखाई पड़ सकता है। ऐसा आदमी भी संतुष्ट मालूम पड़ सकता है, जिसमें जरा भी दौड़ने की हिम्मत नहीं है। कायर है, भयभीत है, चुनौती लेने से डरता है। नहीं; संतोष में अपने आप में मूल्य नहीं है, लेकिन संतोष का एक ही मूल्य है, वह परमात्मा की तरफ उन्मुख करने में कीमती है।

इसलिए मैं आपको कहता हूं कि संतोष का अब तक जो भी खयाल दुनिया में दिया गया कि संतोषी सदा सुखी, वह सब बच्चों की बातें हैं। सच तो यह है कि संतोषी के जीवन में एक नया दुख पैदा होता है, वह दुख परमात्मा को पाने का दुख है। वह और किसी की जिंदगी में पैदा नहीं होता। हां, संतोषी की जिंदगी में आस-पास की चीजों से सुख हो जाता है। क्योंकि जो उसे है, वह उसमें प्रसन्न है। वह उसे भोग रहा है। वह परमात्मा के प्रति अनुगृहीत है।

लेकिन इस संतोषी के जीवन में एक नई आग जलनी शुरू होती है, वह परमात्मा की खोज है। क्योंकि जब वह पाता है कि साधारण से भोजन में जो मुझे उपलब्ध है, अगर मैं उस पर ध्यान देता हूं, तो इतना रस मिलता है; साधारण-सा झोपड़ा जो मुझे उपलब्ध है, जब मैं उस पर ध्यान देता हूं, तो इतना रस मिलता है; साधारण-सा जीवन जो मुझे उपलब्ध है, जब मैं उस पर ध्यान देता हूं, तो इतना रस मिलता है–तो वह जो जीवन का मूलाधार है, जो मेरे होने के पहले से मेरे पास है, और मेरे न हो जाने पर भी मेरे पास होगा, मेरी लहर बनेगी और मिटेगी, और वह रहेगा, उसे पा लेने से क्या होगा! उसको पा लेने की एक नई पीड़ा, एक नई प्रसव-पीड़ा शुरू होती है।

संतोष को योग ने एक अनिवार्य सूत्र माना है परमात्मा की तलाश के लिए। अगर आप सोचते हों कि संतोष केवल संसार की दौड़ से बच जाने की तरकीब है, तो आपको संतोष की कीमिया का कोई पता नहीं। वह तो बड़ी गौण बात है। महत्वपूर्ण बात यह है कि जो अपने चारों तरफ जो मौजूद है, उससे संतुष्ट हो जाता है, उसके भीतर उसकी खोज शुरू होती है, जो सबसे ज्यादा गहराई में सदा से मौजूद है। उसके रस की खोज शुरू हो जाती है।

करोड़ों में इसीलिए एक आदमी! वह जिसके पास पाजिटिव माइंड है।

हमारे सबके पास निगेटिव माइंड है, हमारे पास नकारात्मक मन है। हमें मित्र तब दिखाई पड़ता है, जब वह घर से जा चुका होता है। हमें सुख का भी तब पता चलता है, जब वह हाथ से छूट गया होता है। हमें प्रेम का भी तब पता चलता है, जब प्रेम का दीया बुझने लगता है। हमें पता ही तब चलता है, जब कोई चीज समाप्त होती है। जब कोई मरता है, तभी हमें पता चलता है कि वह था। जब तक वह था, तब तक हमें पता ही नहीं चलता।

पिता घर में मौजूद है, बेटे को बिलकुल पता नहीं चलता कि है। जिस दिन मरेगा पिता, उस दिन पता चलेगा। उस दिन रोएगा, छाती पीटेगा। और जब तक पिता मौजूद था, तब कभी दो क्षण भी उसके पास नहीं बैठा था। बड़े आश्चर्य की बात है। तब तक कभी फुर्सत न मिली थी कि दो क्षण उसके पैरों पर हाथ रखकर बैठ जाए। अब मुर्दे की छाती पर सिर पटकेगा।

निगेटिव माइंड है। जो नहीं है, बस, वह हमारे लिए महत्वपूर्ण हो जाता है। जो है, वह गैर-महत्वपूर्ण हो जाता है।

इसीलिए दुनिया में कोई आदमी अमीर नहीं हो पाता। कितना ही धन मिल जाए, गरीबी नहीं मिटती। क्योंकि निगेटिव माइंड गरीब है। निगेटिव माइंड कभी अमीर नहीं हो सकता। क्योंकि जो भी मिल जाएगा, वह भूल जाएगा; और सदा मिलने को बाकी रहेगा, वह याद रहेगा।

भिखमंगे तो भिखमंगे होते ही हैं, अरबपति भी उतने ही भिखमंगे होते हैं। जहां तक भिखमंगेपन का सवाल है, भिखमंगे को जो उसके पास है, वह दिखाई नहीं पड़ता; अरबपति को भी, जो उसके पास है, वह दिखाई नहीं पड़ता। भिखमंगे को भी उसकी मांग रहती है, जो पास नहीं है; अरबपति को भी उसकी ही मांग रहती है, जो उसके पास नहीं है। फर्क क्या है?

इतना ही फर्क है कि भिखमंगे के पास जो है, वह कम है भूलने को; अरबपति के पास भूलने को ज्यादा है। लेकिन भूलने को ही ज्यादा है, और तो कुछ अर्थ नहीं है। भिखमंगा अपने भिक्षा के पात्र को भूलता है, अरबपति अपनी तिजोड़ी को भूलता है। लेकिन भूलने में आप तिजोड़ी भूलें कि भिक्षा का पात्र भूलें, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। न तो भिखमंगा अपने भिक्षा के पात्र का आनंद ले पाता है, न करोड़पति अपनी तिजोड़ी का आनंद ले पाता है।

जो है, वह हमें दिखाई नहीं पड़ता। और परमात्मा अतिशय है। एक इंचभर जगह नहीं है, जहां वह नहीं है। इसीलिए करोड़ में कभी कोई एक उसकी खोज पर निकलता है। पाजिटिव माइंड, एक विधायक चित्त ही परमात्मा की खोज पर जा सकता है।

उसे देखना शुरू करें, जो है। उसे भूलना शुरू करें, जो नहीं है। खाली स्थानों में मत भटकें; भरे स्थानों में जीएं। और ध्यान रहे, हर आदमी के पास इतना है कि काश, वह देखने लगे, तो शायद इस जमीन पर गरीब आदमी खोजना मुश्किल है।

सुना है मैंने कि एक आदमी रो रहा है, छाती पीट रहा है। और एक फकीर उसके पास से निकला है और उसने पूछा कि तुम इतने परेशान हो रहे हो कि मुझे मालूम पड़ता है कि तुम बड़े गरीब आदमी हो। लेकिन मेरे गुरु ने कहा है कि इस जमीन पर कोई आदमी गरीब नहीं है। या तो मेरे गुरु गलत हैं, या तुम कुछ गलती समझे हो।

उस आदमी ने कहा, मुझसे गरीब आदमी खोजना मुश्किल है। आज मैं दो दिन से भूखा हूं। मेरे पास कुछ भी नहीं है। उस फकीर ने कहा, लेकिन मेरे गुरु ने कुछ जांचने की तरकीबें बताई हैं; मैं पहले उनका प्रयोग कर लूं। उस आदमी ने कहा, तुम कब प्रयोग करोगे? मैं मरने के करीब हूं। मैं नदी में जा रहा हूं गिरने के लिए। आत्महत्या की तैयारी करके निकला हूं। अब मेरे पास कुछ भी नहीं है।

उस फकीर ने कहा, तुम थोड़ा समय मुझे दो। तुम थोड़ी देर बाद भी मर जाओगे, तो दुनिया का कोई हर्ज होने वाला नहीं है। तुम मेरे साथ आओ। कम से कम मैं अपने गुरु की परीक्षा कर लूं।

उस आदमी को ले गया सम्राट के पास। और सम्राट से जाकर भीतर उसने कुछ बात की। लौटकर उस आदमी को ले गया और रास्ते में उससे कहा कि सम्राट से मैंने तय कर लिया है; तुम्हारी एक-एक आंख के लिए वह एक-एक लाख रुपया देने को तैयार है। तुम दोनों आंखें बेच दो। दो लाख रुपए तुम्हारे हाथ में पड़ते हैं। उस आदमी ने कहा, तुमने मुझे क्या पागल समझा हुआ है? मैं और आंखें बेच दूं! उस फकीर ने कहा, लाख रुपए मिल रहे हैं, अगर तुम्हारा इरादा कुछ और ज्यादा का हो, तो बोलो। उसने कहा, तुम करोड़ भी दो, तो मैं आंख नहीं बेच सकता।

क्योंकि जैसे ही खयाल आया अंधे होने का, तब पता चला कि आंख है। जब तक आंख थी, तब तक थी; बेकार थी। वह मरने जा रहा था। मरने में आंख भी मिट जाती। और भी सब कुछ मिट जाता।

तो फकीर ने कहा, छोड़ो आंख को। हो सकता है, तुम्हें मरने जाना है नदी पर, तो आंख की जरूरत पड़े। इतना रास्ता पार करना पड़े। लेकिन कई चीजें ऐसी हैं, जो बिलकुल बेकार हैं; मरने के लिए जिनका कोई उपयोग नहीं है। कान ही बेच दो। हाथ ही बेच दो। कुछ तो बेच दो। क्योंकि मैं तुम्हारे लिए ग्राहक खोज लिया हूं। उस आदमी ने कहा कि तू आदमी किस तरह का है! मैं नहीं मरना चाहता हूं।

क्योंकि उस आदमी को पहली दफा खयाल आया कि अगर हाथ भर कट जाए, तो कितनी कमी हो जाएगी। तो मौत कितनी बड़ी कमी होगी!

अगर मरने वालों को, स्युसाइड करने वालों को करने के बाद एक मौका और दिया जाए, तो वे सब पछताते हुए वापस लौटेंगे। लेकिन मौका नहीं मिलता, इसलिए नहीं लौटते हैं। इसलिए अगर आपको स्युसाइड करनी हो, तो जल्दी कर लेना; देर मत लगाना। क्योंकि पांच-सात मिनट भी रुक गए, फिर आप न कर पाएंगे। उतनी देर में तो शायद अभाव का खयाल आ जाएगा कि यह मैं क्या कर रहा हूं! सब मिट जाएगा।

इसलिए जो लोग भी आत्मघात करते हैं, वे तीव्र भावावेश में और क्षण में कर लेते हैं। कंसीडर्ड, सोच-विचारकर कभी भी कोई आत्महत्या नहीं कर पाता।

इस पृथ्वी पर कुछ बहुत विचारशील लोग हुए हैं, जिन्होंने आत्महत्या की तारीफ की है। उनमें यूनान का एक विचारक था, पिरहो। पिरहो कहता था कि आत्मघात एकमात्र करने जैसी चीज है, क्योंकि जिंदगी बेकार है। लेकिन वह नब्बे वर्ष का होकर मरा। और जब वह मर रहा था, तब किसी ने संदेह उठाया कि आश्चर्य कि कम से कम पचास साल से आप लोगों को समझा रहे हैं कि जिंदगी-मौत सब बराबर हैं। मर जाने के सिवाय कोई ठीक काम नहीं है। देअर इज़ नो डिफरेंस बिटवीन लाइफ एंड डेथ। आप यह समझाते रहे, कोई अंतर नहीं जीवन और मृत्यु में। आप नब्बे साल तक कैसे जीए? आप मर क्यों न गए?

पिरहो ने आंख खोली और उसने कहा, बिकाज देअर इज़ नो डिफरेंस, क्योंकि कोई अंतर नहीं है मरने-जीने में। मैंने बहुत सोचा और पाया, कोई अंतर नहीं है। तो मरने से भी क्या फायदा! तो मैंने कहा, ठीक है, जो होता है, होने देना।

पिरहो बहुत विचारशील आदमी था। और जिंदगीभर मरने के संबंध में सोचता रहा। मरा नब्बे वर्ष का होकर!

बहुत सोच-विचार वाले लोग आत्मघात नहीं करते। तीव्र भाव के क्षण में घटना घट जाती है। क्योंकि उस भाव के क्षण में आप इतने आविष्ट होते हैं कि आपका निगेटिव माइंड सोच नहीं पाता कि कितना बड़ा गड्ढा पैदा होने जा रहा है। बस एक क्षण में हो जाता है।

कृष्ण कहते हैं, करोड़ में कोई एक कभी प्रभु की खोज पर निकलता है। क्योंकि करोड़ में एक आदमी के पास विधायक चित्त है।

कल मैंने कहा था, संदेह से भरा चित्त। आज आपको और मैं संदर्भ बता दूं। संदेह से भरा चित्त निगेटिव होगा, नकारात्मक होगा। श्रद्धा से भरा चित्त विधायक होगा, पाजिटिव होगा।

अगर संदेह से भरे चित्त वाले आदमी को हम कहें कि दुनिया के संबंध में कुछ वक्तव्य दो, तो वह जो वक्तव्य देगा, वे नकारात्मक होंगे। वह कहेगा, दुनिया बिलकुल बेकार है। यहां दो अंधेरी रात के बीच में एक छोटा-सा उजाले का दिन होता है। दो अंधेरी रात बड़ी घटना मालूम होगी। अगर हम विधायक चित्त के व्यक्ति से पूछें, तो वह कहेगा, यह दुनिया बड़ी अदभुत है। यहां दो उजेले दिनों के बीच में एक छोटी-सी अंधेरी रात होती है!

अगर हम निषेधात्मक चित्त के व्यक्ति से पूछें, तो वह गुलाब के फूल के पास खड़े होकर सिवाय परमात्मा की निंदा के और कुछ न कर पाएगा। क्योंकि वह कहेगा, जहां इतने कांटे हैं, वहां मुश्किल से एक फूल खिलता है। फूल बेकार हो गया इतने कांटों की वजह से। अगर हम विधायक चित्त के आदमी से पूछें, तो वह कहेगा, आश्चर्य! प्रभु का धन्यवाद है। वह गुलाब के पास खड़े होकर घुटने टेककर प्रभु की प्रार्थना में लीन हो जाएगा। और वह कहेगा, अदभुत है तेरी लीला कि जहां इतने कांटे हैं, वहां भी फूल पैदा होता है। चमत्कार है, मिरेकल है।

तो विधायक चित्त जिस व्यक्ति के पास है, वह प्रभु की खोज पर निकलता है।

लेकिन कृष्ण फिर एक और बात कहते हैं कि करोड़ लोग प्रयत्न करें, तो कभी एक मुझे उपलब्ध होता है।

इसका क्या अर्थ होगा? इसे भी ठीक से समझ लें।

जो लोग भी प्रभु की दिशा में यात्रा शुरू करते हैं, करोड़ में से एक ही समर्पण करता है। करोड़ में से एक यात्रा करता है। अगर करोड़ यात्रा करें, तो एक समर्पण करता है। बाकी लोग संकल्प करते हैं, समर्पण नहीं। बाकी लोग कहते हैं, हम प्रभु को पाकर रहेंगे। तू कहां है, हम खोजकर रहेंगे। हम अपनी पूरी ताकत लगाएंगे। जीवन लगा देंगे दांव पर, लेकिन तुझे पाकर रहेंगे।

कभी एक आदमी ऐसा होता है, जो कहता है कि मेरी क्या सामर्थ्य! मैं असहाय हूं। मेरी कोई शक्ति नहीं है। मैं तुझे कैसे खोज पाऊंगा! अगर तू ही मुझे खोज ले, तो शायद घटना घट जाए। मैं तुझे कैसे खोज पाऊंगा! मेरी शक्ति बड़ी छोटी है। एक छोटी-सी बूंद हूं। न मालूम किस रेगिस्तान में खो जाऊं! अगर सागर ही मुझ तक आ जाए, तो ठीक। अन्यथा मैं सागर को खोज पाऊं, इसकी कोई संभावना नहीं है।

जो लोग प्रभु की खोज पर निकलते हैं, वे भी अस्मिता को, अहंकार को लेकर निकलते हैं। वे कहते हैं, हम प्रभु को पाकर रहेंगे। साधना करेंगे। योग करेंगे। आसन करेंगे। ध्यान करेंगे। लेकिन पीछे वह मैं खड़ा रहेगा।

जैन परंपरा में एक बहुत मीठी कथा है। ऋषभ के सौ पुत्र थे। अनेक पुत्रों ने ऋषभ से दीक्षा ले ली। वे संन्यास की यात्रा पर निकल गए। बाहुबली भी ऋषभ के एक पुत्र थे। उन्होंने जरा देर की दीक्षा लेने में; कुछ सोच-विचार किया। लेकिन तब तक बाहुबली से छोटे बेटे दीक्षित हो गए। और जब बाहुबली के मन में दीक्षा का खयाल आया, तो उसके अहंकार को बड़ी पीड़ा हुई कि अपने छोटे भाइयों को संन्यास के जगत में तो मुझे प्रणाम करना पड़ेगा। क्योंकि वे मुझसे अग्रणी हो गए। उनके संन्यास की यात्रा बड़ी हो गई। अपने से छोटों को और मैं नमस्कार करूं, यह न हो सकेगा! तो उसने सोचा, ऐसी भी क्या जरूरत है। मैं खुद ही साधना क्यों न कर लूं!

बलशाली व्यक्ति था। कमजोर तो हारते ही हैं, कभी-कभी बलशाली बुरी तरह हारते हैं। बल ही उनके हारने का कारण हो जाता है।

तो बाहुबली एकांत में जाकर गहन तपश्चर्या में, सघन तपश्चर्या में लीन हुए। शायद इस पृथ्वी पर कम ही लोगों ने ऐसी तपश्चर्या की होगी और ऐसी साधना की होगी। सब कुछ दांव पर लगा दिया। सब कुछ। बस, एक छोटी-सी चीज छोड़कर; वह मैं पीछे खड़ा रहा।

उनकी तपश्चर्या की ख्याति कोने-कोने तक पहुंच गई। जहां भी लोग सोचते-समझते थे, वहां तक बाहुबली की खबर पहुंची। और लोग हैरान हुए कि इतना पवित्रतम व्यक्ति, इतना शुद्धतम व्यक्ति, सब कुछ दांव पर लगाए खड़ा है, फिर भी कोई दर्शन नहीं हो रहा है सत्य का! क्या बात है?

ऋषभ के पास भी खबर पहुंची। ऋषभ मुस्कुराए और उन्होंने बाहुबली की एक बहन को, जो दीक्षित हो गई थी, बाहुबली के पास भेजा और कहा, बस, जरा-सा तिनका अटका हुआ है। लेकिन वह तिनका पहाड़ों से भी भारी है। सब दांव पर लगा दिया है, सिर्फ मैं को बचा लिया है!

और आप कुछ भी दांव पर न लगाएं, सिर्फ मैं को दांव पर लगा दें, तो हल हो जाए। लेकिन सब दांव पर लगा दें--धन, दौलत, यश, शरीर, मन--लेकिन एक पीछे मैं बच जाए, तो सब बेकार है। वह दांव पर लगाने वाला पीछे बच जाए, तो आप परमात्मा से संघर्ष कर रहे हैं; आप परमात्मा से प्रार्थना नहीं कर रहे हैं। तो आप सत्य को भी विजय करने निकले हैं; सत्य के साथ एक होने नहीं निकले हैं। यह कोई प्रेम की यात्रा नहीं है; यह कोई युद्ध, आक्रामक चित्त की दशा है।

सब दांव पर है बाहुबली का। कुछ बचा नहीं लगाने को। वह भी चिंता में पड़ा, अब और क्या करने को बचा है? जितने उपवास कहे हैं तीर्थंकरों ने, सब पूरे कर डाले। जितने जागरण के लिए कहा है, उतनी रातें जागकर बिता दीं। कहा है खड़े रहो, तो महीनों खड़ा रहा हूं। कहा है कि चित्त को एकाग्र कर लो, तो चित्त एकाग्र है। सब शर्तें पूरी हैं। फिर कुछ हो तो नहीं रहा है। कहीं कोई कमी तो नहीं दिखाई पड़ती।

फिर ऋषभ के द्वारा भेजी गई बाहुबली की बहन ने--बाहुबली आंख बंद किए। विशालकाय व्यक्ति था। सुंदरतम शरीर वाला व्यक्ति था। गोमटेश्वर में बाहुबली की प्रतिमा है, कभी आपने चित्र देखे होंगे। विशालकाय! जिसमें शरीर पर बेलाएं चढ़ गई हैं। और पक्षियों ने कान में घोंसले बना लिए थे। और शरीर पर बेलाएं चढ़ गई थीं, उसका उन्हें पता भी नहीं था। क्योंकि वह तो अंतर के संघर्ष में इतना लीन था कि शरीर पर क्या घट रहा है, उसे पता भी नहीं था।

बहन ने चारों तरफ से जाकर बाहुबली को देखा। इतना घोर तपस्वी तो कभी देखा नहीं गया! कान पर पक्षियों ने घोंसले बना लिए हैं; अंडे रख दिए हैं। सुरक्षित जगह है। बाहुबली हिलता भी नहीं। बेलाएं चढ़ गई हैं। बेलाओं में फूल आ गए हैं। न मालूम कब से बाहुबली ऐसा ही खड़ा है पत्थर की तरह। अब और क्या बाकी है?

और तब गहरे और गहरे घूमकर बहन ने भीतर तक झांकने की कोशिश की। और उसे दिखाई पड़ा कि भीतर बस एक चीज बाकी रह गई, वह मैं। तो एक गीत बाहुबली की बहन ने गाया कि सब कर चुके तुम, अब जरा सिंहासन से नीचे उतर आओ! बस, और कुछ न करो, जरा सिंहासन से नीचे उतर आओ। यह हाथी की पालकी पर कब तक बैठे रहोगे! जरा नीचे उतर आओ।

और बाहुबली को यह सुनाई पड़ा कि हाथी की पालकी पर कब तक बैठे रहोगे! जरा नीचे उतर आओ। सब शुद्ध था। बस, वह एक पालकी अहंकार की भारी थी। और उसी क्षण घटना घट गई। इतनी बड़ी तपश्चर्या से जो न हुआ था, पालकी से उतरते ही हो गया। बाहुबली ने झुककर बहन को नमस्कार कर लिया। बात समाप्त हो गई। घटना घट गई।

करोड़ लोग प्रयास करते हैं, एक पहुंचता है। क्योंकि वह एक ही अपनी अस्मिता को और अहंकार को खोता है।

इसलिए कृष्ण ने कहा, मुझको परायण हुआ, मेरी तरफ झुक गया, समर्पित हुआ, मेरे चरणों में आ गया!

यहां सवाल बड़ा यह नहीं है कि कृष्ण के चरणों में आ जाओ। बड़ा सवाल यह है कि झुक जाओ। ध्यान रहे, असली सवाल है झुका हुआ मन, समर्पित, सरेंडर्ड।

करोड़ में से एक करता है कोशिश। करोड़ कोशिश करते हैं, एक पहुंच पाता है। कोशिश करता है वह, जिसके पास विधायक मन है। लेकिन विधायक मन का खतरा है कि वह अहंकार को मजबूत कर दे। पहुंच पाता है वह, जो मैं को समर्पित कर देता है। तब फिर, तब फिर कोई बाधा नहीं रह जाती।

परमात्मा की तरफ से कोई बाधा नहीं है। आदमी की तरफ से दो बाधाएं हैं। एक, नकारात्मक मन; और दूसरा, अस्मिता से भरा हुआ भाव, अहंकार से भरा हुआ भाव। इन दो दरवाजों को जो पार कर जाता है, कृष्ण कहते हैं, वह मुझको उपलब्ध हो जाता है।

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा।।4।।
और हे अर्जुन, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश तथा मन, बुद्धि और अहंकार भी, ऐसे यह आठ प्रकार से विभक्त हुई मेरी प्रकृति है।

इस सूत्र में दोत्तीन बातें समझने जैसी हैं। पहली बात, कृष्ण ने प्रकृति को आठ हिस्सों में विभाजित किया। पंच महाभूत–पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश।

पहले तो पंच महाभूत को थोड़ा समझ लें, क्योंकि पंच महाभूत की धारणा के कारण भारतीय चिंतन को पश्चिम में बहुत धक्का पहुंच रहा है। इस मुल्क में भी जो लोग सुशिक्षित हैं, उनको भी बड़ी कठिनाई होती है। चूंकि अब तो पंच महाभूत का कोई सवाल न रहा। अब तो वैज्ञानिक कहते हैं कि एक सौ आठ तत्व हैं। फिर और थोड़े गहरे गए हैं, तो वे कहते हैं, एक ही तत्व है–एक सौ आठ तो उसके प्रकार हैं–वह है विद्युत।

कृष्ण जैसा व्यक्ति जब कहता है, पंच महाभूत, तो यह सिर्फ कोई लोकोक्ति नहीं हो सकती। लोग सदा ऐसा कहते रहे हैं, पांच महाभूत। मोटा हिसाब है कि इन पांच चीजों से सारा जगत बना हुआ है। लेकिन कृष्ण जब ऐसा वक्तव्य देते हैं, तो उस वक्तव्य के पीछे थोड़ा गहरे उतरना पड़ेगा। कृष्ण का वक्तव्य बहुत वैज्ञानिक है। और इसलिए इन पंच

महाभूत की व्याख्या जैसी मैं देखता हूं, और जैसी आज के पूरे वैज्ञानिक चिंतन के बाद की जानी चाहिए, वह मैं आपसे कहना चाहता हूं।

पंच महाभूत केवल लोगों की प्रचलित शब्दावली का उपयोग है। और इसलिए भारत के भी जो लोग सिर्फ शब्दों को सोचते हैं, शास्त्रों को सोचते हैं, वे भी इस पंच महाभूत की धारणा में गहरे नहीं उतर सके।

अगर ठीक से समझें, तो पश्चिम में विज्ञान ने जो तत्वों की धारणा पैदा की है, वह तो प्रयोगशालाओं में की गई है। और भारत ने जो पंच महाभूत की धारणा की है, वह प्रयोगशालाओं में नहीं, अंतस अनुभूति में की गई है। जो लोग भी अंतस जीवन की गहराइयों में उतरेंगे, उन्हें एक तत्व का साक्षात्कार जरूर ही होगा; वह है फायर, वह है अग्नि। जो लोग भी अपने भीतर गहरे में जाएंगे, अंततः उन्हें अग्नि का अनुभव होगा, विराट अग्नि का अनुभव होगा।

इसीलिए जैसे-जैसे व्यक्ति ध्यान में भीतर प्रवेश करता है, प्रकाश, और ऐसे जैसे हजारों सूरज उतर आए हों, दिखाई पड़ने लगते हैं। ध्यान में प्रकाश का अनुभव अंतर्गमन की सूचना है। यह प्रकाश उस अंतर-अग्नि की बहुत दूर की किरण है। जब हम बहुत गहरे में पहुंचेंगे, तभी हमें पूरी अग्नि का आभास होगा।

हां, अग्नि शब्द से सिर्फ आपके घर में जो आग जलती है, उससे ही कृष्ण का प्रयोजन नहीं है। अग्नि से अर्थ है, जीवन का समस्त रूप अग्नि का ही रूप है।

अब तो वैज्ञानिक कहते हैं कि आपके भीतर भी जो जीवन चल रहा है, वह भी आक्सीडाइजेशन से ज्यादा नहीं है। पूरे समय हवाओं में से जाकर आक्सीजन आपके भीतर की जीवन-ज्योति को जला रही है।

अगर आप, एक दीया जल रहा हो और उसके ऊपर एक कांच का बर्तन ढांक दें, तब आपको पता चलेगा। कभी ऐसा हो जाता है कि तूफान जोर का होता है, तो घर में कोई कांच के गिलास को दीए पर ढांक दे। एक क्षण को तो लगेगा कि दीए को आपने बचा लिया तूफान से। लेकिन ध्यान रखना, तूफान में तो दीया बच भी सकता था, गिलास के भीतर दीया नहीं बचेगा। क्योंकि थोड़ी ही देर में आक्सीजन चुक जाएगी। और आक्सीजन के बिना दीया जल नहीं सकेगा। थोड़ी ही देर में ग्लास के भीतर जितनी हवा है, उसकी आक्सीजन जल जाएगी। और फिर तो कार्बन डाइ आक्साइड रह जाएगा, जो दीए को बुझा देगा। तूफान तो झेल सकता है दीया, लेकिन आक्सीजन की कमी नहीं झेल सकता। क्योंकि आक्सीजन ही फायर है, अग्नि है।

आप भी नहीं झेल सकते। आपकी भी श्वास बंद कर दी जाए; नाक तो छोड़िए, अगर नाक आपकी चलने भी दी जाए, और पूरे शरीर पर ठीक से डामर पोत दिया जाए; रोएं-रोएं सब बंद कर दिए जाएं, नाक चलने भी दी जाए, तो भी आप पंद्रह मिनट से ज्यादा जिंदा नहीं रह पाएंगे। क्योंकि आपका रोआं-रोआं श्वास ले रहा है। वह श्वास जाकर आपके भीतर की जीवन अग्नि को जला रही है। और अगर श्वास बंद कर दी जाए, तब तो आप अभी ही समाप्त हो जाएंगे। क्योंकि भीतर भी जीवन एक दीए की भांति है, जिसको पूरे समय आक्सीजन चाहिए।

जो अग्नि के जलने का नियम है, वही जीवन के जलने का नियम भी है। जीवन की गहराई में, समस्त तत्वों की गहराई में अग्नि है। अग्नि महाभूत है। आधारभूत है।

आज विज्ञान की खोज इलेक्ट्रिसिटी पर ले गई है। वे जिसे आज विद्युत कह रहे हैं, भारत के अंतर्मनीषी ने उसे अग्नि कहा था। और ठीक था, क्योंकि अग्नि उन दिनों सुपरिचित शब्द था। और उसी से बात प्रकट की जा सकती थी।

विद्युत भी अग्नि का ही रूप है। तो अग्नि मूल तत्व है। पृथ्वी अग्नि का एक रूप है, सालिड। अग्नि का ठोस रूप पृथ्वी है। अग्नि का दूसरा रूप है, जल, लिक्विड, प्रवाह। अग्नि का तीसरा रूप है, वायु।

विज्ञान कहता है, पदार्थ की तीन स्थितियां हैं, सालिड, लिक्विड और गैसीय। पदार्थ की तीन स्थितियां हैं, या तो ठोस, जैसे कि पत्थर है या पानी का बर्फ। फिर जलीय, द्रवीय, जैसे कि जल है। और फिर वायुवीय, जैसे कि पानी की भाप है। प्रत्येक अस्तित्ववान चीज तीन रूपों में प्रकट हो सकती है।

पृथ्वी, जिसे आज विज्ञान कहता है, सालिड। उन दिनों पृथ्वी से सालिड और कोई चीज खयाल में आ भी नहीं सकती थी। वह प्रतीक शब्द है। जल, जल से ज्यादा और प्रवाहवान कोई चीज खयाल में नहीं आ सकती थी। और वायु; वायु से ज्यादा वाष्पीय, गैसीय और कोई तत्व खयाल में नहीं आ सकता था।

हां, अग्नि है मूल तत्व। अग्नि जब प्रकट होती है, तो तीन रूपों में प्रकट होती है। पदार्थ का एक रूप ठोस, दूसरा रूप जलीय, तीसरा रूप गैसीय।

और यह अग्नि के प्रकट होने के लिए जो जगह चाहिए, वह जगह है आकाश। आकाश से अर्थ है, स्पेस। आकाश से अर्थ स्काई नहीं है। आकाश से, आपके ऊपर जो चंदोवा तना हुआ है, उससे प्रयोजन नहीं है। आकाश शब्द बहुत अदभुत है। आकाश का कुल अर्थ होता है, जिसमें अवकाश मिले, जिसमें जगह मिले, जिसके बिना कोई चीज न हो सके। जगह तो चाहिए। और जगह के दो प्रकार हैं।

अगर मैं आपसे कहूं कि हत्या हो गई; तो आप पूछेंगे, कहां और कब? आप दो शब्द पूछेंगे, कहां और कब? कहां का मतलब है, किस स्थान में, एक्जेक्ट प्लेस, कौन-सी जगह। अगर मैं कहूं, नहीं; जगह कोई भी नहीं है, सिर्फ फलां आदमी की हत्या हो गई है। तो आप कहेंगे कि गलत कह रहे हैं। क्योंकि बिना किसी जगह में हुए हत्या नहीं हो सकती। जगह तो चाहिए। लेकिन अकेली जगह में भी हत्या नहीं हो सकती, टाइम भी चाहिए। तो आप पूछते हैं, कब? व्हेन? किस समय हुई? अगर मैं कहूं, नहीं, समय में नहीं हुई। स्थान में तो हुई, समय में नहीं हुई। तो आप कहेंगे, नहीं हो सकती है। किसी भी वस्तु को होने के लिए दो आयामों में स्थान चाहिए, समय और स्थान, क्षेत्र।

पूछा जा सकता है कि इस पंच महाभूत की धारणा में आकाश को तो गिनाया, स्पेस को; टाइम को, काल को क्यों नहीं गिनाया?

तो एक और मजे की बात आपसे कहना चाहता हूं कि आइंस्टीन के पहले तक ऐसा खयाल था कि टाइम और स्पेस दो चीजें हैं, वैज्ञानिकों को। लेकिन आइंस्टीन ने यह सिद्ध करने का भगीरथ प्रयास किया, और बात सिद्ध हो गई, कि टाइम और स्पेस दो चीजें नहीं हैं। एक ही चीज है, टाइम-स्पेस या स्पेस-टाइम-कंटीनम। ये दो चीजें नहीं हैं। समय और स्थान एक ही चीज के दो पहलू हैं।

इसलिए कृष्ण के समय तक भी यह खयाल था कि समय अलग नहीं है। समय भी स्थान का ही एक हिस्सा है। इसलिए अलग से उसे नहीं गिनाया गया। पंच महाभूत में अवकाश देने के लिए जरूरी--आकाश; अस्तित्व के लिए आधारभूत--अग्नि; और प्रकट अस्तित्व के तीन रूप--पृथ्वी, जल और वायु; इन पंच महाभूतों की धारणा है।

लेकिन कृष्ण जैसे व्यक्ति जब बात करते हैं, तो जिनसे बात करते हैं, उनके ही शब्दों का उपयोग करते हैं। यही उचित भी है। इसीलिए आज कठिनाई हो गई है। आइंस्टीन मजाक में कहा करता था कि मेरी बात को समझने वाले इस जमीन पर बारह लोगों से ज्यादा नहीं हैं। वह भी अनुमान था उसका कि बारह लोग इस जमीन पर हैं साढ़े तीन अरब आदमियों में, जो मेरी बात समझ सकते हैं। हालांकि उसकी पत्नी ने शक जाहिर किया है कि बारह लोग भी हो सकते हैं।

क्या बात है? आइंस्टीन की बात को समझने के लिए बारह लोग! आइंस्टीन जो भाषा बोल रहा है, उस भाषा में सारी कठिनाई है। वह गणित की भाषा है।

कृष्ण जो भाषा बोल रहे हैं, वह लोक-भाषा है। कृष्ण की बात सब की समझ में आ सकती है। लोक-भाषा में बोलने का एक खतरा है कि चीजें कभी बहुत तर्कबद्ध और सूक्ष्म नहीं हो सकतीं। लेकिन सूक्ष्म और तर्कबद्ध और गणित की भाषा में बोलने का दूसरा खतरा है कि चीजें किसी की समझ में नहीं आतीं; समझ के बाहर खो जाती हैं।

तो जिनकी दृष्टि केवल तत्व-अन्वेषण की है, वे तो गणित की भाषा भी बोल सकते हैं। इसलिए आइंस्टीन का खयाल है कि भविष्य की विज्ञान की भाषा, आम भाषा नहीं रहेगी, सिर्फ गणित की भाषा हो जाएगी। अंकों में बात होगी, शब्दों में नहीं। क्योंकि शब्दों में गड़बड़ होती है। प्रतीकों में बात होगी, शब्दों में नहीं। क्योंकि शब्दों के अनेक अर्थ होते हैं।

लेकिन कृष्ण जो बोल रहे हैं, वह तत्व-अन्वेषण के लिए नहीं, तत्व-साधना के लिए बोल रहे हैं। अर्जुन को समझ में आ सके, उस भाषा में बोल रहे हैं। तो उन्होंने लोक-प्रचलित पंच महाभूत की बात कही। लेकिन उस पंच महाभूत की बात में पूरी वैज्ञानिक दृष्टि है।

आधारभूत तो एक ही है, अग्नि, तेज। इसलिए अग्नि को देवता कहा। इसलिए सारे जगत में अग्नि की पूजा हुई। अभी भी पारसी अपने मंदिर में चौबीस घंटे अग्नि को जलाए हुए है। शायद उसे ठीक पता भी नहीं कि किसलिए जलाए हुए है। रीति है, प्रचलित है, जलाए हुए है। उसका मंदिर तो अग्नि का ही मंदिर है। लेकिन खयाल नहीं है कि क्यों?

अग्नि जीवन का आधारभूत तत्व है; वही देवता है। उससे ही जीवन का सब रूप विकसित होता है। मंदिर में अग्नि जलाकर बैठने से कुछ हल न होगा। इस जीवन में सब तरफ अग्नि को ही जलते हुए देखने से अग्नि के देवता का दर्शन होता है।

जहां भी जो कुछ है, वह अग्नि का ही रूप है। और उस अग्नि के तीन रूप हैं प्रकट--ठोस, फिर जलीय, फिर वायवीय। और उसकी जगह जिसमें मिली है, समय और स्थान, उसका नाम आकाश है। इन पंच महाभूतों की कृष्ण ने बात कही। इनसे प्रकृति बनी है। और तीन और अंतर-रूपों की बात कही। और इन आठों को इकट्ठा गिनाया। तीन कहा--मन, बुद्धि, अहंकार।

सबसे ज्यादा पहली चीज कही, पृथ्वी। और सबसे अंतिम चीज कही, अहंकार। पृथ्वी सबसे मोटी और स्थूल चीज है। अहंकार सबसे सूक्ष्म और बारीक और डेलिकेट चीज है। इस जगत में जो सूक्ष्मतम अस्तित्व है, वह अहंकार है। और जो स्थूलतम अस्तित्व है, वह पृथ्वी है। इसलिए इस तरह। और एक-एक के बाद। सबसे पहले भीतर की यात्रा में कहा, मन।

मन का अर्थ है, हमारे भीतर वह जो सचेतना है, वह जो कांशसनेस है। मन का अर्थ है, सचेतना। वह जनरलाइज्ड हमारे भीतर जो मनन की शक्ति है, उसका नाम मन है। मन का बहुत रूप जानवरों में भी है। जानवर भी मन से जीते हैं, लेकिन बुद्धि उनके पास नहीं है।

बुद्धि मन का स्पेशलाइज्ड रूप है। सिर्फ मनन नहीं, बल्कि तर्कयुक्त, तर्कसरणीबद्ध चिंतन का नाम बुद्धि है। और बुद्धि के भी पीछे जब कोई बहुत बुद्धि का उपयोग करता है, तभी भीतर एक और सूक्ष्मतम चीज का जन्म होता है, जिसका नाम अहंकार है, मैं।

ये आठ तत्वों से मैंने यह सारी प्रकृति रची है, कृष्ण कहते हैं।

यह किसलिए कहते हैं? यह वे इसलिए कहते हैं कि इन आठ तत्वों में तू प्रकृति को जानना। और जब इन आठ के पार चला जाए, तब तू मुझे जान पाएगा। इन आठ के भीतर तू जब तक रहे, तब तक तू जानना कि संसार में है; और जब इन आठ के पार हो जाए, तब तू जानना कि तू परमात्मा में है।

सर्वाधिक कठिनाई और आखिरी मुसीबत तो अहंकार के साथ होगी, क्योंकि बहुत ही बारीक है। हवा को तो मुट्ठी में हम बांध भी लें थोड़ा-बहुत, उसको मुट्ठी में बांधने का भी उपाय नहीं। हवा तो चलती है, तो उसका धक्का भी लगता है; अहंकार चलता है, तो उसका स्पर्श भी मालूम नहीं पड़ता।

इसीलिए तो दुरूह हो जाता है अहंकार से ऊपर उठना। क्योंकि इतना सूक्ष्म है कि आप कुछ भी करो, उसी में प्रवेश कर जाता है। आप त्याग करो, वह उसी के पीछे खड़ा हो जाता है। वह कहता है, मैंने त्याग किया! आप किसी के

चरण छुओ, समर्पण करो। वह पीछे से कहता है कि देखो, मैं कितना विनम्र हूं! मैंने चरण छुए! आप प्रार्थना करो, परमात्मा के मंदिर में सिर पटको। वह कहता है कि देखो, मैं कितना धार्मिक हूं! मैंने प्रभु की प्रार्थना की। जब कि दूसरे अधार्मिक सड़कों से जा रहे हैं दूकानों की तरफ; मैं धार्मिक, प्रभु की प्रार्थना कर रहा हूं!

वह मैं आपकी प्रत्येक क्रिया के पीछे खड़ा हो जाता है। आप कुछ भी करो, वह सदा पीछे है। वह इतना बारीक है कि आप कहीं से द्वार-दरवाजे बंद नहीं कर सकते, जहां वह न आ जाए। जहां भी आप होंगे, वहां वह पहुंच जाएगा। जब तक आप होंगे, तब तक वह पहुंच जाएगा।

तो कृष्ण ने यह विभाजन जो करके कहा, वह इसीलिए कहा है कि मोटी से मोटी चीज है पृथ्वी, और सूक्ष्म से सूक्ष्म चीज है अहंकार। पदार्थ से तो मुक्त होना ही है, अंततः अस्मिता से भी मुक्त होना है। क्योंकि अहंकार भी पदार्थ का ही सूक्ष्मतम रूप है।

अगर ठीक से समझें, तो मैंने जैसा कहा कि अग्नि के ही रूप हैं सब बाह्य पदार्थ, वैसे ही अग्नि के ही रूप हैं भीतर के पदार्थ। जिसको हम मनन कहते हैं, वह भी अग्नि का ही एक रूप है। और जिसे हम बुद्धि कहते हैं, वह भी अग्नि का ही एक रूप है।

और इसीलिए मैं आपसे कहूं कि अगर पश्चिम में आज सफलता मिल गई है कंप्यूटर बनाने में, और जो बुद्धि से आप काम करते थे, वह पेट्रोल या बिजली से चलने वाली मशीन करने लगी है, तो बहुत चकित होने की जरूरत नहीं। क्योंकि आप भी जो काम कर रहे हैं, वह भी सिर्फ नेचरल कंप्यूटर का है। आपके भीतर भी जो चल रहा है काम, वह भी अग्नि से ही चल रहा है। ठीक वैसी ही मशीन बाहर भी अग्नि से काम कर सकती है। और काम करने लगी है। और आदमी से ज्यादा कुशल काम करती है। क्योंकि उस मशीन के पास कोई अहंकार नहीं है, जो बीच में बाधा डाले। कोई अहंकार नहीं है; वह बिलकुल कुशलता से काम करती रहती है। ठीक फ्यूल मिल जाए, ईंधन मिल जाए, मशीन काम करती रहती है।

आपकी बुद्धि का काम तो मशीन करने लगी है। आज नहीं कल, शायद हम किसी दिन ऐसी मशीन भी ईजाद करने में सफल हो जाएंगे...। अभी किसी वैज्ञानिक को सूझा नहीं है, और न उन लोगों को सूझा है, जो विज्ञान के संबंध में उपन्यास और कल्पनाएं लिखते हैं। लेकिन मैं कहता हूं, किसी दिन यह भी संभव हो जाएगा कि हम ऐसी मशीन बनाने में सफल हो जाएंगे, जिस मशीन को आप जरा पैर की चोट मार दे, तो वह कहेगी, देखते नहीं; मैं कौन हूं! तो मशीन कह सकती है। क्योंकि अहंकार भी बहुत सूक्ष्म अग्नि है।

अगर हमने विचार पैदा कर लिया मशीन से, अगर हमने विचार का काम ले लिया मशीन से, अगर हमने बुद्धि का काम ले लिया मशीन से, तो बहुत देर नहीं लगेगी कि उसमें हम अस्मिता को भी जन्म दे दें। और मशीनें भी अकड़कर बैठ जाएं! कुछ मशीनें राष्ट्रपति हो जाएं, कुछ मशीनें प्राइम मिनिस्टर हो जाएं। कुछ कठिनाई नहीं है। मशीनें दावे करने लगें। मशीनें कभी न कभी दावे करेंगी; क्योंकि हमारे भीतर भी मशीनें दावे कर रही हैं। हमारे भीतर भी दावे मशीनों के हैं। लेकिन वह है मशीन, है पदार्थ, है प्रकृति।

सुना है मैंने, एक अदालत में एक आदमी पर, एक गरीब आदमी पर मुकदमा चल रहा है। और मजिस्ट्रेट उससे पूछता है कि क्या तुमने नेताजी को बदमाश कहा?

गांव में कोई नेताजी हैं, सभी गांव में हैं। मानहानि का मुकदमा चल रहा है उस आदमी पर। नेताजी ने मानहानि का मुकदमा चलाया है। कमजोर नेताजी रहे होंगे। नहीं तो नेता लोग मानहानि की फिक्र नहीं करते; चौबीस घंटे सहनी पड़ती है। जिसको मान चाहिए, उसे मानहानि सहनी ही पड़ेगी। जिसे सिंहासन पर चढ़ना है, उसे गालियों के रास्ते से गुजरना ही पड़ेगा। कोई उपाय नहीं है।

कमजोर नेताजी रहे होंगे, या सिक्खड़, एमेच्योर। अभी नए-नए होंगे। मुकदमा चला दिया। गुस्से में आ गए।

मजिस्ट्रेट उस आदमी से पूछ रहा है–नेताजी सामने खड़े हैं–कि क्या तुमने नेताजी को बदमाश कहा? उसने कहा, जी हां। नेताजी सोचते थे, शायद मना करेगा। मजिस्ट्रेट भी सोचता था कि मना करेगा। मजिस्ट्रेट भी चौंका। कहा कि क्या तुमने चोर भी कहा? उस आदमी ने कहा, जी हां। कहा, तुमने डाकू भी कहा? उसने कहा, जी हां। कहा, तुमने हत्यारा भी कहा? उसने कहा, जी हां। मजिस्ट्रेट ने कहा, क्या तुमने गधा भी कहा? उसने कहा, कहना चाहता था। लेकिन माफ करिए, कहा नहीं। पूछा, क्यों? उसने कहा कि जब मैं कहने के करीब आया, तो तुझे खयाल आया कि कहीं गधे नाराज न हो जाएं। क्योंकि न तो गधे चोर होते, न बेईमान होते, न बदमाश होते, न हत्यारे होते। पहले तो मैंने तय किया था कि कहूंगा। लेकिन पीछे मैं, माफ करिए, मैं छोड़ गया। कहा नहीं मैंने।

आदमी जो भी कर रहा है, उसमें और पशुओं में बड़ा भेद नहीं है। सिर्फ थोड़ी-सी सूक्ष्मता का भेद पड़ता है, और कुछ भेद नहीं पड़ता। पशु उसे ही जरा अनगढ़ ढंग से करते हैं; आदमी गढ़कर करता है।

सब पशु की प्रवृत्तियां आदमी में सूक्ष्म हो जाती हैं, बस। सूक्ष्म होने से और जटिल हो जाती हैं। सूक्ष्म होने से और कनिंग, और चालाक हो जाती हैं। पशु में एक सरलता भी दिखाई पड़ती है, आदमी में वह भी खो जाती है। क्योंकि वह जटिलता का बिंदु भीतर, अस्मिता, अहंकार पैदा हो जाता है; वह सारी चीजों को उलझा देता है।

और जिसको परमात्मा की यात्रा पर जाना हो, उसे पदार्थ के उस सूक्ष्मतम रूप, अग्नि के उस सूक्ष्मतम खेल, प्रकृति के उस सूक्ष्मतम रहस्य के ऊपर जाना पड़ेगा।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, यह विभाजन है। यह मैंने रची प्रकृति। इस तरह आठ हिस्सों में मैंने इस प्रकृति को रचा है।

जोर यह है कि तू समझ ले कि यह प्रकृति है; यह तू नहीं है। और जोर यह है कि तू समझ ले कि यह प्रकृति है; यह परमात्मा नहीं है। जो भी रचा जाता है, वह प्रकृति है; और जो भी रचा नहीं जाता है, वही परमात्मा है। जो भी बनता है, वह प्रकृति है; और जो कभी नहीं बनाया जाता, वही परमात्मा है। जो निर्मित होता है, वह प्रकृति है; और जो सदा अनिर्मित है और है–अनक्रिएटेड, अस्रष्ट–वही परमात्मा है।

अहंकार भी निर्मित होता है। बच्चों में अहंकार नहीं होता; धीरे-धीरे निर्मित होता है। बुद्धि भी निर्मित होती है। बच्चों में बुद्धि नहीं होती। और आप ऐसा सोचते हों कि आप बुद्धि लेकर पैदा हुए हैं, तो आप बड़ी गलती में हैं। सिर्फ आप संभावना लेकर पैदा होते हैं, बाद में सब निर्मित होता है। अगर आपको जंगल में भेड़ियों के पास रख दिया जाए और बड़ा किया जाए, तो आपके पास कोई बुद्धि नहीं होगी। हां, भेड़ियों के पास जितनी बुद्धि होती है, उतनी बुद्धि आपके पास होगी। उससे ज्यादा नहीं। अगर आप सोचते हैं कि आपको एकांत में रखा जाए...।

अकबर ने ऐसा प्रयोग किया। अकबर को किसी फकीर ने कहा कि आदमी वही हो जाता है, जो उसे बनाया जाता है। इसलिए बनाया हुआ आदमी झूठा है। हम तो उस आदमी की तलाश में हैं, जो अनबनाया है, जो अनबना है। अकबर ने कहा, मैं यह नहीं मान सकता कि आदमी में सब बनाया हुआ है। उस फकीर ने कहा, कौन-सी चीज आपको गैर-बनाई दिखती है? अकबर ने कहा कि जैसे आदमी की बुद्धि, विचार। ये आदमी के बनाए हुए नहीं हैं। ये तो भीतर से आते हैं।

सबको हमको खयाल है कि भीतर से आते हैं। इसीलिए तो हम लड़ पड़ते हैं। कोई आदमी अगर कहे कि आपका विचार गलत, तो आप कहते हैं, मेरा विचार गलत! कभी नहीं। मेरा विचार! ऐसा लगता है, जैसे कि मेरे साथ। नहीं, सब विचार बाहर से भीतर डाले जाते हैं।

तो उस फकीर ने कहा, आप एक प्रयोग कर लें। एक बच्चे को, जन्मजात बच्चे को, अभी पैदा हुआ और उठाकर कारागृह में रखा गया। सब तरह उसकी सेवा की जाती; उसे दूध पहुंचाया जाता; सब किया जाता। लेकिन कहा गया पहरेदारों को कि वे बोलें न उस बच्चे के सामने कभी भी। उनके मुंह बंद, सी दिए गए।

वह बच्चा बड़ा हुआ। और अकबर मुसीबत में पड़ने लगा। जैसे-जैसे वह बड़ा हुआ, उसमें आदमी जैसा कुछ भी प्रकट न हुआ। न तो वह चलना सीख पाया, न वह बैठना सीख पाया, न वह बोलना सीख पाया। वह कुछ भी नहीं

सीख पाया। वह दस साल का हो गया, उससे एक शब्द न फूटा। वह बारह साल का हो गया, उससे एक शब्द न फूटा। वह सत्रह साल का होकर मरा। और अकबर सत्रह साल तक उसकी प्रतीक्षा करता रहा। आखिर उसने कहा कि नहीं; उसमें कुछ न आया। वह सब बाहर से डाला गया है। वह सब बनावट है।

सब आदमी बनाए हुए हैं, मैन्युफैक्चर्ड। हां, कोई मेड इन इंडिया, कोई मेड इन जापान। वह अलग बात है। बाकी सब आदमी मैन्युफैक्चर्ड हैं। कोई हिंदू, कोई मुसलमान, कोई जैन–सब मैन्युफैक्चर्ड हैं। क्योंकि अहंकार तक जो भी है, वह सब प्रकृति है।

बुद्धि भी प्रकृति है, मन भी प्रकृति है। जैसे बाहर पड़ा हुआ पत्थर है, ऐसे ही भीतर पड़ा हुआ अहंकार है। इनमें कोई सूक्ष्म अंतर नहीं है। ये दोनों एक ही चीज हैं। यह सब बना-बनाया है।

इसके पार है वह, जो अस्रष्ट, अनक्रिएटेड है। इन सबके पार जाए कोई, तो उसका दर्शन है।

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्।। 5 ।।
सो यह आठ प्रकार के भेदों वाली तो अपरा है अर्थात मेरी जड़ प्रकृति है। और हे महाबाहो, इससे दूसरी को मेरी जीवरूप परा अर्थात चेतन प्रकृति जान कि जिससे यह संपूर्ण जगत धारण किया जाता है।

यह जो आठ अंगों वाली प्रकृति है, यह अपरा है। अपरा का अर्थ होता है, निम्न, नीचे की, इस पार की। और इन आठ के पार मेरी वह प्रकृति है, जो परा है, दि बियांड, उस पार की। ये आठ विभाजन इस किनारे के हैं। और एक मैं हूं, उस पार, इन सबसे दूर और ऊपर उठकर–परा। इन सबके पार, इन सबको ट्रांसेंड कर जाता हूं। उस चैतन्य को, उस चेतना को, जो इन सबके पार है, तू इन सबको धारण करने वाली समझ।

वह जो पार है, क्या है? उस संबंध में थोड़ा-सा समझें। क्योंकि वही सबको धारण करने वाली है। वही धर्म है। वही सबको सम्हाले है। यह इतना विराट विस्तार उसकी ही छाती पर है, उस परा की। उस पार की चेतना। वह पार की चेतना क्या है? और हमारे भीतर उस पार की चेतना की तरफ जाने वाला द्वार कहां है?

समस्त योग का सार, उस परा को पहचानने की प्रक्रिया, टेक्नीक है। स्वयं के भीतर वह परा, वह बियांड कहां शुरू होता है?

शरीर में नहीं, क्योंकि शरीर पदार्थ है। मन में नहीं, क्योंकि मन भी बाहर से संगृहीत विचारों का जोड़ है। बुद्धि में नहीं, क्योंकि बुद्धि भी सूक्ष्मतम अग्नि का रूप है। अहंकार में नहीं, क्योंकि अहंकार भी स्वनिर्मित धारणा है। फिर कहां? फिर किस में हम उस सेतु को पाएं, उस द्वार को, जहां से सबको धारण करने वाली चेतना का साक्षात और मिलन है?

इन सबके साक्षित्व में। मैं अपने शरीर का साक्षी हो सकता हूं। यह रहा मेरा हाथ; मैं इस हाथ को देख सकता हूं। यह हाथ मेरा काट दिया जाए, तो मैं इस हाथ की पीड़ा को देख सकता हूं। यह हाथ कट जाए, तो भी मैं देखूंगा कि मैं नहीं कटा, हाथ ही कटा है। इस हाथ के कट जाने के बाद भी मुझे जरा भी न लगेगा कि मेरे बीइंग, मेरे अस्तित्व में कुछ टुकड़ा अलग हो गया है। मैं उतना का उतना ही रहूंगा। मेरे होने की जो धारणा है, उसमें खंड जरा-सा भी अलग नहीं होगा। मैं उतना ही रहूंगा। मेरे पैर भी कट जाएं, तो भी मैं उतना ही रहूंगा। मेरी आंख भी फूट जाएं, तो मेरे शरीर में कमी पड़ती जाएगी, लेकिन मेरे होने में, मेरे अस्तित्व में कोई भेद न पड़ेगा।

सोचें ऐसा, आप रात सोए, रात आपकी आंख चली जाए नींद में। सुबह जब आपको पहली दफा पता चलेगा कि आप जाग गए हैं...क्या आपको पता चल सकेगा आंख बंद में कि आपकी आंख चली गई? अगर आपके भीतर कुछ कम हो गया हो, तो जरूर पता चलना चाहिए। लेकिन कुछ कम हुआ नहीं है, इसलिए पता नहीं चलेगा। आंख खोलेंगे, और जब कुछ न दिखाई पड़ेगा, तब पता चलेगा कि कुछ कमी हो गई। भीतर कोई कमी न होगी। बाहर के संबंध का एक द्वार टूट गया, भीतर आप पूरे के पूरे हैं। भीतर आपको कोई फर्क नहीं पड़ेगा।

अगर आपको बेहोश करके आपका पैर काट दिया जाए, और जब तक पैर का दर्द न चला जाए, तब तक आपको बेहोश और डीप फ्रीज में रखा जाए। फिर आपके पैर का दर्द जा चुका हो, आपको होश में लाया जाए। शरीर पर कंबल पड़ा हो। आपको भीतर से जरा भी पता नहीं चलेगा कि पैर कट गया है, जब तक कि कंबल न उठाया जाए, जब तक आप देखें न। जब तक आप चलें और गिर न पड़ें, तब तक आपको पता नहीं चलेगा कि पैर कट गया। क्योंकि भीतर कुछ कटता ही नहीं। तो भीतर पता कैसे चलेगा? पता तो तभी चलेगा, जब बाहर प्रयोग करेंगे शरीर का और कोई कमी मालूम पड़ेगी; तभी पता चलेगा, अन्यथा पता नहीं चलेगा।

शरीर के हम साक्षी हो सकते हैं, विटनेस हो सकते हैं। जान सकते हैं कि यह मैं नहीं हूं। क्योंकि जिसको भी मैं देख पाता हूं, वह मैं नहीं हो सकता। जो भी दृश्य बन गया, वह मैं नहीं हो सकता। मैं आपको देख रहा हूं; एक बात पक्की हो गई कि वह जो आप वहां बैठे हुए हैं, वह मैं नहीं हूं। अन्यथा मैं आपको देख न पाता। देखने के लिए दूरी चाहिए; परसेप्शन के लिए पर्सपेक्टिव चाहिए, फासला चाहिए, नहीं तो मैं देख न पाऊंगा आपको।

आपको देख पाता हूं, क्योंकि मैं अलग हूं। दूर खड़ा हूं। मैं अपने शरीर को भी देख पाता हूं। आप बच्चे थे, तब भी अपने शरीर को देखा। जवान हो गए, तब भी अपने शरीर को देखा। फिर भी आपको खयाल न आया कि शरीर तो बिलकुल बदल गया है, लेकिन आप? आप तो वही के वही हैं! आपके भीतर कुछ भी नहीं बदला, रत्तीभर। आप बूढ़े भी हो जाएंगे, तब भी आपके भीतर आप वही होंगे, जो बच्चे थे तब थे। भीतर, वह जो चेतना है, वह अछूती गुजर जाती है।

शरीर मैं नहीं हूं, यह हम शरीर के साक्षी होकर जान सकते हैं। फिर हम विचारों के भी साक्षी हो सकते हैं। आप भीतर देख सकते हैं कि यह क्रोध चल रहा है। आप भीतर देख सकते हैं, यह लोभ सरक रहा है। आप भीतर देख सकते हैं कि यह काम यात्रा कर रहा है।

विचार को आप देख सकते हैं वैसे ही, अपने भीतर के पर्दे पर, जैसे आप फिल्म को देखते हैं। उसके भी आप साक्षी हो सकते हैं। तो फिर आप उससे भी अलग हो गए। कठिनाई थोड़ी-सी पड़ेगी मैं को देखने में, क्योंकि वह सूक्ष्मतम है और हम उससे आइडेंटिफाइड हैं।

लेकिन मैं को भी आप देख सकते हैं। जब आप सड़क पर चलते हैं; एकांत सड़क; कोई भी नहीं है। फिर अचानक दो आदमी सड़क पर निकलते हैं, तब आपने खयाल किया है कि कोई सांप आपके भीतर सरककर फन उठा लेता है। उसे जरा गौर से देखना। जब आप अकेले थे, तो आप कुछ और थे। अब दो आदमी सड़क पर आ गए, तो आप कुछ और क्यों हो गए? यह कुछ और क्या है? यह भीतर मैं का भाव खड़ा हो गया।

कोई आदमी आपको गाली देता है, तब जरा भीतर गौर से देखना कि कोई सांप फन उठाता है, जैसे फुफकारता हो, जैसे सोए सांप को चोट मार दी हो, कोई आपके भीतर उठकर खड़ा हो जाता है। जरा उसे गौर से देखना। जब आप सुंदर कपड़े पहनकर निकलते हैं सड़क पर, तब आप वही नहीं होते, जब आप दीन-हीन कपड़े पहनकर निकलते हैं। भीतर थोड़ा-सा फर्क होता है।

आज मैं छोटी-सी कहानी एक मित्र को लिख रहा था। लिख रहा था कि एक हाथी ने एक दिन एक चूहे को देखा। चूहे जैसा छोटा प्राणी हाथी ने कभी देखा नहीं था। इसलिए नहीं कि छोटे प्राणी नहीं हैं, बाकी हाथी जैसे प्राणी को कहां ये छोटे-छोटे प्राणी दिखाई पड़ें! चूहे को एक दिन देख लिया; ऐसे ही फुर्सत में रहा होगा, विश्राम में रहा होगा। चूहे को देखकर बड़ा हैरान हुआ। उसने कहा कि तुझसे क्षुद्र प्राणी मैंने अपने जीवन में नहीं देखा! बड़ी अकड़ से कहा कि तुझसे क्षुद्र प्राणी मैंने कभी नहीं देखा। क्षुद्रतम है तू।

चूहे ने पता है क्या कहा? चूहे ने ऊपर हाथी को देखा और कहा, माफ करें। ऐसा मैं सदा नहीं होता। जरा मेरी तबियत खराब थी। यह मेरा सदा का रूप नहीं है। आई हैव बीन सिक। यह मेरी सदा की स्थिति नहीं है। जरा मैं बीमार पड़ गया था।

हाथी का होगा अहंकार, तो चूहे का भी है। वह भी अपने अहंकार को बचाने की कोशिश करेगा। हम सब कर रहे हैं। फर्क कुछ भी नहीं है। वही चूहे वाली बुद्धि है। इसको थोड़ा अगर जागकर देखते रहेंगे कि कब-कब खड़ा होता है! जब कोई आपसे कहता है कि अरे...। तब कई बार आपका मन भी ऐसा होता है न कहने का, कि यह मेरी सदा की हालत नहीं है, मैं जरा बीमार रहा!

वह जो भीतर मैं है, उसको जरा जागकर खोजते रहेंगे कि वह कहां-कहां खड़ा होता है, तो जल्दी आपकी उससे मुलाकात होने लगेगी; जगह-जगह मुलाकात होगी। आईने के सामने खड़े होंगे, तो शक्ल कम दिखाई पड़ेगी, अहंकार ज्यादा दिखाई पड़ेगा। किसी से हाथ मिलाएंगे, तो आप कम मिलते हुए मालूम पड़ेंगे, अहंकार ज्यादा मिलता हुआ मालूम पड़ेगा। किसी से बात करेंगे, तो आप संवाद करते हुए नहीं मालूम पड़ेंगे, अहंकार भीतर खड़ा हुआ मालूम पड़ेगा।

थोड़ा होश का प्रयोग करेंगे, तो धीरे-धीरे आपके और आपके अहंकार के बीच एक गैप, एक फासला पैदा हो जाएगा। और आप देख पाएंगे, यह अहंकार है; यह रहा अहंकार।

और जिस दिन आप अहंकार को भी देख पाएंगे, उसी दिन, उसी दिन छलांग। उसी दिन आप इस आठ वाली प्रकृति से छलांग लगाकर उस भीतर की परा प्रकृति में पहुंच जाएंगे, जिसे कृष्ण कहते हैं, मेरा स्वरूप, मेरी चेतना।

और उसी चेतना ने सब धारण किया हुआ है। तब आप पाएंगे कि आपके शरीर को भी उसी ने धारण किया हुआ है। तब आप पाएंगे कि आपकी बुद्धि को भी उसी ने धारण किया हुआ है। तब आप पाएंगे कि आप कभी भीतर गए ही नहीं, उसको कभी आपने देखा ही नहीं, जो प्राणों का प्राण है। आपने उसे देखा ही नहीं, जो सारी परिधि का केंद्र है। आपने कभी मालिक को देखा ही नहीं; आप नौकरों से ही उलझे रहे। और अनेक बार आपने नौकरों को ही समझ लिया कि यह मैं हूं। आप मालिक तक कभी पहुंचे नहीं।

कृष्ण अर्जुन को उस मालिक की तरफ ले जाने की एक-एक कदम कोशिश कर रहे हैं। कहा, यह है आठ की प्रकृति अर्जुन। तू इसे ठीक से समझ ले। और फिर इसके पार होने के लिए मैं उस बात की तुझे खबर दूं, जो परा है, वह जो चैतन्य है, पीछे सबसे छिपा, जो सबका निर्माता, जो सबका आधार और जो सबको फिर अपने में आत्मसात कर लेता है।

ओशो – गीता-दर्शन – भाग 3
अदृश्य की खोज— अध्याय-7 (प्रवचन—3)

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय।
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा।।6।।
मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव।।7।।
और हे अर्जुन, तू ऐसा समझ कि संपूर्ण भूत इन दोनों प्रकृतियों से ही उत्पत्ति वाले हैं और मैं संपूर्ण जगत का उत्पत्ति तथा प्रलयरूप हूं, अर्थात संपूर्ण जगत का मूल कारण हूं।

हे धनंजय, मेरे सिवाय किंचितमात्र भी दूसरी वस्तु नहीं है। यह संपूर्ण जगत सूत्र में सूत्र के मणियों के सदृश मेरे में गुंथा हुआ है।

जगत प्रकट है, ऐसे ही जैसे माला के मनके प्रकट होते हैं। परमात्मा अप्रकट है, वैसे ही जैसे मनकों में पिरोया हुआ धागा अप्रकट होता है। पर जो अप्रकट है, उसी पर प्रकट सम्हला हुआ है। जो नहीं दिखाई पड़ता उसी पर, जो दिखाई पड़ता है, आधारित है।

जीवन के आधारों में सदा ही अदृश्य छिपा होता है। वृक्ष दिखाई पड़ता है, जड़ें दिखाई नहीं पड़ती हैं। फूल दिखाई पड़ते हैं, पत्ते दिखाई पड़ते हैं, जड़ें पृथ्वी के गर्भ में छिपी रहती हैं–अंधकार में, अदृश्य में। पर उन अदृश्य में छिपी जड़ों पर ही प्रकट वृक्ष की जीवन की सारी लीला निर्भर है।

यदि हम ऊपर से ही देखें, तो शायद समझें कि फूलों में प्राण होंगे; तो शायद हम समझें कि पत्तों में प्राण होंगे; तो शायद हम समझें कि वृक्ष की शाखाओं में प्राण होंगे। ऊपर से जो देखेगा, उसे ऐसा ही दिखाई पड़ेगा। लेकिन प्राण तो उन जड़ों में हैं, जो नीचे अंधकार में, अदृश्य में छिपी और दबी हैं।

इसलिए कोई पत्तों को तोड़ डाले, फूलों को तोड़ डाले, शाखाओं को काट डाले–वृक्ष का अंत नहीं होता। फिर नए अंकुर फूट जाते हैं, फिर नए पत्ते आ जाते हैं, फिर नए फूल खिल जाते हैं। लेकिन कोई जड़ों को काट डाले, तो वृक्ष का अंत हो जाता है। फिर पुराने फूल भी मौजूद हों, तो थोड? ही देर में कुम्हला जाते हैं और पुराने पत्ते भी थोड़ी ही देर में पतझड़ को उपलब्ध हो जाते हैं।

जीवन का विराट रूप भी ऐसा ही है। जो दिखाई पड़ता है, जिसने भूल से यह समझ लिया कि वही प्राण है, वह अधार्मिक जीवन में डूब जाता है। जो दिखाई पड़ता है, उसके भीतर जिसने जड़ों को खोजा, अदृश्य को खोजा, मनकों के भीतर धागे को खोजा, वह जीवन में धर्म की यात्रा पर निकल जाता है।

अदृश्य की खोज धर्म है और दृश्य में उलझ जाना संसार है। जो दिखाई पड़ता है, उसको सब कुछ मान लेना संसार है। और जो नहीं दिखाई पड़ता है, उसे दिखाई पड़ने वाले का भी मूल आधार जानना धर्म है।

कृष्ण इसमें दोत्तीन बातें कहते हैं। एक तो वे अपने अदृश्य रूप की बात करते हैं। वे कहते हैं, छिपा हुआ हूं मैं, दि हिडेन, गुप्त हूं मैं, प्रकट नहीं हूं। और जो प्रकट है, वह केवल प्रकृति है। और वह जो प्रकट है, वह जो मैंने अष्टधा, आठ तरह की प्रकृति की बात कही, उसका ही खेल है। वह सब मेरा बनाया हुआ खेल है। वे सब मनके मैंने निर्मित किए हैं, मैं तो धागा ही हूं।

अदृश्य है परमात्मा, इस सत्य के ऊपर इस सूत्र में जोर दिया है। हम सब निरंतर पूछते हैं, कहां है परमात्मा? कैसा है परमात्मा? जब भी हम ऐसे सवाल उठाते हैं, तो हम गलत सवाल उठाते हैं। और जो भी इन गलत सवालों के जवाब देता है, वे जवाब सवालों से भी ज्यादा गलत होते हैं। ये जो हमने सारी प्रतिमाएं खड़ी कर रखी हैं परमात्मा की, ये हमारे प्रश्नों के जवाब हैं, जो हमने पूछे हैं, कहां है! तो हमने प्रतिमाएं बना ली हैं बताने को, कि यह रहा।

लेकिन ध्यान रखना, जो मूर्ति में उलझा, वह इस अदृश्य की खोज पर न निकल पाएगा। हां, अगर मूर्ति सिर्फ द्वार बनती हो अमूर्त का, अगर वृक्ष केवल जड़ों की सूचना बनता हो, और मनके अगर धागे की खबर लाते हों, तब तो ठीक है। अन्यथा मनकों में जो उलझा, वह धागे से वंचित रह जाएगा।

और मज़े की बात यह है कि हर मनके में धागा मौजूद है। हर मूर्ति में भी अमूर्त मौजूद है। हर पत्थर में भी अमूर्त मौजूद है। वह जो दिखाई पड़ रहा है, सब जगह न दिखाई पड़ने वाला मौजूद है। लेकिन वह न दिखाई पड़ने वाला उसी को स्मरण में आएगा, जो दिखाई पड़ने वाले से थोड़ा भीतर प्रवेश करे।

दिखाई पड़ने वाला मैं नहीं हूं,

कृष्ण कहते हैं, जो दिखाई पड़ता है वह प्रकृति है।

दिखाई पड़ता है, इससे क्या अर्थ है? दिखाई पड़ने से अर्थ है, इंद्रियों की पकड़ में आता है जो। चाहे आंख से दिखाई पड़े, चाहे कान से सुनाई पड़े, चाहे हाथ से स्पर्श हो जाए। जो भी इंद्रियों की पकड़ में आता है, वह, वह प्रकृति है। और जो इंद्रियों के पार रह जाता है, वह परमात्मा है। मनके वही हैं, जो इंद्रियों की पकड़ में आ जाते हैं; और धागा वही है, जो इंद्रियों की पकड़ के बाहर छूट जाता है।

क्या जीवन में हमने कोई ऐसी चीज जानी है, जो इंद्रियों की पकड़ के बाहर हो? कोई ऐसा स्वाद जाना है, जो जीभ से न लिया गया हो? अगर नहीं जाना, तो परमात्मा की हमें कोई खबर नहीं है। कोई ऐसा दृश्य देखा है, जो आंख से न देखा गया हो? अगर नहीं देखा, तो हमें उन जड़ों की कोई खबर नहीं है, जिनकी कृष्ण बात करते हैं। क्या कोई ऐसी ध्वनि सुनी है, जो कानों से न सुनी गई हो? ऐसी ध्वनि, जिसे बहरा भी सुन सके! अगर नहीं सुनी है ऐसी कोई ध्वनि, तो हमें धागे की कोई भी खबर नहीं है; हम मनकों से ही खेल रहे हैं।

और जब तक कोई आदमी मनकों से खेलता है, तब तक बचकाना है, जुवेनाइल है। और जैसे ही उसे मनकों के भीतर छिपे हुए धागे के रहस्य का पता चल जाता है, उसी दिन प्रौढ़ होता है।

सिर्फ धार्मिक व्यक्ति ही मैच्योर होता है, प्रौढ़ होता है। अधार्मिक व्यक्ति बचकाने ही रह जाते हैं। इसलिए जिस समाज में जितना ज्यादा अधर्म होगा, उतना बचकानापन और चाइल्डिशनेस बढ़ जाएगी।

आज अगर अमेरिका में जुवेनाइल बच्चे पागल की तरह व्यवहार कर रहे हैं, तो उसके लिए जिम्मेवार बच्चे नहीं हैं। अगर आज अमेरिका के बच्चे हिप्पी, और बीटल, और सब तरह की नासमझियों को उपलब्ध हो रहे हैं, तो उसके लिए बच्चे जिम्मेवार नहीं हैं। उसके लिए वे मां-बाप जिम्मेवार हैं, जिन्होंने प्रौढ़ होने का रास्ता ही तोड़ दिया है। क्योंकि प्रौढ़ होने का एक ही रास्ता है, मैच्योरिटी का इस जगत में, वह धर्म है। एक बार धर्म हट जाए, तो बूढ़े भी बचकाने होंगे। और एक बार जीवन में धर्म प्रवेश कर जाए, तो बच्चे में भी उतनी ही प्रज्ञा उत्पन्न होती है, जितनी वृद्धतम व्यक्ति को हो सके।

लाओत्से के संबंध में कहा जाता है कि वह बूढ़ा ही पैदा हुआ। बड़ी अजीब-सी बात है। कोई आदमी बूढ़ा कैसे पैदा होगा! लेकिन अजीब न लगेगी, अगर दूसरे छोर से सोचें। कई लोग बच्चे ही मर जाते हैं न! अगर कोई आदमी बच्चा ही मर जाता है, तो किसी आदमी के बूढ़े पैदा होने में अड़चन क्या है?

अनेक लोग जब अपनी कब्र में जाते हैं, तब अगर गौर से देखें, तो उनके हाथ में घुनघुने होते हैं, और कुछ भी नहीं। जिन चीजों से हम भी खेल रहे हैं, वे घुनघुनों से ज्यादा नहीं हैं। बच्चों के घुनघुने जरा ज्यादा रंगीन होते हैं, हमारे जरा कम रंगीन, पर उससे हम प्रौढ़ नहीं हो जाते हैं। और बच्चों के घुनघुने सुबह आते हैं और सांझ टूट जाते हैं। और हमारे घुनघुने जिंदगीभर चलते हैं, ज्यादा मजबूत होते हैं। इससे कोई भेद नहीं पड़ता है। लेकिन खेलते हम घुनघुनों से रहते हैं। अधिक लोग मरते वक्त वहीं होते हैं, जहां पैदा होते वक्त खटोले में थे। कब्र और खटोले में कोई विकास नहीं होता।

लाओत्से की बात मजाक की तो है, लेकिन अर्थपूर्ण है। वह यही कहने को यह कहानी गढ़ी गई है कि अधिक लोग कब्र में जाते वक्त घुनघुने हाथ में रखते हैं और मुंह में उनके दूध की चूसनी होती है। इसलिए उलटी बात लाओत्से के लिए कही गई कि वह जन्म से ही बूढ़ा पैदा हुआ। और जब लोग लाओत्से से पूछते कि तुम्हारे जन्म से बूढ़े होने का क्या मतलब है? तो लाओत्से कहता कि जन्म से ही मुझे, जो दिखाई पड़ता है, उसमें कोई रस नहीं है; जो नहीं दिखाई पड़ता, उसी में मेरा रस है।

तो कृष्ण कहते हैं, मैं छिपा हूं।

धर्म जो है, वह साइंस आफ दि हिडेन, छिपे हुए का विज्ञान है। विज्ञान जो है, वह प्रकट जगत की खोज है।

लेकिन जो भी प्रकट है, वह ऊपर है, सतह पर है; और जो अप्रकट है, वह गहरा है। खजाने तो छिपाकर ही रखे जाते हैं। आप भी अपनी तिजोड़ी कहां रखते हैं? द्वार पर नहीं रखते हैं। न ही सड़क पर रख देते हैं। न घर की दीवाल पर रखते हैं। न घर की फेंसिंग के पास रखते हैं। तिजोड़ी आप वहीं रखते हैं, जो घर का अंतरतम स्थान है।

जीवन की भी सारी संपदा अंतरतम स्थानों में छुपी होती है। जितनी बड़ी चीज खोदनी हो, उतने गहरे उतरना पड़ता है।

अगर परमात्मा को खोजना हो, तो बहुत गहरे उतरना पड़ेगा। और गहरे उतरने का एक ही अर्थ है कि इंद्रियां जब तक हमें पकड़े हैं, तब तक हम गहरे नहीं जा सकते।

इंद्रियों की पकड़ की हालत वैसी है, जैसे कोई आदमी किसी नदी के किनारे को पकड़े हो और कहता हो, मुझे नदी की गहराई की खोज करनी है। और किनारे को जोर से पकड़े हो, और कहता हो कि कहीं मैं डूब न जाऊं, इसलिए किनारा नहीं छोडूंगा। यद्यपि मुझे उन हीरों की खोज करनी है, जो मैंने सुने हैं कि नदी के अंतर्गर्भ में हैं, नदी की गहराई में पड़े हैं। मुझे वे हीरे खोजने हैं, लेकिन किनारा मैं न छोडूंगा। क्योंकि किनारा छोड़ दूं, तो कहीं मैं डूब न जाऊं! लेकिन किनारा छोड़ना ही पड़ेगा।

कबीर ने मजाक की है हम सबके बाबत। और कहा है, मैं बौरी खोजन गई, रही किनारे बैठ। गई तो खोजने, गई खोजने हीरों को, लेकिन पागल ऐसी कि किनारे पर बैठ रही।

कोई पूछ सकता है कि कबीर ने स्त्रीलिंग शब्द का क्यों प्रयोग किया? मैं बौरी खोजन गई, रही किनारे बैठ। क्यों न कहा कि मैं बौरा खोजन गया, रहा किनारे बैठ! कोई अड़चन न थी। मैं पागल खोजने गया और किनारे बैठ गया। कहते हैं, मैं पागल खोजने गई और किनारे बैठ रही।

कबीर जानते हैं कि परमात्मा के सिवाय पुरुष कोई भी नहीं है। क्योंकि पुरुष का ठीक-ठीक अर्थ यही है गहरे में कि जो मालिक है। तो मालिक तो कभी खोजने नहीं जाता; भिखारी खोजने जाते हैं। अगर मालिक ही होते, तो खोजने क्यों जाते? मालिक नहीं हैं, इसलिए खोजने गए।

इसलिए कबीर स्त्रीलिंग शब्द का प्रयोग करते हैं। वे कहते हैं, मैं बौरी खोजन गई। मालिक तो एक ही है, वह परमात्मा। पर पागल की तरह किनारे पर बैठ रही।

किनारे पर जो बैठ रहेगा, वह पागल ही है। क्योंकि किनारे पर बैठे आदमी को हाथ में क्या लग सकता है ज्यादा से ज्यादा! हां, कभी-कभी नदी की छाती पर सफेद झाग हीरों का धोखा देती है। समुद्र के तट पर टकराकर पत्थरों से, पानी झाग बना लेता है। सूरज की किरणें कभी झाग से गुजरती हैं, तो रंग-बिरंगा हो जाता है। दूर से कभी बहुत प्यारा भी लगता है। पास जाकर हाथ-मुट्ठी में लो, तो सिवाय पानी के कुछ भी हाथ नहीं आता।

नदी के तट पर तो झाग ही हाथ लग सकती है, फोम। हां, हीरों का धोखा हो सकता है। नदी में गहरे उतरें, तो ही हीरे हाथ लग सकते हैं।

तो कृष्ण कहते हैं, इंद्रियों के पार जो है, वह मैं हूं। और इंद्रियों से जो पकड़ में आता है, वह जगत है, जो मैंने तुझसे कहा आठ प्रकार का।

एक और बात कृष्ण अर्जुन से कह रहे हैं। यह बात बहुत सोचने जैसी है। इसलिए भी सोचने जैसी है कि भारतीय प्रज्ञा ने ही इस बात की जगत में उदघोषणा की है। कहते हैं, मैंने ही बनाई है यह प्रकृति। मैंने ही रचा है यह सब। यह मुझसे ही स्रष्ट हुआ, और मुझमें ही प्रलय को उपलब्ध हो जाएगा।

परमात्मा की स्रष्टा की तरह धारणा तो जगत में सब जगह पैदा हुई, दि क्रिएटर। बट दि डिस्ट्रायर, विनाश करने वाले की तरह की धारणा भारत की अपनी अनूठी खोज है।

सारी दुनिया में परमात्मा को कहा जाता है, स्रष्टा, बनाने वाला। लेकिन इतने हिम्मतवर धार्मिक लोग पृथ्वी पर कहीं न हुए कि बनाने वाले के भीतर जो छिपा हुआ तर्क है, उसकी आत्यंतिक बात को भी स्वीकार कर लेते; क्योंकि जो बनाएगा, वही मिटाएगा भी। जो स्रष्टा होगा, वही विनाश भी कर सकेगा। और जिससे जगत पैदा होगा, उसी में लीन भी होगा। और जो जन्मदाता है, वही मृत्युदाता भी होगा।

दूसरी बात अप्रीतिकर है, इसलिए दुनिया में कहीं भी खयाल में नहीं आई। पहली बात बड़ी प्रीतिकर है कि हे, तू पिता है, तू गोद है। लेकिन तू कब्र भी है, इसे कहने की हिम्मत! तूने जन्म दिया, तूने बनाया, तू दयालु है। लेकिन तू मिटाएगा भी, तू तोड़कर खंड-खंड करके विनष्ट भी कर देगा! और फिर भी कहने की हिम्मत की कि तू दयालु है, बड़ी मुश्किल है। बनाने वाला दयालु है, लेकिन मिटाने वाला? मिटाने वाले से हमें डर लगता है। जन्म दिया तूने, बड़ी कृपा की। लेकिन मृत्यु!

तो सारी दुनिया में मृत्यु के लिए लोगों ने दूसरा तत्व खोजा– डेविल, शैतान, इबलीस, अलग-अलग नाम दिए। परमात्मा से विपरीत एक और शक्ति की कल्पना की, जो मिटाएगी। यह सिर्फ इस देश में एक ठीक, संगत विचार की व्यवस्था हुई, और वह यह कि जो बनाएगा, वही मिटाएगा।

लेकिन हमारी धारणा यह है कि बनाना भी उसकी कृपा है और मिटाना भी उसकी कृपा है। और जो बनाने में ही कृपा देखता है, वह धार्मिक नहीं है। जो मिटाने में भी कृपा देख पाता है, वही धार्मिक है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं कि सृजन भी मेरा, विनाश भी मेरा; निर्मित भी हुआ सब मुझसे और प्रलय को भी उपलब्ध होगा मुझमें। सब मुझमें ही आता है और मुझमें ही खो जाता है।

इसमें बड़ा वैज्ञानिक दृष्टिकोण है। जीवन की सारी गति वर्तुलाकार है। और चीजें जहां से शुरू होती हैं, वहीं समाप्त होती हैं। जैसे कि एक हम वर्तुल बनाएं, एक सर्किल बनाएं, तो जहां से हम बनाना शुरू करें, वहीं फिर दूसरी रेखा आकर जोड़ें, तब वर्तुल पूरा बने।

सारा जीवन वर्तुलाकार है। बचपन में जहां से हम यात्रा करते हैं, जवानी के बाद उसी दुनिया में वापस सीढ़ियां उतरते हैं। और जन्म जिस बिंदु पर घटित होता है, उसी बिंदु पर मृत्यु भी घटित होती है। वर्तुल पूरा हो गया। और मृत्यु जन्म से विपरीत नहीं है, बल्कि जन्म के साथ ही जुड़ा हुआ दूसरा कदम है। और विनाश, सिर्फ विश्राम है। इसे समझ लेना जरूरी है।

इस मुल्क में ही विनाश को विश्राम समझने की सामर्थ्य पैदा हुई। विनाश विश्राम है। सृष्टि तो श्रम है, और प्रलय? प्रलय विश्राम है। इसलिए सृष्टि को हमने कहा, ब्रह्मा का दिन। और प्रलय को हमने कहा, ब्रह्मा की रात्रि। श्रम हो गया। सुबह हम उठे। दौड़े, जीए, हारे, जीते, अज्ञानी-ज्ञानी बने, समझ-नासमझ झेली। और फिर सांझ आई। और अंधेरा उतरा। और सो गए। और फिर वापस वहीं खो गए, जहां से सुबह उठे थे।

दिन है श्रम, रात्रि है विश्राम। जीवन है श्रम, मृत्यु है विश्राम। सृजन है श्रम, विनाश है विश्राम। विनाश को हमने कभी शत्रु की तरह नहीं देखा, मृत्यु को हमने कभी शत्रु की तरह नहीं देखा।

और ध्यान रहे, जिसने भी मृत्यु को शत्रु की तरह देखा, उसका जीवन नष्ट हो जाएगा। यह बड़ी उलटी दिखाई पड़ेगी बात। पर ऐसा ही है।

जिसने भी मृत्यु को शत्रु की तरह देखा, वह जी न पाएगा; वह जिंदगीभर मृत्यु से डरेगा और बचेगा। जीना असंभव है। लेकिन जिसने मृत्यु को भी मित्र माना, वही जी पाएगा। क्योंकि जिसे मृत्यु भी दुख नहीं दे पाती, उसे जीवन कैसे दुख

देगा! और जिसे मृत्यु भी मित्र है, उसे जीवन तो महामित्र हो जाएगा। और जिसे जीवन से विपरीत नहीं दिखाई पड़ती मृत्यु, बल्कि जीवन की ही पूर्णता दिखाई पड़ती है–जैसे कि वृक्षों पर फल पक जाते हैं, ऐसे ही जीवन पर मृत्यु पकती है–जिसे मृत्यु जीवन की ही परिपूर्णता दिखाई पड़ती है और प्रलय भी सृजन का अंतिम चरण मालूम होता है, उसका जीवन आह्लाद से भर जाए, तो कोई आश्चर्य नहीं है। और आह्लाद से न भरे जीवन, तो धर्म का हमें कोई भी पता नहीं है।

इसलिए कृष्ण जब कहते हैं, मैं ही हूं सृजन और मैं ही विनाश। इस तरह की हिम्मत की घोषणा कहीं भी नहीं की गई है। अगर कहीं घोषणाएं भी की गई हैं, तो कहा गया है कि मैं हूं स्रष्टा, और वह जो शैतान है, वह है दुष्ट। वह कर रहा है विनाश। तू उससे सावधान रहना।

लेकिन अमृत भी मैं और जहर भी मैं; इन दोनों की एक साथ स्वीकृति बड़ी अदभुत है। और सचाई है उसमें। क्योंकि जीवन के समस्त द्वंद्व संयुक्त होते हैं, अलग-अलग नहीं होते। अंधेरा और प्रकाश संयुक्त हैं। और अगर कोई परमात्मा कहता हो, प्रकाश हूं मैं और अंधेरा कोई और, तो वह परमात्मा भी बेईमान है। अंधेरा कौन होगा और? और अगर परमात्मा प्रकाश है और अंधेरा कोई और, तो इस जगत में शक्ति-विभाजन हो जाएगा। रात किसी और की, और दिन किसी और का।

सुना है मैंने कि एक आदमी मर रहा है, एक ईसाई मर रहा है। पादरी उसे आखिरी पश्चात्ताप करवाने और प्रार्थना करवाने आया है। पादरी उससे कहता है, बोल कि शैतान, अब मुझे तुझसे कोई वास्ता नहीं; अब मैं परमात्मा की शरण जाता हूं। हे दुष्ट शैतान, अब तुझसे मेरा कोई संबंध नहीं; अब मैं प्रभु की शरण जाता हूं।

लेकिन वह आदमी सुनता है और आंख बंद कर लेता है और कुछ बोलता नहीं। पादरी और जोर से कहता है कि शायद मृत्यु ज्यादा निकट है और उसे सुनाई नहीं पड़ रहा है। वह फिर भी सुन लेता है, फिर आंख बंद कर लेता है। पादरी और जोर से कहता है उसे हिलाकर। वह कहता है, हिलाओ मत। मैं अच्छी तरह सुन रहा हूं। तो पादरी पूछता है कि तू बोलता क्यों नहीं!

वह कहने लगा कि मरते वक्त किसी को भी नाराज करना ठीक नहीं। पता नहीं, किसकी शरण जाऊं! आखिरी वक्त में किसी की झंझट में मैं नहीं पड़ना चाहता। पता नहीं, सच में किसकी शरण जाऊं! इसलिए मुझे चुपचाप मर जाने दो। जिसकी शरण पहुंच जाऊंगा, उससे ही कह दूंगा। अगर शैतान के पास पहुंच गया, तो कह दूंगा कि हे ईश्वर, तुझसे मेरा कोई वास्ता नहीं। क्योंकि जिसके साथ रहना है, उसी के साथ दोस्ती बतानी उचित है। और अभी मुझे कुछ पता नहीं।

डिवाइडेड, अगर हम जगत को दो सत्ताओं में तोड़ दें, तो हमारी निष्ठा भी विभाजित होती है। और विभाजित निष्ठा कभी भी निष्ठा नहीं है। अविभाजित निष्ठा ही निष्ठा है, अनडिवाइडेड।

अगर पश्चिम में धर्म इस बुरी तरह नष्ट हुआ, तो उसके नष्ट होने का अकेला कारण नास्तिक नहीं है; उसका बहुत गहरा कारण पश्चिम में धर्म का विभाजित निष्ठा का नियम है।

दो के प्रति निष्ठा खतरनाक है; दो नावों पर यात्रा है। जीवन की कोई यात्रा दो नावों पर नहीं हो सकती। और जीवन के सभी द्वंद्व संयुक्त हैं। यहां जीवन और मृत्यु एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। और अंधेरा और प्रकाश भी एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। यहां, जिसे हम विरोध कहते हैं, वह विरोध भी विरोध नहीं है, केवल दूसरा अंग है।

इसलिए कृष्ण बड़ी सरलता से कह पाते हैं कि मैं ही हूं सृजन, मैं ही प्रलय। सब मुझसे ही पैदा होता और मुझमें ही लीन हो जाता है।

यहां हमने परमात्मा को अविभाजित, अनडिवाइडेड जाना है। और ध्यान रहे, अगर हम परमात्मा को अविभाजित न जानें, तो हमारे भीतर अविभाजित श्रद्धा होने की कोई संभावना नहीं है। और हमने एक बार जगत को दो हिस्सों में तोड़ा कि हमारे भीतर का हृदय भी दो हिस्सों में टूट जाएगा।

इसलिए पश्चिम में आज जो मनोवैज्ञानिकों के सामने सबसे बड़ी बीमारी है, वह है, स्प्लिट पर्सनैलिटी, व्यक्तित्व का टूटा हुआ होना, विखंडित होना। लेकिन पश्चिम के मनोवैज्ञानिक को भी कोई खयाल नहीं है कि मनुष्य का मन दो में क्यों टूट गया। और यह पश्चिम में ही विखंडित, स्प्लिट पर्सनैलिटी क्यों पैदा हुई? उसका कारण उसके खयाल में नहीं है।

उसका कारण है कि निष्ठा जब दो में टूट जाए, और निष्ठा जब विभाजित हो, तो भीतर हृदय भी दो में टूट जाता है और विभाजित हो जाता है। जब निष्ठा एक में हो और अविभाज्य हो, तो निष्ठावान हृदय भी अविभाजित हो जाता है और एक हो जाता है। एक परमात्मा, तो भीतर एक आत्मा का जन्म होता है। और अगर दो शक्तियां हमने स्वीकार कीं, तो भीतर भी चित्त डांवाडोल, और दो में टूट जाता है। और आज तो हालत ऐसी है कि स्वीकृत हो गया है पश्चिम में कि हर आदमी खंड-खंड होगा।

एक आदमी तो एक मनोवैज्ञानिक के पास गया और उसने कहा कि कोई तरकीब करो कि मेरी पर्सनैलिटी को स्प्लिट कर दो, मेरे व्यक्तित्व को दो हिस्सों में तोड़ दो। मनोवैज्ञानिक हैरान हुआ। उसने कहा, तुम पागल तो नहीं हो? क्योंकि हमारे पास तो जो लोग आते हैं, वे इसलिए आते हैं कि हम उनके व्यक्तित्व को इकट्ठा कैसे कर दें! तुम्हारा दिमाग ठीक तो है न! तुम यह क्या कह रहे हो कि तुम्हारे व्यक्तित्व को दो हिस्सों में तोड़ दें! तुम्हारा प्रयोजन क्या है?

उस आदमी ने कहा, मैं बहुत अकेलापन अनुभव करता हूं। दो हो जाऊंगा, तो कम से कम कोई साथ तो होगा! आई फील टू मच लोनली, बहुत अकेला लगता हूं। तो मुझे दो हिस्सों में तोड़ दो। तो कम से कम मेरा एक हिस्सा तो मेरे साथ हो सकेगा!

पश्चिम में दोनों घटनाएं घटी हैं। आदमी बिलकुल अकेला है, और टूट गया है। और इस टूटने की जड़ उस विचार में है, जिसमें हमने जगत को ही दो हिस्सों में तोड़ दिया।

कृष्ण कहते हैं, दोनों ही मैं हूं। बुरा भी मैं हूं, भला भी मैं हूं।

अपने को भला कहने की बात तो बड़ी आसान है। अपने को महात्मा कहने की बात तो बड़ी आसान है। लेकिन अपने को दुरात्मा कहने की हिम्मत बड़ी है।

कृष्ण कहते हैं, दोनों ही मैं हूं। वह जो तुम्हें अच्छा लगता है, वह भी मैं हूं। वह जो तुम्हें बुरा लगता है, वह भी मैं हूं। दोनों ही मैं हूं।

जिसको यह समग्र स्वीकृति, यह टोटल एक्सेप्टेबिलिटी समझ में आ जाए, वही कृष्ण के तत्व-दर्शन को ठीक से समझ पाएगा।

इसलिए कृष्ण के साथ बहुत अन्याय भी हुआ है। क्योंकि कृष्ण का व्यक्तित्व समाहित, समग्र को इकट्ठा लिए हुए है। तो किसी को शक होता है कि कृष्ण दोनों काम कैसे कर पाते हैं! इनकंसिस्टेंट मालूम पड़ते हैं, असंगत मालूम पड़ते हैं। एक तरफ परमात्मा की बात करते हैं, दूसरी तरफ युद्ध में उतार देते हैं। परमात्मवादी को तो पैसिफिस्ट होना चाहिए, उसको तो शांतिवादी होना चाहिए। अशांति तो दुष्टों का काम है, युद्ध तो दुष्टों का काम है!

कृष्ण कैसे आदमी हैं! एक तरफ परमात्मा की बात, और दूसरी तरफ अर्जुन को युद्ध में जाने की प्रेरणा। ये दुनिया के जितने शांतिवादी हैं, उनको बड़ी बेचैनी होगी। वे तो कहेंगे, कृष्ण जो हैं, ठीक आदमी नहीं हैं। कृष्ण को तो मौका चूकना नहीं था। अर्जुन भाग रहा था, शांतिवादी बन रहा था। फौरन रास्ता बनाना था कि भाग जा। आगे-आगे दौड़ना था। लोगों से कहना था, हटो! अर्जुन को निकल जाने दो, यह शांतिवादी हो गया है।

कृष्ण बेबूझ हैं। क्योंकि कृष्ण कहते हैं, दोनों ही मैं हूं, युद्ध भी मैं और शांति भी मैं। दोनों ही मैं हूं, अंधेरा भी मैं, प्रकाश भी मैं। और जब दोनों की तरह तू मुझे देख पाएगा, तभी तू मुझे देख पाएगा। अगर तू बांटकर देखेगा, आधे को देखेगा, चुनकर देखेगा, तो तू मुझे कभी नहीं देख पाएगा।

परमात्मा में चुनाव नहीं किया जा सकता। यू कैन नाट चूज। और अगर आपने चुनाव किया, तो वह परमात्मा आपके घर का होममेड परमात्मा होगा, घर का बनाया हुआ। वह परमात्मा असली नहीं होगा।

परमात्मा तो जैसा है, उसके लिए वैसे ही होने के लिए राजी होना पड़ेगा। अगर वह प्रलय है तो सही। अगर वह मृत्यु है तो सही। राजी हैं। अगर आपने कहा कि नहीं, हम तो जरा परमात्मा के चेहरे पर रंग-रोगन करेंगे। हम तो जरा शक्ल को सुंदर बनाएंगे। मेकअप में हर्ज भी क्या है? हम थोड़ा इसकी शक्ल को ठीक कर लें। अगर आपने ऐसा किया, तो जो आपके हाथ में लगेगा, वह आपके हाथ का बनाया हुआ परमात्मा होगा। उससे परमात्मा का कोई भी संबंध नहीं है।

धार्मिक आदमी दुस्साहसी है। दुस्साहस उसका यह है कि जैसा है, ऐज इट इज़, वह उसे स्वीकार करता है। वह कहता है, यह भी तेरा और यह भी तेरा। जन्म भी तेरा और मृत्यु भी तेरी। दोनों के लिए मैं राजी हूं।

इसलिए कृष्ण अर्जुन को कहते हैं, प्रलय भी मैं, सृजन भी मैं। दोनों ही मैं हूं।

विरोधों को आत्मसात करने की यह घोषणा वेदांत का सार है। अविरोध पैदा होता है फिर। और जब जीवन की दृष्टि अविरोध की होती है, तो आपके भीतर अविरोधी हृदय का जन्म होता है। जो आपके परमात्मा का रूप होगा, वही आपके हृदय का रूप बन जाएगा। आपका हृदय ढलता है उसी रूप में, जिस रूप में आप परमात्मा को स्वीकार करते हैं। तोड़कर नहीं, जोड़कर, इकट्ठा, सबको लिए हुए।

और जब सुबह आपके पैर में कांटा गड़े, तो यह मत सोचना कि शैतान ने गड़ाया। तब उसको भी सोचना कि परमात्मा ने गड़ाया; और परमात्मा ने आपको इस योग्य समझा कि कांटा गड़ाया, उसके लिए भी धन्यवाद दे देना।

और जिस दिन फूल के लिए ही नहीं, कांटे के लिए भी परमात्मा को कोई धन्यवाद दे पाता है, उस दिन उसे मंदिरों में जाने की जरूरत नहीं रह जाती। वह जहां है, वहीं मंदिर आ जाता है।

प्रश्न:
भगवान श्री, एक छोटा-सा प्रश्न है। यदि सत्य अद्वैत है, तो अपरा और परा को भिन्न कहने का क्या अर्थ है? और क्या अपरा और परा आपस में परिवर्तनशील हैं?
सत्य एक है, लेकिन जिन्हें पूरा सत्य दिखाई पड़ता है उन्हें। जिन्हें नहीं दिखाई पड़ता, उनके लिए एक नहीं है। उन्हें जो दिखाई पड़ता है, अंधों को जो दिखाई पड़ता है, उसका नाम, अपरा। हम जो नहीं जानते, हमें जो दिखाई पड़ता है, आधा-आधा। वृक्ष और जड़ तो एक हैं। आप कहीं वह रेखा न खींच पाएंगे, जहां आप कहें कि यहां से जड़ शुरू होती है, और यहां से वृक्ष शुरू होता है। कोई डिसकंटिन्यूटी नहीं है। दोनों के बीच सातत्य कहीं भी नहीं टूटता। कहां जड़ें समाप्त होती हैं और कहां वृक्ष शुरू होता है?

अगर कोई जोर से आपको पकड़ ले, तो आप मुश्किल में पड़ जाएंगे। ऐसे आप जानते हैं कि जड़ें अलग और वृक्ष अलग। वृक्ष ऊपर और जड़ें भीतर। लेकिन अगर कोई जिद्द करे और कहे कि ठीक-ठीक बताइए, कहां से होती है जड़ शुरू? और कहां से होता है वृक्ष शुरू? तो आप बहुत मुश्किल में पड़ जाएंगे। ऐसी कोई जगह आप न खोज पाएंगे। वृक्ष और जड़ एक है।

लेकिन जिस आदमी ने सिर्फ वृक्ष देखा और जड़ें नहीं देखीं, उससे कहना पड़ेगा कि यह जो तुझे दिखाई पड़ रहा है, यह ऊपर-ऊपर है। एक और भी है जो नीचे है, जो सबको सम्हाले हुए है, वह जड़ है।

न दिखाई पड़ने वाले आदमी से कहना पड़ता है कि जो तुझे दिखाई पड़ रहा है, वह अपरा है, वह नीचे का जगत है, स्थूल जगत है, इंद्रियों का जगत है। और एक जगत है परा का, जो तुझे दिखाई नहीं पड़ रहा है। हम तुझे उस तरफ ले चलते हैं। लेकिन जिस दिन दिखाई पड़ेगा, उस दिन दोनों जगत एक हो जाएंगे। उस दिन दोनों के बीच एक सातत्य।

फिर जो फर्क है, वह ऐसा ही है जैसे वृक्ष के ऊपर होने का और जड़ों के नीचे होने का है। फिर भी फर्क तो है। फर्क तो है। अगर जड़ें उखाड़कर फेंक दें, तो वृक्ष न बचेगा। वृक्ष उखाड़कर फेंक दें, तो जड़ें बचेंगी, और जड़ों से फिर वृक्ष पैदा हो जाएगा।

फर्क नहीं है सातत्य में, लेकिन फर्क मूल शक्ति में है। जड़ें ज्यादा शक्तिशाली हैं; उनके पास जीवन की केंद्रीय ऊर्जा है। वृक्ष केवल फैलाव है। अगर ठीक से समझें, तो जड़ें एसेंशियल हैं, और वृक्ष नान-एसेंशियल है। क्योंकि जड़ों का होना वृक्ष के बिना भी हो सकता है, लेकिन वृक्ष का होना जड़ों के बिना नहीं हो सकता। फिर भी दोनों एक हैं। वह जो आखिरी पत्ता है वृक्ष का, वह भी जड़ का ही फैला हुआ हाथ है। वह भी जड़ ही है फैल गई आकाश तक।

नहीं जानते हैं जो, अज्ञान में हैं जो, जिन्हें परमात्मा की समग्रता का कोई भी पता नहीं, कृष्ण उनके लिए विभाजन कर रहे हैं। सब विभाजन बच्चों के लिए किए जाते हैं। सत्य तो अविभाज्य है। लेकिन अविभाज्य सत्य की कोई शिक्षा नहीं दी जा सकती। शिक्षा देने के लिए विभाजन करना पड़ता है। कहीं से तो शुरू करना पड़ेगा, वन हैज टु बिगिन समव्हेअर। और जहां से भी शुरू करेगा, वहीं से विभाजन करना पड़ेगा।

कहां से शुरू करें? तो ऊपर से ही शुरू करना उचित है, क्योंकि अर्जुन को पता है ऊपर का। वह समझेगा कि पृथ्वी क्या है, वह समझेगा कि जल क्या है, वह समझेगा कि अग्नि क्या है। फिर धीरे-धीरे उसकी समझ बढ़ेगी। जैसे-जैसे समझ बढ़ेगी, भीतर की बात कृष्ण उससे कहेंगे। कहेंगे, बुद्धि क्या है, विचार क्या है, मन क्या है। कहेंगे, अहंकार क्या है। और जब उसे अहंकार की सूझ खयाल में आ जाएगी, तब कहेंगे, इसके पार, बियांड दिस, परा का लोक है। इसके पार मैं हूं, इसके पार भागवत चैतन्य है।

लेकिन उस मैं तक लाने के लिए यह मिट्टी-पदार्थ से लेकर, पृथ्वी से लेकर आठ तत्वों की यात्रा कृष्ण को करवानी पड़ेगी। और भलीभांति जानते हुए कि सब जुड़ा है, सब इकट्ठा है।

सब इकट्ठा है। कहीं कुछ टूट नहीं गया है। सब संयुक्त है। निम्नतम, बाह्यतम वस्तु भी अंतरतम से जुड़ी है। निम्नतम श्रेष्ठतम का ही नीचे का फैलाव है। सब संयुक्त है। अस्तित्व संयुक्त है। लेकिन जिन्हें कुछ भी पता नहीं है, उनसे करनी है बात। और जिन्हें पता है, उनसे बात करने का कोई अर्थ नहीं है।

तो एक बात ध्यान में रख लेंगे और वह यह कि दो ज्ञानी अगर मिलें, तो बातचीत का कोई उपाय नहीं है। दो अज्ञानी मिलें, तो बातचीत बहुत होगी, हो बिलकुल न पाएगी। दो ज्ञानी मिलें, बातचीत बिलकुल न होगी, फिर भी हो जाएगी। दो अज्ञानी मिलें, बातचीत बहुत चलेगी, भारी चलेगी, हो न पाएगी बिलकुल। फिर बातचीत कहां हो पाती है?

एक ज्ञानी और एक अज्ञानी के बीच बातचीत हो पाती है। लेकिन समझौते करने पड़ते हैं, कंप्रोमाइज करनी पड?ती है। ज्ञानी को ही करनी पड़ती है, क्योंकि अज्ञानी तो क्या करेगा, अज्ञानी कैसे करेगा? ज्ञानी को ही करनी पड़ती है। उसे ही अज्ञानी की भाषा में बोलना शुरू करना पड़ता है। इस आशा में कि धीरे-धीरे, क्रमशः, एक-एक कदम वह राजी कर लेगा, और उस जगत तक ले जाएगा, जहां शब्द के बिना कहने की संभावना है। उस परा तक इशारा कर पाएगा।

इसलिए सारी चर्चा, जब भी होती है--चाहे कृष्ण और अर्जुन के बीच, और चाहे बुद्ध और आनंद के बीच, और चाहे महावीर और गौतम के बीच, और चाहे जीसस और ल्यूक के बीच--सारी चर्चा एक ज्ञानी और एक अज्ञानी के बीच है।

और ध्यान रहे, अज्ञानी बिलकुल समझौता नहीं करता। कोई उपाय भी नहीं है। वह समझौता करेगा किस बात के लिए! अज्ञानी तो डटकर अपने अज्ञान में खड़ा रहता है। वह तो कहता है, यही ठीक है। समझौता करना पड़ता है

ज्ञानी को। वह नीचे उतरता है; अज्ञानी की जगह आता है। उसका हाथ पकड़ता है। यात्रा पर निकलता है। हाथ पकड़ता है, तो अज्ञानी की भाषा का उसे उपयोग करना पड़ता है।

सब विभाजन अज्ञानी की भाषा है। ज्ञानी की भाषा में तो कोई विभाजन नहीं है, अद्वय है, एक है। लेकिन उस एक को कहने का कोई उपाय नहीं; मौन रह जाना ही काफी है।

अगर कृष्ण ज्ञानी की भाषा का उपयोग करते, तो चुप रह जाते। फिर गीता पैदा नहीं होती। तो अर्जुन की बुद्धि से चल रहे हैं। इसलिए बहुत स्थूल से शुरू किया, पृथ्वी; स्थूलतम। फिर सूक्ष्म के पास आए, अहंकार।

और अर्जुन का अहंकार भारी रहा होगा। क्षत्रिय था। क्षत्रिय तो जीता ही अहंकार पर है। उसकी तो सारी चमक और रौनक अहंकार की है। उसकी तो सारी धार अहंकार की है। अगर एकदम से कह देते कि अहंकार, तो शायद वह नाराज ही होता, समझ न पाता। एकदम से कह देते कि यह अहंकार सब प्रकृति है; कुछ भी नहीं, सब बेकार है। तो अर्जुन और कृष्ण के बीच संवाद की संभावना टूटती, और कुछ न होता। क्रमशः!

और अहंकार तलाश में रहता है इस बात की कि मुझे चोट पहुंचा दो। खोज में रहता है। बहुत सेंसिटिव है। छुई-मुई। जरा-सा इशारा लगा दो, जरा-सा, जरा तिरछी आंख से देख दो, तो वह दिक्कत में पड़ जाता है। और दिक्कत में इसलिए पड़ जाता है कि उसके पास वस्तुतः कोई आधार तो हैं नहीं, हवाई किला है। ताश का घर है। जरा-सी फूंक, और सब गिर जाएगा।

सुना है मैंने, एक फकीर ठहरा था एक महानगरी के बाहर। अमावस की रात। महानगरी में विद्युत के दीए पूरे नगर में जल रहे थे, जैसे दीवाली हो। फकीर लेटा था अंधेरे में एक वृक्ष के तले। एक जुगनू उड़ती हुई आकर फकीर के पास बैठ गई। बैठकर उसने पंख बंद कर लिए। उसकी चमकती हुई रोशनी बंद हो गई। तभी अचानक बिजली के कारखाने में कुछ गड़बड़ हुई होगी, और सारे नगर की बिजली चली गई।

उस जुगनू ने फकीर से कहा, एक्सक्यूज मी फार मेंशनिंग-- कहने के लिए क्षमा करें। बट डू यू सी इन व्हाट शेप दिस ग्रेट सिटी विल बी, इफ आई एम गान समव्हेयर एल्स--अगर मैं कहीं और चली जाऊं, तो इस बड़े नगर का क्या होगा, देखते हैं! कहने के लिए क्षमा करें। क्योंकि जुगनू ने सोचा कि चूंकि मैंने पंख बंद किए और मेरी चमक बंद हुई, सारा नगर अंधकार में डूब गया!

फकीर मन ही मन में हंसा, ऊपर नहीं, क्योंकि ऊपर हंसे, तो जुगनू से फिर बातचीत नहीं हो सकती। उसने कहा कि तेरी सूचना के लिए धन्यवाद। मैं तो सदा से ही ऐसा जानता था। तेरी बड़ी कृपा है कि तू इस नगर को छोड़कर नहीं जाती। नगर की तो बात दूर, अगर तू इस विश्व को छोड़कर चली जाए, तो आकाश में जो तारे टिमटिमा रहे हैं, ये भी एकदम बंद हो जाएं। ये भी एकदम बंद हो जाएं और बुझ जाएं। जुगनू पास सरक आई और उसने कहा, आदमी तुम काम के मालूम पड़ते हो। कुछ और बातें करें।

कहते हैं, सुबह तक जुगनू फकीर हो गई। मगर फकीर को जुगनू होने से शुरू करना पड़ा। रातभर चली बात; सुबह तक जुगनू फकीर हो गई।

ऐसा ही होने वाला है इस कथा में भी। यह अर्जुन बेचारा बचेगा नहीं। यह कृष्ण हो जाने वाला है। लेकिन अभी लंबी है दूरी। अभी वह सुबह है दूर। अभी तो जुगनू की भाषा में कृष्ण को बोलना है। उसके सिवाय कोई उपाय नहीं है।

रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः।
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु।।8।।
पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ।
जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु।।9।।

हे अर्जुन, जल में मैं रस हूं; चंद्रमा और सूर्य में प्रकाश हूं; संपूर्ण वेदों में ओंकार हूं तथा आकाश में शब्द और पुरुषों में पुरुषत्व हूं। तथा पृथ्वी में पवित्र गंध और अग्नि में तेज हूं, और संपूर्ण भूतों में उनका जीवन हूं अर्थात जिससे वे जीते हैं, वह मैं हूं, और तपस्वियों में तप हूं।

उस अदृश्य की ओर इशारा कृष्ण ने शुरू किया। दृश्य को बताया, और कहा, उस दृश्य में मैं कौन हूं। इशारा किया दृश्य की तरफ, और फिर भी इशारा किया अदृश्य की तरफ। कहा, जल में मैं रस।

जल में रस! रस को थोड़ा समझना पड़े।

रस बहुत अदभुत शब्द है, और बहुत सूक्ष्म और बहुत अदृश्य। दिखाई जो पड़ता है--कोई पेय आप पीते हैं, अमृत भी पीएं--तो जो दिखाई पड़ता है, जब आप पीते हैं, तो जो अनुभव में आता है, क्या वह वही है, जो दिखाई पड़ता था? जब पीते हैं, तो जो अनुभव में आता है, वह तो दिखाई बिलकुल न पड़ता था। जो दिखाई पड़ता था, वह तो कुछ और दिखाई पड़ता था। और जो फिर अनुभव में आता है पीने पर, वह कुछ और ही है। वह जो अनुभव में आता है पीने पर, वह है रस। वह रस आंतरिक अनुभूति है।

ऐसा ही नहीं; जहां भी...। आपका प्रेमी आपके पास है, आप हाथ में हाथ लेकर बैठ गए हैं। हाथ तो प्रेमी का हाथ में है, लेकिन भीतर जो एक स्वाद उत्पन्न होता है प्रियजन के पास होने का, वह रस है। वह अगर हम वैज्ञानिक के पास दोनों के हाथ लेबोरेटरी में पहुंचा दें और कहें कि काट-पीटकर पता लगाओ कि इनको कैसा रस उपलब्ध हुआ! क्योंकि ये दोनों कह रहे थे कि जन्म-जन्म तक हम ऐसे ही हाथ में हाथ लिए बैठे रहें, कि चांदत्तारे बुझ जाएं और हमारे हाथ अलग न हों! ये कुछ ऐसी बातें सुनी हैं इनकी हमने। जरा कृपा करके इन दोनों के हाथ का पता तो लगाओ खोजबीन कर कि इसमें रस कहां है?

खून मिलेगा बहता हुआ। पानी मिलेगा बहता हुआ। हड्डी, मांस, मज्जा, सब मिल जाएगी। रस नहीं मिलेगा। रस अदृश्य है। उन्हें जरूर मिल रहा था। उन्हें जरूर मिल रहा था। भ्रांत हो, सपना हो, उन्हें जरूर मिल रहा था। प्रत्येक वस्तु के भीतर जो आंतरिक अनुभव में उतरता है स्वाद, उसका नाम रस है।

तो कृष्ण कहते हैं, समस्त जलीय द्रव्यों में, समस्त पेय पदार्थों में, वह जो तुम पीते हो, वह मैं नहीं हूं; वह जो तुम पीकर अनुभव करते हो, वह मैं हूं। रस हूं मैं।

रस अदृश्य है। सभी रस अदृश्य हैं। फूल है खिला गुलाब का। गए आप उसके पास। कहा, बहुत सुंदर है। लेकिन कोई पकड़ ले आपको, मिल जाए कोई तार्किक, और पूछे, कहां है सौंदर्य? जरा मुझे भी दिखाओ। तो आप पड़ेंगे कठिनाई में। कितना ही बताएंगे, नहीं बता पाएंगे। और जितना बताएंगे, उतना ही पाएंगे कि बताने में असमर्थ हैं। और आप हारेंगे। आपकी हार निश्चित है। वह तार्किक जीतेगा। उसकी जीत निश्चित है। क्योंकि उसने दृश्य को पकड़ा, और आपने अदृश्य की घोषणा की है, जिसको आप न बता पाएंगे।

सौंदर्य बताया नहीं जा सकता। असल में फूल में नहीं है सौंदर्य, फूल के अनुभव में आपके भीतर जो बोध पैदा होता है, उस रस में है। इसलिए फूल को तोड़कर अगर आप पता लगाने चलेंगे, तो हां, केमिकल्स मिलेंगे, रस न मिलेगा। रासायनिक मिल जाएंगी वस्तुएं, रस न मिलेगा। रंग मिल जाएंगे; सब कुछ मिल जाएगा। फूल की पूरी एनालिसिस हो जाएगी, पूरा विश्लेषण। और वैज्ञानिक एक-एक शीशी में अलग निकालकर रख देगा कि यह-यह, लेबल लगाकर। लेकिन कोई ऐसी शीशी न होगी, जिसमें वह एक लेबल लगाए कि यह रहा सौंदर्य। सौंदर्य के लेबल वाली शीशी खाली रह जाएगी। वह कहेगा, कोई सौंदर्य नहीं है।

असल में फूल में कोई सौंदर्य नहीं था। सौंदर्य तो आपको जो रस उपलब्ध हुआ फूल को देखकर, उसमें आया। वह आपका आंतरिक रस है। लेकिन मजे की बात है, फूल को भी तोड़कर देख लो, तो भी रस न मिलेगा; आपको तोड़कर देख लें, तो भी रस न मिलेगा। फिर रस कहां था? वह अदृश्य है। वह धागे की तरह भीतर मनकों के छिपा है। मनके पकड़ में आ जाएंगे और धागे का आपको कोई पता न चलेगा।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, पेय पदार्थों में मैं रस, जल में मैं रस। लेकिन उदाहरण लेते हैं जल का। वह अर्जुन को समझ में आएगा, और रस की तरफ इशारा हो सकेगा।

जीवन में जो भी हमारे गहरे अनुभव हैं, रस के अनुभव हैं। चाहे हो सौंदर्य, चाहे हो प्रेम, चाहे हो संगीत, जो भी हमारे अनुभव हैं, वे रस के अनुभव हैं। अनुभव रस रूप है। या ऐसा कहें कि समस्त अनुभवों का जो निचोड़ है, उसे हमने रस कहा है।

रस की धारणा भारत में अनूठी है। रस की धारणा ही अनूठी है। दुनिया में कोई भी रस के करीब इतना नहीं पहुंचा। सौंदर्य की उन्होंने व्याख्याएं कीं; लेकिन उनकी व्याख्याएं बड़ी ऊपरी हैं। पश्चिम ने सौंदर्य का बड़ा शास्त्र, एस्थेटिक्स पैदा किया। लेकिन उनकी सौंदर्य की परिभाषा बड़ी ऊपरी है।

सौंदर्य रस है। प्रेम रस है। आनंद रस है। और उपनिषद ने तो घोषणा की कि ब्रह्म रस है। ब्रह्म रस है!

वह कृष्ण वही घोषणा कर रहे हैं। जलों में मैं रस! फिर वे एक-एक उदाहरण लेते चलते हैं। कहते हैं, पृथ्वी में मैं गंध, पवित्र गंध।

यह भी थोड़ा कठिन होगा। रस से कम कठिन नहीं होगा। क्योंकि पवित्र कृष्ण न लगाते तो आसानी पड़ जाती। लेकिन गंध में पवित्र लगाने का क्या प्रयोजन? सुगंध काफी न था कहना? कहते हैं, पृथ्वी में पवित्र सुगंध। सुगंध काफी मालूम पड़ता है। लेकिन कृष्ण जैसे लोग तो बहुत टेलीग्रैफिक होते हैं। अगर एक भी शब्द जरूरी न होता, तो वे उपयोग करते न। लेकिन इससे बड़ी उलझन खड़ी हो गई है।

कहा, पवित्र सुगंध, तो इसका यह अर्थ हुआ कि अपवित्र सुगंध भी होती है। और कहा, पवित्र सुगंध, तो इसका अर्थ हुआ कि पवित्र दुर्गंध, अपवित्र दुर्गंध, इनकी संभावना है क्या?

इनकी संभावना है। इसलिए जानकर लगाया, पवित्र सुगंध। सभी सुगंधें पवित्र नहीं होतीं। उस सुगंध को पवित्र कहा है कृष्ण ने, जिसकी भनक पड़ते ही जीवन की ऊर्जा ऊपर की तरफ प्रवाहित होती है।

ऐसी सुगंधें भी हैं, जिनकी भनक पड़ते ही जीवन की ऊर्जा नीचे की तरफ प्रवाहित होती है। जगत के कोने-कोने में अनुभवी वेश्याओं से पूछें आप। या पेरिस के बाजार में, जहां दुनियाभर की अपवित्र सुगंधें पैदा की जाती हैं, परफ्यूम। और सब तरह की जांच-परख की जाती है कि कौन-सी परफ्यूम आदमी में सेक्सुअलिटी ज्यादा पैदा करेगी। सुगंध है वह। लेकिन आपके भीतर कामवासना को जगाने में कौन-सी सुगंध काम करेगी, उसके एक्सपर्ट हैं, उसके विशेषज्ञ हैं। वे खबर लाते हैं कि कौन-सी सुगंध वेश्या के द्वार पर हो, तो ग्राहक के आने में सुविधा बनेगी। कौन-सी सुगंध स्त्री के कपड़ों पर हो, तो स्त्री गौण हो जाएगी और पुरुष का मन सुगंध की वजह से आंदोलित होगा।

अपवित्र सुगंधें हैं। जो सुगंध जीवन ऊर्जा को नीचे की ओर ले जाती है, कामवासनाओं के मार्गों की ओर ले जाती है, वह अपवित्र है।

फिर पवित्र सुगंध कौन-सी है? अभी तक किसी बाजार में तो कहीं पैदा होती दिखाई नहीं पड़ती। कभी-कभी पवित्र सुगंध की घटना घटती है, वह मैं आपसे कहूं, तब आपको यह सूत्र समझ में आएगा। अन्यथा यह समझ में नहीं आएगा। और गीता पर हजारों टीकाएं लोगों ने लिखी हैं। लेकिन पवित्र सुगंध के बाबत कुछ ध्यान नहीं दिया है। कभी आती है वह।

महावीर के संबंध में कहा जाता है कि महावीर जहां खड़े हो जाएं, वहां एक सुगंध व्याप्त हो जाएगी। चलेंगे तो, उठेंगे तो, चारों तरफ की हवाओं में एक सुगंध चलेगी। महावीर का शरीर भी पृथ्वी का ही बना हुआ है, जैसा हमारा बना हुआ है। महावीर के शरीर से जो सुगंध उठती है, उस सुगंध का नाम है--पृथ्वी में मैं सुगंध हूं।

जरूरी नहीं है कि महावीर आपके पास से निकलें, तो आपको सुगंध का पता चले। क्योंकि जो दुर्गंध के आदी हैं, उन्हें सुगंध का पता चलना मुश्किल होता है। और जो अपवित्र सुगंध के आदी हैं, उनके पास से पवित्र सुगंध गुजर जाएगी, स्पर्श भी न होगा। क्योंकि खुले द्वार भी चाहिए। लेकिन जिनके द्वार खुले हैं, और जिनका हृदय संवेदनशील है, वे महावीर की सुगंध को पकड़ पाएंगे।

तो महावीर जैसे शरीर से जब सुगंध उठती है, उस सुगंध का नाम है, पृथ्वी में पवित्र सुगंध। मैं पृथ्वी में पवित्र सुगंध हूं अर्जुन।

कभी आपने खयाल किया कि पृथ्वी में दुर्गंध-सुगंध सबकी अनंत संभावना है। एक ही बगीचा है आपके घर में छोटा-सा। एक छोटा-सा किचन गार्डन है। उसमें आप नीम का झाड़ लगा देते हैं। और हवाओं में चारों तरफ कड़वाहट फैलनी शुरू हो जाती है। वह नीम उस जमीन से ही रस लेती है। उसी के बगल में आप गुलाब का एक पौधा लगा देते हैं। वह गुलाब का पौधा भी उसी जमीन से रस लेता है। लेकिन गुलाब के फूल में सुगंध कोई और, और नीम के पत्तों में और नीम की बौरियों में सुगंध कुछ और। बात क्या है?

जमीन एक, सूरज एक, हवाएं एक, मालिक बगीचे का एक, माली एक, पानी एक, पृथ्वी एक। गुलाब का बीज कुछ और चुनाव करता है; नीम का बीज कुछ और चुनाव करता है। नीम का बीज उसी पृथ्वी में से कड़वाहट को इकट्ठा कर लेता है। गुलाब का बीज उसी पृथ्वी में से कुछ और इकट्ठा करता है।

शरीर हमारा भी वही, महावीर का भी वही, कृष्ण का भी वही, क्राइस्ट का भी वही। लेकिन जरूरी नहीं है कि हम सबके शरीर से जो गंध निकले, वह एक हो।

इस संबंध में और भी कुछ बातें आपसे कहूं। जिन लोगों ने कामवासना के संबंध में गहरी खोजबीन की है, वे कहते हैं कि जब संभोग के क्षण में स्त्री-पुरुष अति आकुल हो जाते हैं, तो दोनों के शरीर से विशेष दुर्गंध निकलनी शुरू हो जाती है। आपके अनुभव में भी आती है। तीव्र कामवासना के क्षण में शरीर से दुर्गंध निकलनी शुरू हो जाती है।

क्या हुआ? शरीर वही है। लेकिन कामवासना में आप और नीचे उतरे, नीम की तरफ गए। आपके शरीर का चुनाव बदल गया। उसकी अलग ग्रंथियां काम करने लगीं, और आपके शरीर से दुर्गंध फैलने लगी।

अगर कामवासना में शरीर से दुर्गंध निकल सकती है--इसके लिए फिजियोलाजिस्ट राजी हैं; इसके लिए शरीरशास्त्री सहमत हो गए हैं कि कामवासना में शरीर से दुर्गंध निकलती है--तो दूसरी बात के लिए राजी होने में बहुत देर नहीं है कि ध्यान की गहराइयों में शरीर से एक तरह की सुगंध निकलती है। क्योंकि तब ऊर्जा ऊपर की तरफ जाती है और शरीर की दूसरी ग्रंथियां काम करती हैं, जो बिलकुल ही कामवासना से दूसरे छोर पर हैं।

तो महावीर जैसे व्यक्ति का जब पूरा जीवन का फूल खिलता है ध्यान का, तो आस-पास एक सुगंध फैलनी शुरू हो जाती है। यद्यपि उन्हीं को पता चलेगा, जो सौभाग्यशाली हैं।

अगर आपको महावीर के शरीर से सुगंध का पता चले, तो किसी और को मत बताना, नहीं तो वह कहेगा कि हमें नहीं पता चलता। गलत कहते हो। किसी भ्रम में पड़ गए हो। कोई इलूजन में आ गए हो। धोखा खा गए हो।

लेकिन एकाध आदमी को ही पता चलता हो, ऐसा नहीं है। महावीर के पास लाखों लोगों को पता चलता है। महावीर के निकट जो लोग रहते थे, वे कहते थे कि हम अगर दूर भी हों, अंधेरे में भी बैठे हों, और महावीर एक विशेष सीमा के भीतर आ जाएं, तो हम कह सकते हैं कि वे सीमा के भीतर आ गए। उनकी सुगंध उनके पहले ही चली आती है। सैकड़ों बार लोगों ने प्रयोग करके देखे।

जब कृष्ण कहते हैं, पृथ्वी में मैं पवित्र सुगंध, तो सिर्फ सुगंध नहीं कहते, नहीं तो गुलाब के फूल की सुगंध काम कर जाती। पवित्र सुगंध फूल में पैदा नहीं होती। पवित्र सुगंध तो मनुष्य नाम के फूल में पैदा होती है कभी-कभी। वही हूं मैं

अर्जुन। बहुत रेयर फिनामिनन है। मुश्किल से कभी घटता है। लेकिन घटता है। और एक शरीर में घट सकता है, तो सब शरीर में घटने की खबर लाता है।

तो कहते हैं, पृथ्वी में मैं पवित्र सुगंध। चंद्रत्ताराओं में, सूरज में, ग्रहों में--आभा, प्रकाश।

इसे भी थोड़ा खयाल में ले लें। क्योंकि आप कहेंगे, प्रकाश तो बड़ी दृश्य बात है।

नहीं। प्रकाश बहुत अदृश्य घटना है। आप कहेंगे, सरासर कैसी बात मैं कह रहा हूं! आपने देखा है प्रकाश। अभी देख रहे हैं। सुबह सूरज निकलता है, आप प्रकाश देखते हैं। आपसे प्रार्थना करता हूं, पुनर्विचार करना। आपने प्रकाश अभी तक नहीं देखा है; केवल प्रकाशित चीजें देखी हैं। प्रकाश आपने कभी नहीं देखा। प्रकाश को देखना असंभव है। प्रकाश अदृश्य चीज है।

जब आप कहते हैं, प्रकाश है, तो उसका कुल मतलब इतना होता है कि चीजें दिखाई पड़ रही हैं। और कोई मतलब नहीं होता। और जब चीजें नहीं दिखाई पड़तीं, आप कहते हैं, अंधेरा है। आपको बल्ब दिखाई पड़ रहा है। बल्ब एक चीज है। मैं दिखाई पड़ रहा हूं। यह टेबल, कुर्सी, तख्त दिखाई पड़ रहा है; ये सब चीजें हैं। आपको प्रकाश नहीं दिखाई पड़ रहा है; केवल प्रकाशित चीजें दिखाई पड़ रही हैं। प्रकाश जिनके ऊपर आकर लौट रहा है, वे लोग दिखाई पड़ रहे हैं। प्रकाश आपको दिखाई नहीं पड़ रहा है। प्रकाश आज तक किसी मनुष्य को साधारणतः दिखाई नहीं पड़ा है, जिस तरह हम सोचते हैं। प्रकाश अदृश्य चीज है।

तो कृष्ण कहते हैं, सूर्यों, ताराओं, चंद्रों में मैं प्रकाश। सूरज नहीं, चांद नहीं, तारा नहीं; जो तुम्हें दिखाई पड़ता है, वह नहीं। मैं वह प्रकाश हूं, जिसके कारण तुम्हें दिखाई पड़ता है, लेकिन जो तुम्हें कभी दिखाई नहीं पड़ता। प्रकाश अदृश्य उपस्थिति है। सिर्फ प्रेजेंस है। कभी दिखाई नहीं पड़ता।

आप सोचते होंगे, अंधे को नहीं दिखाई पड़ता। मैं कह रहा हूं, आंख वालों को भी प्रकाश नहीं दिखाई पड़ता। अंधे और आंख वालों में फर्क यह नहीं है कि एक को प्रकाश दिखाई पड़ता, और एक को प्रकाश नहीं दिखाई पड़ता। फर्क इतना है, एक को प्रकाशित चीजें दिखाई पड़ती हैं, एक को प्रकाशित चीजें नहीं दिखाई पड़तीं। प्रकाश तो दोनों को नहीं दिखाई पड़ता है।

प्रकाश तो उसे दिखाई पड़ता है, जो इन आंखों को छोड़कर भीतर की और भी अंतरतम की आंखें हैं, उनको खोलता है, उसे प्रकाश दिखाई पड़ता है। फिर चांदत्तारे नहीं दिखाई पड़ते। यह भी बड़े मजे की बात है।

जब तक चांदत्तारे दिखाई पड़ते हैं, तब तक प्रकाश दिखाई नहीं पड़ता; और जिस दिन प्रकाश दिखाई पड़ता है, उस दिन चांदत्तारे दिखाई नहीं पड़ते। उस दिन यह सारा जगत प्रकाश ही रह जाता है। फिर कोई प्रकाशित वस्तु नहीं रह जाती; कोई आब्जेक्ट नहीं रह जाता। सिर्फ प्रकाश का सागर, सिर्फ अनंत प्रकाश। न कोई सूर्य जिससे निकलता है, न कोई और विषय जिस पर पड़ता है, सिर्फ प्रकाश ही प्रकाश रह जाता है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, चांदत्ताराओं में, सूर्यों में अर्जुन, तू मुझे प्रकाश जान। चांदत्तारे तुझे दिखाई पड़ते हैं, मैं तुझे दिखाई नहीं पड़ता।

तपस्वियों में तेज।

सोचने जैसा है, तपस्वियों में तेज! तपस्वी तो दिखाई पड़ते हैं सभी को। और तपस्वी को देखना बहुत कठिन नहीं है। बड़ी छोटी परीक्षाएं हैं, उससे पता चल जाता है। आदमी उपवास कर रहा है; कि एक टांग पर खड़ा है; कि कांटे बिछाए है; कि शरीर को सता रहा है, धूप में खड़ा है; कि पानी में गला रहा है शरीर को। तपस्वी दिखाई पड़ जाता है। लेकिन कृष्ण कहते हैं, मैं तपस्वी नहीं हूं; तपस्वियों में तेज!

यह तेज क्या है? आमतौर से हम सबने अपनी-अपनी घरेलू व्याख्याएं कर रखी हैं। तेज से हम क्या मतलब समझते हैं? हम समझते हैं कि चेहरे पर कुछ रौनक दिखाई पड़े, तो तेज हो गया। कि स्वास्थ्य दिखाई पड़े, तो तेज हो गया। कि आदमी शक्तिशाली दिखाई पड़े, तो तेज हो गया।

जो आपको दिखाई पड़े, वह तो तेज होगा ही नहीं। क्योंकि कृष्ण बात कर रहे हैं अदृश्य की। तपस्वियों में तेज! इसकी खोज की विधि है।

अगर किसी तपस्वी में तेज देखना हो, तो तपस्वी पर ध्यान करना पड़ता है। महावीर बैठे हैं आपके सामने, आप भी उनके सामने बैठ गए हैं और महावीर को देखें। कि बुद्ध बैठे हैं। देखें, और देखते चले जाएं अपलक। एक ऐसी घड़ी आएगी कि महावीर खो जाएंगे, सिर्फ तेज-पुंज रह जाएगा। तभी आप समझना। अन्यथा नहीं। महावीर बचेंगे ही नहीं। कोई रूपरेखा न बचेगी। कोई शरीर, देह न दिखाई पड़ेगी। आदमी खो जाएगा बिलकुल, सिर्फ तेज-पुंज रह जाएगा, सिर्फ आभा।

और ऐसी आभा, जिसमें स्रोत नहीं होता। दीए में आभा होती है, तो दीए में स्रोत होता है। उसके चारों तरफ आभा होती है, एक सेंटर होता है। तेज अगर महावीर में दिखाई पड़ेगा, तो उसमें कोई न दीया होगा, न तेल होगा, न बाती होगी, न कोई स्रोत होगा। सिर्फ केंद्ररहित परिधि होगी।

इसलिए हम महावीर, बुद्ध, कृष्ण और क्राइस्ट और नानक और कबीर के आस-पास सिर के वह जो गोल घेरा बनाते हैं, वह कोई कैमरे की पकड़ में आने वाली चीज नहीं है।

और बड़े मजे की बात है। हम जो भी करते हैं, वह गलत ही करते हैं। असल में हम इतने गलत हैं कि हमसे ठीक कुछ हो नहीं सकता। अगर वह गोल घेरा बनाना हो, तो कृपा करके भीतर महावीर को खड़ा मत करो, सिर्फ गोल घेरा रहने दो। क्योंकि दोनों घटनाएं एक साथ कभी नहीं घटीं। जिनको महावीर दिखाई पड़े, उनको वह आभा नहीं दिखाई पड़ी। और जिनको आभा दिखाई पड़ी, उनको महावीर दिखाई नहीं पड़े। ये दोनों एक साथ नहीं घटतीं। यह असंभव है। ये कभी घटती ही नहीं। क्योंकि वह आभा दिखाई ही तब पड़ती है, जब आकार खो जाता है।

तो तपस्वियों में मैं तेज!

तपश्चर्या नहीं उन्होंने कहा। महात्माओं के साथ बड़ी ज्यादती कर दी। कहना चाहिए था, तपस्वियों में तपश्चर्या। लेकिन कहा, तपस्वियों में तेज। कितनी ही तपश्चर्या करो, अगर वह अनुभव की स्थिति नहीं आती, जहां कि मैं बिलकुल खो जाता है और सिर्फ प्रकाश का पुंज रह जाता है। आपसे मैंने कहा, आप देखो महावीर को, यह तो आपकी बात है। आप तो कभी देखोगे, बहुत मेहनत करोगे, तब दिखाई पड़ेगा।

लेकिन जहां तक महावीर का संबंध है, जिस दिन से ज्ञान हुआ, कोई चालीस साल की उम्र में, उसके बाद वे चालीस साल और जिंदा थे। फिर चालीस साल वे जो जिंदा थे, उसमें वे शरीर नहीं थे। उसमें वे सिर्फ एक प्रकाशपुंज थे, जो चल रहा था, डोल रहा था; आ रहा था, जा रहा था; बोल रहा था, सो रहा था; उठ रहा था, बैठ रहा था। लेकिन उसमें फिर कोई शरीर नहीं था।

जिस दिन बुद्ध मरे, किसी ने उनसे पूछा कि मरने के बाद आप कहां होंगे? तो बुद्ध ने कहा कि चालीस साल से मैं जहां था, वहीं। पर उन्होंने कहा कि नहीं, हम कैसे मानें! क्योंकि शरीर तो आपका खो जाएगा। और इस देह को तो हमें जला देना पड़ेगा, गड़ा देना पड़ेगा। यह तो मिट्टी हो जाएगी। तो बुद्ध ने कहा, मेरे लिए तो यह चालीस साल पहले खो चुकी है। चालीस साल से तो मैं सिर्फ एक शून्य की भांति, एक बातीरहित दीए की भांति, एक प्रकाश की भांति जी रहा हूं। और अब मेरे मिटने का कोई उपाय नहीं, क्योंकि जो भी मिट सकता था, वह मिट चुका है। और अब तो मौत आए कि महामृत्यु, जो है, वह रहेगा।

तेज अमृतत्व है; शरीर मरणधर्मा है। तपस्वियों में तेज, उसका अर्थ है, तपस्वियों में वह, जो कभी नहीं मरता। लेकिन आपने अगर चेहरे पर रौनक देखी, वह तो मर जाएगी तपस्वी के साथ। अगर शरीर में थोड़ी लाली दिखाई पड़ी है, तो वह तो जरा इंजेक्शन लगाकर खून बाहर निकाल लो, तो निकल जाएगी। उससे तेज का कोई संबंध नहीं है।

तेज एक बहुत आकल्ट, एक गुप्त रहस्य है। और उसको देखने की विधियां हैं। और जब तक वह न दिखाई पड़े, तब तक कोई तपस्वी नहीं है। तप कितना ही करे कोई।

महावीर के पास भिक्षु आएंगे, साधक आएंगे; बुद्ध के पास आएंगे। बुद्ध उनको देखेंगे और कहेंगे कि तुम तपश्चर्या कर रहे हो, वह ठीक; लेकिन अभी तपस्वी नहीं हुए। क्या मापदंड है जानने का?

जानने का एक ही मापदंड है, बुद्ध जैसे आदमी, जैसे ही आंख किसी पर डालते हैं वे, तत्काल दिखाई पड़ता है कि तेज है या नहीं। वही तेज, जानने का माध्यम है। और कोई जानने का माध्यम नहीं है। और कोई मेजरमेंट का उपाय भी नहीं है कि किस आदमी को ज्ञान उपलब्ध हो गया।

बुद्ध कह देते हैं, फलां आदमी को ज्ञान उपलब्ध हो गया; फलां आदमी को ज्ञान उपलब्ध हो गया। लोग उनसे आकर पूछते हैं कि आपने उस आदमी को ज्ञान-उपलब्ध कह दिया! वह तो अभी छः दिन पहले आया था। मैं तो छः साल से तपश्चर्या कर रहा हूं। आपने मेरी अभी तक घोषणा नहीं की! तो बुद्ध कहते हैं, अभी तुम ठहरो, अभी तुम तपश्चर्या ही कर रहे हो। अभी तेज पैदा नहीं हुआ है।

उस तेज की बात है। कृष्ण कहते हैं, तपस्वियों में तेज।

एक-एक चीज में वे अदृश्य का इशारा करते हैं। कहते हैं, आकाश में शब्द।

आकाश दिखाई पड़ता है, आकाश में सब चीजें दिखाई पड़ती हैं, सिर्फ एक शब्द दिखाई नहीं पड़ता। खयाल किया आपने! आकाश दिखाई पड़ता है, विस्तार, एक्सपैंशन। और आकाश में सब चीजें दिखाई पड़ती हैं, शब्द दिखाई नहीं पड़ता। फिर भी आकाश शब्दों से भरा हुआ है; शब्द से भरा हुआ है। शब्द की तरंगों से भरा हुआ है।

अब तो वैज्ञानिक कहते हैं कि आज नहीं कल, कृष्ण ने जो गीता कही है, वह हम फिर पकड़ लेंगे यंत्रों के द्वारा। क्योंकि अगर वह कभी भी कही गई है, तो शब्द कभी मरता नहीं; वह मौजूद है। हम उसको पकड़ लेंगे। जरा वक्त लगेगा।

अगर दिल्ली से एक शब्द बोला जाता है रेडियो स्टेशन पर, और आठ सेकेंड या दस सेकेंड बाद बंबई में पकड़ा जा सकता है। अगर दस सेकेंड बाद पकड़ा जा सकता है, तो दस साल बाद पकड़ने में कोई वैज्ञानिक बाधा नहीं है, दस करोड़ साल बाद पकड़ने में कोई वैज्ञानिक बाधा नहीं है। चाहे हम अभी जल्दी यंत्र बना पाएं या न बना पाएं। दिल्ली में बोला गया शब्द या लंदन में बोला गया शब्द अगर एक क्षण के बाद भी बंबई में पकड़ा जाता है, तो उसका मतलब यह है कि शब्द जब पैदा होता है, उसके बाद मर नहीं जाता; होता है। और जब वह आपके बंबई से गुजर गया, तब भी मर नहीं जाता; तब भी मौजूद होता है। सूक्ष्म होता चला जाता है; सूक्ष्म होता चला जाता है; सूक्ष्म होता चला जाता है।

यह सारा अस्तित्व शब्दों की पर्तों से भरा हुआ है। अदृश्य पर्तें हैं। इस जगत में जो भी शब्द कभी बोला गया है, वह रिकार्डेड है। वह रिकार्ड के बाहर कभी नहीं जा सकता।

इसलिए धर्म कहता है, ऐसा कोई बुरा शब्द मत बोलना, जो तुम्हारा रिकार्ड बन जाए। क्योंकि वह अनंत यात्रा तक तुम्हारा रिकार्ड होगा। उससे बच नहीं सकते हो फिर। उससे बचने का कोई उपाय नहीं है। वह आपकी कथा है। कोई खाता-बही लिए हुए नहीं बैठा है परमात्मा कि उसमें लिख रहा है कि फलां आदमी ने क्या बोला। यह अस्तित्व शब्द को विनाश नहीं करता। अस्तित्व शब्द को पी जाता है और समाहित कर लेता है।

कृष्ण कहते हैं, आकाश में मैं शब्द।

सर्वाधिक आकाश में व्याप्त जो वस्तु है, वह शब्द है और सबसे कम दिखाई पड़ती है। इसलिए गलत बोलने से तो बेहतर है, चुप रह जाना, न बोलना। तो न बोलना रिकार्ड में रहेगा कि यह आदमी मौन था। जरूरी नहीं है कि मौन में जो आदमी था, वह अच्छा ही आदमी रहा हो। लेकिन इतना तो कम से कम पक्का है कि सक्रिय रूप से बुरा नहीं था।

सुना है मैंने कि एक जहाज पर जो आदमी पहरेदारी का काम करता था, नया-नया आदमी, वह पहरेदारी कर रहा था। पहरेदारी के बाद दूसरे दिन उसने देखा, तो कैप्टन ने जहाज के उसके रिकार्ड में लिखा हुआ है कि यह आदमी आज शराब पीए हुए था। रिकार्ड सारा खराब हो गया।

आठ दिन बाद–वह आदमी चुपचाप रहा–आठ दिन बाद कैप्टन डयूटी पर था, तो उस आदमी ने जाकर रिकार्ड की किताब में लिखा कि आज कैप्टन शराब नहीं पीए हुए है। आज कैप्टन शराब नहीं पीए हुए है! लिखा तो यही कि नहीं पीए हुए है, लेकिन पता उससे सिर्फ इतना ही चलता है कि बाकी छः दिन पीए रहा होगा।

आप चुप हैं, इससे कुछ पक्का पता नहीं चलता कि आप अच्छे ही आदमी हैं। छः दिन पता नहीं क्या रहे हों! बुरे होने की वजह से ही चुप रहे हों। लेकिन एक बात तय है कि कम से कम निष्क्रिय हैं।

शुभ शब्दों को बोलने के लिए बड़े प्रयास किए गए हैं। मुझे अपने बचपन की एक स्मृति है, जो कभी नहीं भूलती। मेरे गांव में जिस आदमी का मुझे सबसे पहला स्मरण है, और शायद मरते वक्त सबसे आखिरी स्मरण रहेगा; उस आदमी का मुझे नाम भी पता नहीं; क्योंकि बहुत छोटा था, तभी वह आदमी मर गया। एक ही बात स्मरण है कि वह आदमी अपने घर से नदी तक स्नान करने सुबह जाता था, तो घर से नदी तक का फासला पैदल चलने में मुश्किल से पांच मिनट का था। लेकिन उसको नदी तक पहुंचने में दो घंटे लगते थे। नदी में स्नान करने में मुश्किल से, वह जिस ढंग से स्नान करता था, पांच मिनट से ज्यादा लगने की कोई जरूरत न थी। लेकिन नदी में उसको स्नान करने में दो घंटे लगते थे। घर लौटने में पांच मिनट का फासला था, लेकिन फिर दो घंटे लगते थे। असल में उस आदमी की जिंदगी सुबह और शाम नहाने में जाती थी। सुबह छः घंटे नहाने में, और शाम छः घंटे नहाने में! मामला क्या था?

मामला यह था कि वह आदमी घर से निकला कि बस, बच्चों की और लोगों की भीड़ उसके चारों तरफ! और लोग चिल्ला रहे हैं, राधेश्याम! राधेश्याम! और वह पत्थर फेंक रहा है। नाराज हो रहा है। चिल्ला रहा है। दौड़ रहा है। राधेश्याम का दुश्मन था। कहता कि कहो, राम! और लोग चिल्लाते, राधेश्याम! बस, दो घंटे उसको नदी तक जाने में लगते।

तो वह नहा रहा है, और लोग चिल्ला रहे हैं। और वह बीच-बीच में निकलकर आ रहा है, आधा नहाया हुआ। वह कपड़ा धो रहा है, और लोग चिल्ला रहे हैं। और भीड़ लगी है, और वह भाग रहा है! न वह कपड़ा धो पाता है, न वह नहा पाता है। उसकी मुझे याद है।

मैं भी उसके पीछे बहुत बार नदी तक उसे छोड़ने गया हूं, और नदी से उसको वापस घर तक लाया हूं। उसके पीछे मेरे भी छः घंटे बहुत दफे खराब हुए हैं।

लेकिन धीरे-धीरे मुझे खयाल आना शुरू हुआ कि वह आदमी हाथ में पत्थर भी उठाता है, मारने को दौड़ता भी है, लेकिन जब भी राधेश्याम कहो, तो उसकी आंखों में कोई चमक आ जाती है। तब मुझे शक पैदा हुआ।

गांवभर में खबर थी कि वह राम का भक्त है। वह गया था एक दिन नदी। मैं अपने टेंपटेशन को रोककर–क्योंकि उस आदमी को नदी तक पहुंचाना बड़ा टेंपटेशन था–किसी तरह रोककर, वह नदी गया; मैं चोरी से उसकी दीवाल को छलांग लगाकर उसके घर में गया। अपने घर में वह किसी को कभी घुसने नहीं देता था। कहते हैं, जिस दिन वह मरा, उसी दिन लोग उसके घर में घुसे। वर्षों से उसके दरवाजे से किसी ने भीतर प्रवेश नहीं किया था।

मैंने जाकर उसके घर के भीतर देखा, तो राधाकृष्ण की मूर्ति उसके घर में रखी है, और फूल चढ़े हैं! फिर मैं वहीं बैठा रहा। उस आदमी ने आकर दरवाजा खोला। मुझे भीतर देखकर तो एकदम पागल हो गया। उसने कहा, भीतर कैसे आए? क्योंकि मेरे घर में कभी मैंने किसी को प्रवेश नहीं करने दिया। मैंने उससे कहा कि अब तो मैं भीतर आ गया। और अब चाहें तो बाहर निकाल दें। लेकिन राज मेरे हाथ में आ गया है।

उस आदमी की आंखों में आंसू आ गए। उसने कहा, इस गांव में इतने लोग हैं, लेकिन किसी ने कभी मेरे हृदय में भीतर प्रवेश करके नहीं देखा। मैं सिर्फ इसीलिए नाराज होता हूं कि लोग राधेश्याम का नाम ही ले लें। मेरी जिंदगी इसी में बीत रही है। लेकिन मैं प्रसन्न हूं। क्योंकि मैं जानता हूं कि शब्द के जगत में मैंने बहुत-से राधेश्याम की ध्वनियों को संगृहीत करवा दिया है। और कोई मुझे चिढ़ाने को ही नाम लेता होगा राधेश्याम का, तो भी लेता तो राधेश्याम का ही नाम है। अभी चिढ़ाता रहेगा, चिढ़ाता रहेगा, चिढ़ाता रहेगा; किसी दिन...। आखिर तुम भी तो चिढ़ाते-चिढ़ाते नदी छोड़कर-छोड़कर एक दिन मेरे घर के भीतर आ गए हो।

वह आदमी जिस दिन मरा, उसी दिन गांव को पता चला। लेकिन उसने मुझसे प्रार्थना की, और मेरे पैर पकड़कर प्रार्थना की। मैं तो बहुत छोटा था, वह तो बूढ़ा था। उसने पैर पकड़कर प्रार्थना की कि तुम आ गए, सो ठीक। जब भी आना हो, दीवाल कूदकर आ जाना। लेकिन किसी को बताना मत कि मेरे घर में राधेश्याम की प्रतिमा है। नहीं तो गांव में खबर हो गई, तो मुझे कोई चिढ़ाएगा नहीं। बात ही समाप्त हो जाएगी। इस राज को राज ही रहने देना, जब तक मैं मर न जाऊं!

बुद्ध कहते थे अपने भिक्षुओं से कि प्रार्थना शुरू करना, जगत के मंगल की कामना के साथ। प्रार्थना पूरी करना, जगत के मंगल की कामना के साथ। शायद प्रार्थना तो बेकार चली जाए, लेकिन मंगल का जो उदघोष है, वह रिकार्ड हो जाएगा। क्योंकि प्रार्थना तो बेकार जा सकती है, उसको तो करने वाले की सामर्थ्य चाहिए, लेकिन मंगल का उदघोष तो कोई भी कर सकता है।

आकाश में मैं शब्द। सूक्ष्मतम जो आकाश में संगृहीत होता है रूप--अदृश्य, अरूप कहना चाहिए--वह है शब्द, वह मैं हूं।

वेदों में ओंकार।

वेद में कितना क्या है! कहा जाए, करीब-करीब सब कुछ है। जो जगत में धर्म की दिशा में जो भी खोजा गया है, करीब-करीब सब है। लेकिन उस सबको छोड़कर कृष्ण कहते हैं, वेदों में ओंकार, सिर्फ ओम। बस, उतना हूं मैं। बाकी मैं नहीं हूं। बाकी तो सब जगत है। सिर्फ ओम!

अगर कृष्ण से पूछा जाए, तो वे कहेंगे, सब शास्त्र नष्ट हो जाएं, अकेला ओम बच जाए, तो सब शास्त्र बच गए। और सब शास्त्र बच जाएं, अकेला ओम खो जाए, तो सब शास्त्र खो गए।

और बड़े मजे की बात है, यह ओम बिलकुल ही अर्थहीन शब्द है, मीनिंगलेस। इसमें कोई अर्थ नहीं है। इसमें कोई फिलासफी, कोई दर्शन नहीं है। यह शब्द एक अर्थ में बिलकुल एब्सर्ड है; इसमें कुछ अर्थ नहीं है। और कृष्ण इतना मोह दिखलाते हैं कि वेदों में ओंकार! बस, वेद में मैं ओम हूं! क्यों? बहुत पूरी प्रक्रिया है। थोड़ी-सी बात आपसे कह दूं।

इस एक छोटे-से शब्द में, ओम में, भारत ने समस्त मंत्र-योग की साधना को बीज की तरह बंद कर दिया। जैसे आइंस्टीन का रिलेटिविटी का फार्मूला है, छोटा-सा, दोत्तीन शब्द, दोत्तीन अक्षर--पूरा हो जाता है। ऐसे भारत ने जो भी अंतर-जीवन में अनुभव किया है, और जितनी विधियां मनुष्य ने विकसित की हैं सत्य की तरफ यात्रा करने की, वे सब की सब बीज-मंत्र की तरह ओम में रख दी हैं।

यह ओम अ, उ और म, इन तीन मूल ध्वनियों का जोड़ है। सारे शब्दों का विस्तार ओम का विस्तार है। सब वेदों में ओम। ओम होगा, तो सब वेद पुनः निर्मित हो सकते हैं। सीक्रेट-की आपके हाथ में है। ये तीन अ, उ और म, अगर ये

तीन हों, तो जगत के सब शास्त्र निर्मित हो सकते हैं। लेकिन सब शास्त्र बच जाएं और कुंजी खो जाए, तो सब शास्त्र बेकार हो जाएंगे। ताले रह जाएंगे, चाबी खो गई।

विज्ञान भैरव में शिव ने पार्वती को कहा है कि तू ज्यादा न पूछ। ज्यादा में तुझे अड़चन होगी। थोड़े में तुझे कह दूं। अ उ म–यह जो ओम है, इसमें तू अ को भी भूल जा; इसमें तू म को भी भूल जा; वह जो बीच में बचता है, ओम के बीच में; अ भी छूट जाए, म भी छूट जाए, वह जो बीच में बचता है उ, उस उ में तू डूब जा। तो मैं तुझे उपलब्ध हो जाऊंगा।

यह तो टेक्नीक की बात है। अगर आप उ में डूब सकें...। आप कभी जोर से कहें उ, तो आपको पता चलेगा कि पूरी नाभि भीतर सिकुड़ गई। जितने जोर से उ कहेंगे, उतने ही जोर से नाभि पर जोर पड़ेगा। और नाभि जीवन का मूल ऊर्जा-स्रोत है। उसको ठीक टैप करना जिसको आ जाए...। ओम, उसको ही हैमर, उसको ही चोट पहुंचाने की तरकीब है। और उस पर जो विधिवत चोट पहुंचा दे, वह जीवन की ऊर्जा उठनी शुरू हो जाती है। कुंडलिनी जागने लगती है। ऊपर की यात्रा पर आदमी निकल जाता है।

सुना है मैंने कि एक छोटे-से गांव में एक बहुत बड़े कारखाने में एक नई मशीन लगाई गई। महीनेभर ठीक चली और फिर अचानक बंद हो गई। कोई खराबी भी न थी। कोशिश करके हार गए इंजीनियर उस कारखाने के, लेकिन कोई रास्ता न निकला। फिर तो बड़े शहर से, राजधानी से विशेषज्ञ को बुलाना पड़ा। हजार रुपया उसके आने-जाने का खर्च हुआ।

वह विशेषज्ञ आया; एक छोटी-सी हथौड़ी उसने अपनी पेटी में से निकाली और मशीन को तीन जगह, ठक ठक ठक–तीन जगह उसने किया; मशीन चल पड़ी।

मालिक ने कहा कि बड़ी कृपा आपकी। आपका बिल क्या हुआ? उसने लिखा, एक हजार रुपया। मालिक ने कहा, मजाक तो नहीं कर रहे आप? तीन जगह ठक ठक ठक करने का एक हजार रुपया? आइटमवाइज बिल बनाइए। आपने और तो कुछ किया भी नहीं। ठक ठक ठक! इसमें पहली ठक का कितना रुपया, दूसरी ठक का कितना रुपया, तीसरी ठक का कितना रुपया? आंख से मैं देख रहा हूं।

उस आदमी ने बिल बनाया। उसने लिखा कि तीन ठकों का एक रुपया, टैपिंग–रुपी वन। एंड नोइंग व्हेयर टु टैप–रुपीज नाइन हंड्रेड नाइनटी नाइन। कहां–उसके नौ सौ निन्यानबे रुपए; और जहां तक ठोंक का सवाल है, एक रुपए से चल जाएगा। और उसने नीचे लिखा कि अगर आपको ज्यादा तकलीफ हो रही हो, तो टैपिंग का आप छोड़ भी सकते हैं। वह एक रुपया न भी दें। बाकी नोइंग व्हेयर टु टैप...।

ओम जो है, वह सीक्रेट है समस्त वेदों का। वह व्यक्ति के भीतर जो परमात्मा की ऊर्जा बीज में छिपी है, उसको टैप करने की तरकीब है; उसको चोट करने की तरकीब है।

तो कृष्ण कहते हैं, वेदों में ओंकार। ऐसा मैं अदृश्य हूं। ऐसे दृश्य में तू मुझ अदृश्य को खोज।

ओशो – गीता-दर्शन – भाग 3
आध्यात्मिक बल— अध्याय –7 (प्रवचन—4)

बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम्।
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम्।।10।।
बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम्।
धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ।।11।।

हे अर्जुन, तू संपूर्ण भूतों का सनातन कारण मेरे को ही जान। मैं बुद्धिमानों की बुद्धि और तेजस्वियों का तेज हूं।

और हे भरत श्रेष्ठ, मैं बलवानों का आसक्ति और कामनाओं से रहित बल अर्थात सामर्थ्य हूं, और सब भूतों में धर्म के अनुकूल अर्थात शास्त्र के अनुकूल काम हूं।

परमात्मा स्वयं अपना परिचय देना चाहे, तो निश्चित ही बड़ी कठिन बात है। आदमी भी अपना परिचय देना चाहे, तो कठिन हो जाती है बात। और परमात्मा अपना देना चाहे, तो और भी कठिन हो जाती है।

एक तो इसलिए कठिन हो जाती है कि परमात्मा भी अपना स्वयं परिचय दे, तो सदा ही अधूरा होगा; पूरा नहीं हो सकता। अस्तित्व इतना विराट है, और शब्द इतने छोटे पड़ जाते हैं। परमात्मा भी कहना चाहे, तो कहकर पाएगा कि जो कहना था, वह नहीं कहा जा सका है। कहना चाहा था, वह छूट गया है। और जो कहा गया है, वह बहुत दूर की खबर लाता है।

कृष्ण को भी वैसी ही कठिनाई है। और जब भी किसी व्यक्ति के भीतर से परमात्मा ने स्वयं को अभिव्यक्त किया है, तब सदा ही ऐसी ही कठिनाई हुई है। कृष्ण की पीड़ा हम समझ सकते हैं। वे जो उदाहरण ले रहे हैं, वे जिन बातों के सहारे समझाने चल रहे हैं, वे बातें बहुत साधारण हैं। लेकिन इसके अतिरिक्त कोई उपाय नहीं, कोई विकल्प नहीं। आदमी से बात करनी हो, तो आदमी की भाषा में ही बात करनी पड़ेगी।

इशारे करते हैं। इशारों से ज्यादा नहीं है यह बात। और जो आदमी इशारे को पकड़ लेगा, वह भटक जाएगा। और हम सबकी आदत इशारों को पकड़ने की है। हम मील के पत्थरों को छाती से लगाकर बैठ जाते हैं, यह सोचकर कि यह मंजिल हुई। हालांकि हर मील का पत्थर, केवल एक तीर का इशारा है आगे की तरफ, कि मंजिल आगे है।

और मैं चांद को अंगुली से बताऊं, तो बहुत डर है कि अंगुली पकड़ ली जाए और चांद समझ ली जाए। यद्यपि अंगुली चांद नहीं है; लेकिन अंगुली चांद की तरफ इशारा कर सकती है। लेकिन यह इशारा उसी की समझ में आएगा, जो अंगुली को छोड़ दे और भूल जाए, और चांद की तरफ देखे। और मैंने अंगुली उठाई चांद की तरफ, और आपने सोचा कि शायद मैं अंगुली उठा रहा हूं, तो अंगुली में कुछ होगा। और आप मेरी अंगुली से अटक गए, तो आप चांद तक कभी भी न पहुंच पाएंगे।

अंगुली चांद को बताती है, चांद नहीं है। उसे छोड़ ही देना पड़ेगा। उसे भूल ही जाना पड़ेगा। उसे तो बिलकुल पीछे छोड़कर जब आंख आकाश की तरफ उठेगी, वहां तो कोई अंगुली न होगी, वहां तो चांद होगा।

तो कृष्ण ये जो बातें कह रहे हैं, वे अंगुलियां हैं। अधूरे इशारे हैं, आंशिक। उनमें सूचना है। जो उनको पकड़ लेगा, वह खतरे में पड़ेगा। जो उनको छोड़ देगा, उनके ऊपर उठेगा, पार जाएगा, वह इशारे को समझने में समर्थ हो सकता है।

कल रात्रि भी उन्होंने कुछ इशारे किए। उसमें एक इशारा छूट गया था, वह भी हम बात कर लें।

उन्होंने कहा, पुरुषों में मैं पुरुषत्व हूं।

पुरुषों में पुरुषत्व, पुरुष नहीं। पुरुषत्व क्या है? यह संस्कृत का शब्द बहुत कीमती है। और इस शब्द की थोड़ी-सी पर्तों को उघाड़ना जरूरी है।

हम सभी जानते हैं कि पुर कहते हैं नगर को, बस्ती को। जिन्होंने पुरुष शब्द का उपयोग किया है, उन्होंने कहा है कि यह आदमी तो एक नगर है, एक पुर है। और इसके भीतर एक मालिक बस रहा है, वह पुरुष है। इस नगरी के भीतर जो छिपा है, वह।

तो पुरुष से अर्थ, स्त्री के विपरीत जो है, वैसा नहीं है। पुरुष का अर्थ मेल नहीं है। पुरुष तो स्त्री के भीतर भी है। स्त्री और पुरुष, जैसा हम प्रयोग करते हैं, ये तो नगर की खबर देते हैं। स्त्री की बस्ती अलग है, उसका शरीर अलग है। और जिसे हम पुरुष कहते हैं, उसकी भी बस्ती अलग है और शरीर अलग है। लेकिन भीतर जो बस रहा है पुरुष, उस नगर के बीच में जो बस रहा है मालिक, वह एक है।

इसलिए कई को यह खयाल हो सकता है कि कृष्ण ने स्त्रियों की जरा भी बात न कही। कुछ तो कहना था कि स्त्रियों में मैं कौन! ज्यादती मालूम पड़ती है। सबकी बात कर रहे हैं, और स्त्री कोई छोटी घटना नहीं है कि उसकी बात छोड़ी जा सके। जिसे हम पुरुष कहते हैं, उससे तो थोड़ी बड़ी ही घटना है। क्योंकि जीवन के इस सृजन में पुरुष तो सांयोगिक है, एक्सिडेंटल है; स्त्री आधारभूत है।

लेकिन कृष्ण ने स्त्री की बात नहीं की, जानकर, क्योंकि पुरुष में स्त्री सम्मिलित हो गई है। अगर नगर की बात करते, तो फासला था स्त्री और पुरुष का। वे तो उसकी बात कर रहे हैं, जो नगर के बीच में बसा है। स्त्री के भीतर भी वह पुरुष है; पुरुष के भीतर भी वह पुरुष है।

फिर भी पुरुष की बात नहीं कर रहे हैं। कह रहे हैं, पुरुषों में पुरुषत्व। जैसे कि हजारों फूल को निचोड़कर हम थोड़ा-सा इत्र बना लें। ऐसा ही समस्त पुरुष जहां-जहां हैं, उनके भीतर जो पुरुषत्व है, वह जो निचोड़ है, वह जो इत्र है, वह मैं हूं।

यह भी सोचने जैसा है। क्योंकि जब हम कहते हैं पुरुष, तो एक पर्टिक्युलर, एक विशेष व्यक्तित्व का खयाल आता है। जब हम कहते हैं पुरुषत्व, तो युनिवर्सल, सार्वभौम सत्य का खयाल आता है। जब हम कहते हैं पुरुष, तो सीमा बनती है; और जब हम कहते हैं पुरुषत्व, तो असीम हो जाता है।

यूनान में प्लेटो ने जिसे आइडिया कहा है, प्रत्यय कहा है। पुरुषत्व एक प्रत्यय है, एक आइडिया है। जब हम कहते हैं प्रेमी, तो एक सीमा बन जाती है। लेकिन जब हम कहते हैं प्रेम, तो सब सीमाएं टूट जाती हैं, तब असीम हो जाता है सब। जब हम कहते हैं पुरुष, तो एक रेखा खिंच जाती है चारों ओर। जब हम कहते हैं पुरुषत्व, तो विराट आकाश की तरह सब विस्तीर्ण हो जाता है।

पुरुषत्व की कोई सीमा नहीं है। पुरुष आएंगे और जाएंगे, पुरुष बनेंगे और मिटेंगे। पुरुषत्व तो शाश्वत है। शक्लें बदलेंगी, घर बदलेंगे, नगर बसेंगे और उजड़ेंगे। आज आपका एक नाम है, पिछले जन्म में दूसरा था, अगले जन्म में और तीसरा होगा। कितने-कितने पुरुष होने का आपको खयाल पैदा होगा कि मैं यह हूं, मैं यह हूं, मैं यह हूं। लेकिन भीतर वह जो निर्गुण, वह जो भीतर निराकार है, वह एक है।

इसलिए भी कहा पुरुषत्व। जब हम लहरों की बात करते हैं, तो अक्सर डर होता है कि सागर कहीं भूल न जाए। कृष्ण यह कह रहे हैं कि लहरों में मैं सागर। लहर भला दिखाई पड़ती हो, लेकिन सिर्फ दिखाई पड़ती है, एपियरेंस है, सिर्फ एक आभास है। सत्य तो सागर है, जो नीचे है।

बड़ी मजे की बात है, सागर के किनारे जाएं, तो लहरें ही दिखाई पड़ती हैं, सागर कभी दिखाई नहीं पड़ता। अक्सर आप कहते हैं कि मैं सागर के दर्शन करके आ रहा हूं। लेकिन गलत कहते हैं। कहना चाहिए, लहरों के दर्शन करके आ रहा हूं। सागर तो दिखाई नहीं पड़ता। दिखाई तो लहरें पड़ती हैं। फिर भी आप कहते हैं कि सागर का दर्शन करके आ रहा हूं। इसी खयाल से कि लहर की क्या गिनती करनी! लहर तो आप देख भी नहीं पाए और मिट गई होगी, और दूसरी बन गई। जो मिट गई लहर, उसमें भी जो था, और जो बन गई लहर, उसमें भी जो है–हालांकि वह आपको दिखाई नहीं पड़ा है। लेकिन आप खबर यही देते हैं कि मैं सागर के दर्शन करके आ रहा हूं।

तो कृष्ण लहरों की बात नहीं कर रहे हैं; वे सागर की बात कर रहे हैं। वे पुरुषों की बात नहीं कर रहे, पुरुषत्व की बात कर रहे हैं। जिसके ऊपर सारा खेल निर्मित होता है। एक रूप, दूसरा रूप, हजार रूप वह पुरुषत्व लेता चला जाता है; और फिर भी अरूप है। न मालूम कितने आकार बनते हैं और विसर्जित होते हैं, फिर भी वह निराकार है।

तो पुरुषों में मैं पुरुषत्व हूं!

इस सूत्र में भी उन्होंने कुछ बातें कही हैं, और कुछ कीमती बातें कही हैं। कहा है, वासना से रहित, काम से रहित वीरों का वीर्य हूं। वासना से रहित, कामना से रहित वीरत्व हूं, वीरता हूं।

आदमी वासना में डूबकर बड़े वीरता के कार्य कर सकता है। लेकिन कृष्ण कह रहे हैं कि मनुष्य के भीतर वह जो वीर्य की ऊर्जा घटित होती है, मैं तब वह हूं, जब वहां काम न हो, वासना न हो।

आपको खयाल दिलाना चाहूंगा। महावीर का जन्म का नाम वर्द्धमान था। बाद में दिया गया नाम, महावीर। और महावीर नाम दिया गया, उस वीरता की वजह से, जिसकी कृष्ण चर्चा कर रहे हैं। महावीर किसी से लड़े नहीं। लड़ने की बात दूर, पांव फूंककर रखा कि कोई चींटी न दब जाए। किसी से कोई स्पर्धा न की, किसी से कोई प्रतियोगिता न की। कैसी वीरता है उनकी?

अगर महावीर को हम देखेंगे, तो उनके चारों तरफ कोई भी तो घटना घटती हुई मालूम नहीं पड़ती, जिसमें कि वीरता का पता चलता हो। न युद्ध के मैदान पर लड़ते हैं, न तलवारों-भालों के बीच में खड़े होते हैं। कैसे वीर होंगे! लेकिन इस मुल्क ने उनको महावीर कहा। इस मुल्क ने इस सूत्र की वजह से महावीर कहा। वासना बिलकुल नहीं है, फिर एक वीर्य का नव उदय हुआ है। उस वीर्य को हम थोड़ा पहचानें कि वह कैसा है।

महावीर साधना में लगे। कठोर तपश्चर्या में डूबे। भूल गए जगत को, याद रखा अपने को ही। नग्न खड़े होते थे गांव के बाहर। लोग सताने लगे।

एक दिन सुबह ऐसी घटना हुई। एक ग्वाले ने आकर अपनी गायों को वहां चराने के लिए छोड़ा। फिर उसे कुछ काम आ गया, तो उसने खड़े हुए महावीर से कहा कि सुनो! जरा मेरी गायों को देखते रहना, मैं अभी लौटकर आता हूं। जल्दी में था; उसने यह भी फिक्र न की कि यह नग्न खड़ा हुआ साधु कुछ बोला नहीं। या सोचा होगा कि मौन सम्मति का लक्षण है; चला गया।

दोपहर जब वापस लौटा, तो महावीर तो अपने दूसरे ही लोक में थे। लौटा, तब तक गाएं चरती हुई दूर निकल गई थीं। महावीर से बहुत पूछा, वे कुछ न बोले। आंख बंद किए खड़े थे, खड़े रहे। सोचा कि या तो यह आदमी पागल है, या चालाक है। गाएं या तो चोरी चली गईं; इस आदमी का हाथ है कुछ। और या फिर यह आदमी पागल है, या गूंगा है, या बहरा है।

वह गायों को ढूंढ़ने गया, जंगलभर में घूम आया, लेकिन गाएं न मिलीं। और जब सांझ महावीर के पास से निकलता था, तो गाएं चरकर लौट आई थीं और महावीर के पास वापस बैठी हुई थीं। तब तो पक्का शक हो गया। सोचा कि यह आदमी बेईमान है। मुझे धोखा दिया। गायों को छिपाए रहा। अब रात में लेकर निकल जाएगा।

उसने महावीर को गालियां दीं। मारा। कान में लकड़ियों की खूंटियां ठोंक दीं। क्योंकि यह देखकर कि तू समझ रहा है कि तू बहरा है; सुनता नहीं। तो हम तेरे बहरेपन को पूरा किए देते हैं! कान में उसने खूंटियां ठोंक दीं। खून, लहूलुहान, महावीर के कान से खून बहने लगा। वह खूंटियां ठोंककर अपनी गायों को लेकर चला गया।

मीठी कथा है कि देवता पीड़ित और परेशान हुए। और इंद्र ने आकर महावीर से कहा कि क्षमा करें! हमें आज्ञा दें, ताकि हम आपकी रक्षा कर सकें। ऐसा दुबारा न हो, अन्यथा बदनामी हमारी होगी कि भले लोग जमीन पर थे और महावीर के कान में खूंटियां ठोंक दी गईं! हमें आज्ञा दें।

महावीर ने आंख खोली और कहा, वह ग्वाला भी अपने ढंग से मुझे विचलित करने आया था; तुम अपने ढंग से मुझे विचलित करने आए हो। मुझे छोड़ दो मुझ पर। जो भी होना है, मुझ अकेले पर होने दो। जन्मों-जन्मों बहुत तरह के

साथ मैंने लिए, सब साथ व्यर्थ गए। अब मैं अकेला हूं। जन्मों-जन्मों न मालूम कितने कंधों पर हाथ रखे, और सोचा कि वे साथी बनेंगे; कोई साथी कभी बना नहीं। अब मैं अकेला हूं।

अब यह वीर्य, यह वीरता दिखाई नहीं पड़ेगी बाहर किसी युद्ध के मैदान में। लेकिन युद्धों में जो वीर हैं, वे बच्चे हैं। महावीर की वीरता यह है कि वे कहते हैं, अब संगी और साथी न बनाऊंगा। अब अकेला काफी हूं। जन्मों-जन्मों बहुत संगी-साथी बनाए, सब व्यर्थ हो गए। पाया आखिर में कि अकेला हूं। अब मुझे तुम अकेला ही होने दो। और एक तरह से वह विचलित करने आया था; तुम दूसरी तरह से विचलित करने आए हो।

इंद्र ने कहा, आप हमें गलत न समझें। हम आपको विचलित करने नहीं; सिर्फ रक्षा करने आए हैं।

महावीर ने कहा कि जिन्होंने भी मेरे लिए सदा वचन दिए रक्षा करने के और जिन्होंने कहा, हम रक्षा करेंगे, वे ही थोड़े दिन में मेरे कारागृह बन गए। जिन्होंने भी कहा था कि हम रक्षा करेंगे, जिन्होंने भी कहा था कि हम साथ देंगे, संगी बनेंगे, दुख से बचाएंगे, आखिर में मैंने पाया कि वे ही मेरे दुख के कारण बने, और वे ही मेरे कारागृह की दीवालें बने। अब नहीं। अब मैं अकेला काफी हूं। अब सुख हो कि दुख, मैं अकेला काफी हूं। तुम मुझे मुझ पर छोड़ दो।

महावीर ने कहा है, एक ही वीरता है इस पृथ्वी पर, अकेले होने का साहस--दि करेज टु बी अलोन।

बहादुर से बहादुर आदमी भी अकेला नहीं हो सकता। कम से कम तलवार तो साथ में रखता ही है। इसलिए जिसके हाथ में तलवार देखें, समझ लेना कि भीतर कायर छिपा है। नहीं तो तलवार किसके लिए! महावीर नग्न खड़े हैं; हाथ में एक लकड़ी का टुकड़ा भी नहीं है।

कृष्ण कहते हैं, जिसकी वासना हट गई, जिसका काम हट गया, उसमें मैं वीर्य हूं। उसमें मैं बल हूं। उसका मैं बल हूं।

इसमें एक बात और समझ लेने जैसी है। जहां भी कामवासना है, वहां वीर होना उसी तरह आसान है, जैसे किसी आदमी को शराब पिला दी जाए और लड़ने को भेज दिया जाए। नशे में बहादुर हो जाना आसान है, क्योंकि नशे में आदमी मूर्च्छित होता है। इसलिए हाथियों को जब युद्ध पर भेजते हैं, तो शराब पिलाकर भेजते हैं। क्योंकि मरने का खयाल ही नहीं रह जाता; होश ही नहीं रह जाता।

कामवासना भी एक जहर है, एक इंटाक्सिकेंट है। और जब आप कामवासना से भरते हैं, तो कामवासना से भरा हुआ आदमी आग लगे मकान में प्रवेश कर सकता है।

तुलसीदास की कहानी हम सबने सुनी है। कामवासना से भरा हुआ आदमी नदी में मुर्दे को हाथ का सहारा लगाकर पार हो गया। उसे पता न चला कि मुर्दा है! उसने समझा कि कोई लकड़ी का टुकड़ा है, इसके सहारे मैं पार हो जाऊं।

तुलसीदास बरसा की अंधेरी रात में छज्जे से लटके हुए सांप को रस्सी समझकर ऊपर चढ़ गए! रस्सी दिखाई पड़ी; सांप दिखाई न पड़ा। आंखें अंधी थीं। वासना ही क्या जो अंधा न कर जाए!

कोई कह सकता है कि बड़े बहादुर रहे होंगे तुलसीदास। सांप को पकड़कर चढ़ गए; कम बहादुर हैं! लेकिन तुलसीदास नहीं चढ़े सांप को पकड़कर। सांप को पकड़कर वासना चढ़ी। और वासना अंधी है। उसमें कोई बहादुरी नहीं होती। तुलसीदास नहीं चढ़े सांप को पकड़कर। तुलसीदास को सांप दिख जाता, तो भाग खड़े होते। वह दिखाई नहीं पड़ा। आंखें अंधी थीं। जब आंखें खुलीं, तब पता चला कि क्या किया है!

तीव्र वासना के क्षण में आप मूर्च्छित होते हैं, बेहोश होते हैं। बेहोशी में बल का कोई अर्थ नहीं है। पागल होते हैं। पागलपन में बल का कोई अर्थ नहीं है।

इसलिए कृष्ण उसे काट देते हैं। वे कहते हैं, कामवासना को छोड़कर, बलवानों का मैं बल हूं।

और भी एक बात कहते हैं, इसी संदर्भ में। यह भी कहते हैं कि जो धर्म से भरा है, उसकी मैं कामवासना भी हूं। ये उलटे दिखाई पड़ेंगे वक्तव्य। बलवान के लिए कहा, जो कामवासना से रहित है, उसका मैं बल हूं। लेकिन तब सवाल उठ सकता है कि फिर यह कामवासना का क्या होगा? कृष्ण कहते हैं, कामवासना भी मैं हूं, उसकी, जो धर्म से भरा है। इसका क्या अर्थ होगा? धर्म से भरी कामवासना का क्या अर्थ होगा?

जैसे ही व्यक्ति के जीवन में धर्म उतरता है, वैसे ही कामवासना वासना नहीं रह जाती। वैसे ही काम, सेक्स, यौन, यौन नहीं रह जाता। इसे थोड़ा समझना जरूरी है।

कुछ ऐसा है कि जिस व्यक्ति के जीवन में धर्म का अवतरण हुआ, उस व्यक्ति के जीवन का सभी कुछ धार्मिक हो जाता है। धर्म इतना डुबाने वाला है कि सिर्फ आपकी बुद्धि को ही डुबाएगा, ऐसा नहीं; सिर्फ आपके हृदय को ही डुबाएगा, ऐसा नहीं; आपके शरीर को भी डुबा लेगा। धर्म इतनी बड़ी घटना है कि घटे तो आप पूरे के पूरे उसमें डूब जाएंगे। आपकी कामवासना कहां बचेगी! वह भी उसमें डूब जाएगी। कहना चाहिए कि धर्म का अमृत ऐसा है कि अगर जहर की बूंद भी उसमें पड़ जाए, तो अमृत हो जाएगी।

हमें समझना बहुत कठिन होगा। हमारी सामान्य समझ तो यह कहती है कि वह सारा का सारा अमृत जहर हो जाएगा, अगर एक बूंद जहर की पड़ गई। क्योंकि जहर से ही हम परिचित हैं; अमृत से हम परिचित नहीं हैं। हमने जहर ही जाना है; हमने अमृत जाना नहीं है। सच बात तो यह है कि अमृत की कसौटी और परीक्षा ही यही है कि वह जहर को अमृत बना पाए। अन्यथा उसकी कोई कसौटी नहीं, कोई परीक्षा नहीं।

धर्म की कसौटी ही यही है कि आपके भीतर जो जहर है, वह अमृत हो जाए। आपके भीतर जो यौन है, जो वासना है, कामना है, वह भी राम-अर्पित हो जाए, वह भी प्रभु-समर्पित हो जाए। वह ऊर्जा भी ब्रह्म की ऊर्जा बन जाए।

क्या होता होगा? जब कोई व्यक्ति धर्म से भरता होगा, तो उसकी कामवासना की गति क्या होती होगी? उसकी कामवासना की गति आमूल बदल जाती है।

अभी आप कामवासना से भरते हैं अचेत होकर, मूर्च्छित होकर, विक्षिप्त होकर। निर्णय करते हैं हजार बार कि कामवासना से बचूंगा, बचूंगा, बचूंगा! और आप निर्णय करते रहते हैं, और भीतर वासना संगृहीत होती चली जाती है। और एक क्षण आता है, आपके निर्णय का पत्थर उठाकर फेंक दिया जाता है और वासना का झरना फूट पड़ता है। फिर कल से आप पछताएंगे और फिर पछताकर यही करेंगे कि फिर वासना को दबाकर इकट्ठा करेंगे। और फिर वह वक्त आएगा कि आपका संकल्प तोड़कर वासना पुनः बह उठेगी।

अभी वासना का हम पर हमला होता है, वी आर दि विक्टिम्स। अगर इसे ठीक से समझें, तो हम वासना के मालिक नहीं हैं, शिकार हैं। वासना हमें पकड़ लेती है भूत-प्रेत की भांति; और हमसे कुछ करा डालती है, जो कि शायद हमने अपने होश में कभी न किया होता। और जब हम होश में आते हैं, तो पछताते हैं, दुखी और पीड़ित होते हैं कि हमने ऐसा सोचा, ऐसा किया! लेकिन फिर वही होता है।

हम वासना के हाथ में धागे बंधी हुई गुड्डियों की तरह हैं, जो नाचते हैं। प्रकृति हम से काम लेती है। हम प्रकृति के गुलाम हैं। प्रकृति आज्ञा देती है, और हम काम में लग जाते हैं।

धर्म से भरे हुए व्यक्ति को प्रकृति आज्ञा देना बंद कर देती है। असल में जो व्यक्ति धर्म को उपलब्ध होता है, प्रकृति की आज्ञा-सीमा के बाहर हो जाता है। प्रकृति उसे कोई भी आज्ञा नहीं दे सकती। और एक नई घटना घटती है कि धर्म को उपलब्ध व्यक्ति प्रकृति को आज्ञा देने लगता है। एक आमूल रूपांतरण होता है।

जब तक हम अधर्म में जीते हैं, तब तक प्रकृति हमें आज्ञा देती है; हम गुलामों की तरह होते हैं। हम चलाए जाते हैं, चलते नहीं। हम खींचे जाते हैं, चलते नहीं। हम धकाए जाते हैं, हम चलते नहीं। हमारी जिंदगी हमारी वृत्तियों का जबर्दस्ती दबाव है। न तो आपने कभी क्रोध किया है; क्रोध करवाया गया है। न आपने कभी कामवासना की है; कामवासना करवाई गई है। आप सिर्फ एक विक्टिम हैं, एक शिकार हैं। चारों तरफ से आपको धक्के दिए जा रहे हैं।

जैसे हवा में पत्ता कंपता है। बाएं हवा बहती है, तो बाएं; और दाएं बहती है, तो दाएं। वह पत्ता भी शायद मन में सोचता होगा कि अब बाएं बहुत थक गया, अब जरा दाएं बहूं। जब हवा दाएं चलने लगती है, तब वह सोचता होगा, अब दाएं चलूं। वैसे ही आप सोचते हैं कि मैं क्रोध कर रहा हूं; कि मैं वासना से भर रहा हूं।

नहीं; आप सिर्फ भरे जाते हैं। आप बिलकुल हेल्पलेस विक्टिम, असहाय शिकार हैं।

धर्म से भरा हुआ व्यक्ति प्रकृति के ऊपर उठता है, वह प्रकृति को आज्ञा देना शुरू करता है। वैसे व्यक्ति के जीवन में कामवासना वासना नहीं रह जाती। हां, वैसे व्यक्ति के जीवन में यदि काम की कोई घटना भी घटे--जैसे कि कुछ घटनाएं घटी हैं--तो उनके कारण बहुत ही दूसरे होते हैं।

जैसे जीसस के बाबत कहा जाता है कि वह क्वांरी मरियम से पैदा हुए। यह उदाहरण मैं दे रहा हूं, ताकि आपकी समझ में आ सके कृष्ण की बात। जीसस के बाबत कहा जाता है, वे क्वांरी मरियम से, वर्जिन मैरी से पैदा हुए। अब क्वांरी लड़की से कोई कैसे पैदा होगा?

लेकिन हो सकता है। अगर कृष्ण के सूत्र को समझें, तो हो सकता है। मैरी, वह जीसस की मां, किसी कामवासना से भरकर अगर संभोग में न उतरी हो, वरन जीसस की आत्मा को जन्म देने के लिए ही अपने शरीर की प्रकृति को उसने आज्ञा दी हो, तो वह क्वांरी है।

और आपसे मैं कहूं कि आप जब किसी बच्चे को जन्म देते हैं, तब भी आपको पता नहीं होता कि उस बच्चे की आत्मा आपके चारों तरफ मंडरा रही है और आपको प्रेरित कर रही है कि आप उसे जन्म दें। लेकिन आप बेहोश हैं। उसके लिए प्रकृति आपको धक्के दिलाती है और बच्चे का जन्म करवाती है।

लेकिन कामवासना जिस दिन धर्म से रूपांतरित होती है, उस दिन आप सचेत रूप से एक आत्मा से बात कर पाते हैं, जो आपके द्वारा जन्म लेना चाहती है। और अगर आप जन्म देना चाहते हैं, तो आप अपने शरीर को आज्ञा देते हैं कि वह वासना में उतरे, वह काम-कृत्य में उतरे। लेकिन यह आज्ञा होती है। और इसलिए इसमें बुनियादी फर्क है।

जब आप कामवासना में उतरते हैं, तो आप बेहोश होते हैं। और जब ऐसा व्यक्ति कभी कामवासना में उतरता है, तो बिलकुल होश में होता है। वह अपने शरीर का उपयोग एक उपकरण, एक यंत्र की भांति कर रहा होता है। मालिक होता है। शरीर उसका उपयोग नहीं कर रहा होता है।

तो कृष्ण कहते हैं, मैं कामवासना भी हूं, लेकिन उनकी, जो धर्म से भरे हैं।

जीवन ने बहुत-से सत्य खोज लिए थे, जो धीरे-धीरे बार-बार खो जाते हैं, उनमें से एक सत्य यह भी था। इस संदर्भ में एक बात आपको कहना चाहूंगा।

आज सारी पृथ्वी पर संतति निरोध का आंदोलन है। सब जगह, किसी भी तरह आने वाले बच्चों को रोकना है। लेकिन एक ही उपाय मालूम पड़ता है और वह यह कि हमारे शरीर में कुछ फर्क किया जाए। और कोई उपाय नहीं मालूम पड़ता। एक ही उपाय मालूम पड़ता है कि हमारे शरीर की ग्रंथियां काट डाली जाएं, या शरीर में ऐसे रासायनिक द्रव्य डाले जाएं, या ऐसा इंतजाम किया जाए, कि आने वाली आत्मा जो हमारे भीतर प्रवेश करती है, वह अवसर न पा सके और प्रवेश न कर पाए।

यह बड़ी असहाय स्थिति है। इससे अन्यथा नहीं हो सकता क्या? लेकिन आदमी को देखकर नहीं कहा जा सकता है कि हो सकता है। दूसरी बात भी हो सकती है।

कृष्ण के इस सूत्र से वह बात दूसरी निकलती है। हम व्यक्तियों को इतना सचेतन बना सकते हैं--शरीर को बदलकर नहीं, उनकी चेतना को बदलकर--कि जब कोई आत्मा उनसे निवेदन करे कि वे जन्म देने वाले बनें, तो वे इनकार कर सकें; या जरूरत हो, तो जन्म दे सकें।

इस संबंध में मैं आपसे यह भी कहना चाहता हूं कि हजारों वर्ष तक भारत ने इसका प्रयोग किया है। इस बात के सैकड़ों प्रमाण हैं। इस बात का प्रयोग किया गया है। इस प्रयोग की पूरी की पूरी साइंस विकसित की गई थी।

जैसे कि आपने अगर महावीर या बुद्ध का जीवन पढ़ा हो, तो इस मुल्क ने एक पूरा का पूरा ड्रीम एनालिसिस, एक स्वप्न-विज्ञान निर्मित किया था। फ्रायड ने तो अभी-अभी स्वप्न के लक्षणों को समझना शुरू किया है। वह भी समझ अभी बहुत बालपन की है। वह अभी बहुत गहरी नहीं है।

लेकिन जैन परंपरा कहती है कि जब तीर्थंकर किसी मां के गर्भ में प्रवेश करता है, तो इस-इस तरह के स्वप्न इस-इस समय पर उस मां को आने शुरू होते हैं। वह इस बात की खबर है कि तीर्थंकर की कोटि की आत्मा उस मां के गर्भ में प्रवेश करना चाहती है। वे स्वप्न सूचनाएं हैं। उन स्वप्नों से खबर मिलती है कि कोई एक विराट आत्मा मां के भीतर प्रवेश करना चाहती है। वे स्वप्न जो हैं, सिंबालिक मैसेजेस हैं।

और यह बड़े मजे की बात है कि जैनों के चौबीस तीर्थंकर बहुत लंबे फासले पर हुए; अंदाजन कम से कम दस हजार साल का फासला--कम से कम; इससे ज्यादा हो सकता है--लेकिन उनकी माताओं को आने वाले स्वप्नों का क्रम एक है। वे स्वप्न सूचक हैं। वे इस बात की खबर दे रहे हैं कि इनकार मत कर देना। क्योंकि जो व्यक्ति पैदा होने वाला है, वह तुम्हें सिर्फ मार्ग बना रहा है, लेकिन इस जगत के लिए बहुत काम का है, उसको इनकार मत कर देना। वह कोई साधारण आत्मा नहीं, जो तुमसे आ रही है।

और बुद्ध के मामले में तो यह भी जाहिर था कि बुद्ध जिससे भी जन्म लेंगे, वह मां जन्म देकर तत्काल मर जाएगी; जी न सकेगी। क्योंकि बुद्ध जैसे व्यक्तित्व को जन्म देना!

हम जानते हैं, साधारण बच्चे को जन्म देने में कितनी प्रसव-पीड़ा होती है। साधारण बच्चे को जन्म देने में कितनी प्रसव-पीड़ा होती है। लेकिन शरीर को ही पीड़ा होती है। बुद्ध जैसे व्यक्ति को जन्म देने में आत्मा तक प्रसव-पीड़ा का प्रवेश होता है। वह कोई छोटी घटना नहीं है। एक बहुत महान घटना, एक विराट घटना घट रही है शरीर के भीतर।

तो यह जाहिर थी बात कि बुद्ध की मां जन्म देने के बाद बचेगी नहीं। फिर भी बुद्ध की मां राजी थी। क्योंकि बुद्ध जैसा व्यक्ति पैदा होता है, यह सौभाग्य छोड़ने जैसा नहीं है। और कहा जाता है कि देवताओं ने बुद्ध की मां को न मालूम कितनी-कितनी तरह से राजी किया। और कहा कि इनकार मत कर देना। क्योंकि जो व्यक्ति आ रहा है, वह करोड़ों के जीवन को प्रकाशमान कर देगा। उसके लिए इतना कष्ट झेलने की तैयारी रखना।

बुद्ध ने घोषणा की है कि दो हजार साल बाद मैं पुनः एक नए रूप में, मैत्रेय के रूप में पृथ्वी पर उतरूंगा। दो हजार साल पूरे हो गए, लेकिन मैत्रेय को ठीक गर्भ नहीं मिल पा रहा है। इसलिए एक अड़चन खड़ी हो गई है। इसलिए जो लोग जीवन की गहराइयों से संबंधित हैं, उनकी इस वक्त सबसे बड़ी बेचैनी यही है कि कोई मां मैत्रेय को ग्रहण करने के लिए तैयार हो जाए। लेकिन कोई मां पृथ्वी पर दिखाई नहीं पड़ती है।

बुद्ध का वचन खाली न जाए, इसलिए और तरह के प्रयोग भी किए गए। वे भी असफल हो गए। कोई गर्भ देने वाली मां नहीं मिलती है, तो कोशिश यह की गई कि किसी व्यक्ति के शरीर में, जीवित व्यक्ति के शरीर में ही बुद्ध की आत्मा को प्रवेश करा दिया जाए। और एक ही शरीर से दोनों आत्माएं काम कर लें। यह आत्मा जो मौजूद है, सिकुड़ जाए और उस आत्मा को जगह दे दे। वे प्रयोग भी सफल नहीं हो सके। कृष्णमूर्ति के साथ भी वही प्रयोग किया गया था; वह सफल नहीं हो सका।

एक और गहरे तल पर गर्भ का विज्ञान सोचा, समझा और पहचाना गया था। कृष्ण उसी की बात कर रहे हैं। वे कह रहे हैं कि जिस दिन धर्म से भरा हुआ होता है चित्त, उस दिन काम की वासना भी मैं ही हूं।

प्रश्न:
भगवान श्री, बुद्धिमानों में बुद्धि और संपूर्ण भूतों का सनातन कारण, इसे भी स्पष्ट करने की कृपा करें।
संपूर्ण भूतों का सनातन कारण!

कारण दो तरह के होते हैं। एक तो, जिन्हें हम कारण कहते हैं। हम कहते हैं, पानी भाप बन गया। कारण? क्योंकि गर्मी मिल गई। हम कहते हैं, आदमी मर गया। क्यों? कारण? क्योंकि हृदय की धड़कन बंद हो गई। ये कारण नहीं हैं वस्तुतः। ये तो अस्थायी, ऊपर, सतह पर घटने वाली घटनाओं का तारतम्य हैं। यह वैसा ही झूठ है, जैसे कि कोई आदमी दो घड़ियां अपने घर में लगा ले...।

डेविड ह्यूम, एक अंग्रेज विचारक, इसकी बात हमेशा किया करता था। क्योंकि वह कार्य-कारण के सिद्धांत के बड? खिलाफ था। वह कहता था कि तुम कहते हो, पानी गर्म करने से भाप बन गया, मेरी समझ में नहीं आता! मैंने तुम्हें गर्म करते भी देखा, आग जलाते भी देखा, पानी को भाप बनते भी देखा, लेकिन मैं यह अभी तक नहीं देख पाया कि गर्म करने से पानी कब भाप बना! गर्मी देखी, आग देखी, भाप बनते देखा पानी। लेकिन पानी गर्मी से कब भाप बना, यह मैंने देखा नहीं अभी तक।

आप कहते हैं, हृदय की धड़कन बंद हो गई, इसलिए यह आदमी मर गया। ह्यूम कहेगा कि यह भी हमने देखा कि धड़कन बंद हो गई, और यह भी हमने देखा कि आदमी मर गया। लेकिन फिर भी मैंने वह घटना नहीं देखी कि हृदय की धड़कन बंद होने से मर गया। उन दोनों के बीच का संबंध मैंने नहीं देखा।

ह्यूम कहा करता था कि एक आदमी अपने घर में दो घड़ियां बना सकता है। ऐसी घड़ियां बना सकता है कि एक घड़ी में बारह बजे और दूसरी घड़ी में बारह का घंटा बजे। इसमें कोई कठिनाई तो नहीं है। एक घड़ी में सात बजे, दूसरे में सात का घंटा बजे। एक में आठ बजे और दूसरे में आठ का घंटा बजे। फिर कोई आदमी, जो घड़ी को न जानता हो, पीछे से वह उस घर में आ जाए, तो वह सोचेगा कि जब इस घड़ी में सात बजते हैं, तो सात बजने के कारण उस घड़ी में सात का घंटा बजता है। जब कि उनमें कोई भी संबंध नहीं है ऊपर से। हम जिनको कारण कहते हैं, वे ऐसे ही ऊपर से जुड़ी हुई घटनाएं हैं।

इसलिए कृष्ण ने इतना ही नहीं कहा कि सब भूतों का कारण; कहा, सनातन कारण--दि अल्टिमेट काज--आखिरी, प्रथम, अंतिम, अनादि।

अगर हम एक-एक कारण को खोजने जाएं, तो जगत में अनंत कारण हैं। हर चीज के अनंत कारण हैं। और एक चीज भी एक कारण से नहीं होती, मल्टी-काजल होती है, अनेक कारण से होती है।

आप सड़क पर जा रहे हैं और एक कार आपसे आकर टकरा गई, तो आप जानते हैं, कितने कारण होते हैं? हजार कारण होते हैं।

आप रास्ते पर जिस भांति जा रहे थे, अगर घर से पत्नी से लड़कर न चले होते, तो शायद इस भांति न चल रहे होते, जैसे चल रहे थे। लेकिन पत्नी आपसे न लड़ती, अगर बच्चा स्कूल से वक्त पर घर आ गया होता। बच्चा स्कूल से वक्त पर घर आ सकता था, लेकिन रास्ते में मित्र मिल गए।

वह जो आदमी चलाकर आ रहा है कार और आपसे टकरा गया है, वह भी शायद न टकराता, लेकिन किसी ने उसे शराब पिला दी है। मित्रों ने आग्रह किया। मित्र आग्रह करने से नहीं बच सकते थे, क्योंकि यह मित्र पहले उनको कई दफा आग्रह करके पिला चुका था।

और आप पीछे हटते चले जाएं, तो शायद सड़क पर जो आज आपको एक कार आकर टकराकर लग गई है, इसके पीछे आपको उतने ही कारण मिल जाएंगे, जितने जगत में हो सकते हैं, सब। इस छोटी-सी घटना के पीछे यह पूरा जगत कारणों का एक जाल बिछाकर खड़ा होगा। अगर आप थोड़ा भीतर उतरते जाएं, उतरते जाएं, तो आप घबड़ा जाएंगे, और आप कहेंगे कि बस, अब खोज करनी बेकार है। इस खोज का कहीं अंत नहीं हो सकता। यह तो कारणों का जाल है।

कृष्ण इन कारणों की बात नहीं कर रहे। वे कह रहे हैं, एक कारण, सनातन कारण। सनातन कारण का अर्थ होता है, यह सब मुझसे निकला और मुझमें लीन होगा। यह सब मुझसे आया और मुझमें वापस लौट जाएगा–सब। सनातन कारण का अर्थ होता है, मेरे बिना कुछ भी नहीं हो सकता है। अगर मैं नहीं हूं, तो कुछ भी नहीं है। मैं हूं, तो सब है। मेरे हटते ही सब शून्य हो जाएगा। मेरी नजर फिरी कि सब शून्य हो जाएगा। सब मेरा खेल है। सनातन कारण का अर्थ होता है, जिससे सब चीजें आती हैं, और जिसमें वापस लौट जाती हैं। बीच में जो कारणों का जाल है, उससे कोई संबंध नहीं है।

हम सब ऊपर के कारणों को देखते हैं, इसलिए मुश्किल में पड़ते हैं। अर्जुन भी ऊपर के कारण देखने वाला है। वह कह रहा है, मैं इनको छुरा मारूंगा, तो ये मर जाएंगे।

कृष्ण कहते हैं, तू फिक्र मत कर, क्योंकि मैं जानता हूं। ये मेरी वजह से जी रहे हैं। और जब तक मैं जी रहा हूं, ये कोई मर सकते नहीं। तू बेफिक्री से युद्ध कर। मैं तुझे सनातन कारण कहता हूं। तेरे छुरे मारने से ये मरने वाले नहीं हैं; और न तेरे छुरे के बचने से ये बचने वाले हैं। इनका होना और न होना मुझ पर निर्भर है, मैं सनातन कारण हूं।

अगर यह बात ठीक से समझ ली जाए कि परमात्मा सभी चीजों का सनातन कारण है, तो आप कर्ता बनने के मोह से गिर जाएंगे। वह कर्ता बनने का मोह फिर न रह जाएगा। आप कहेंगे, ठीक है। जो हो रहा है, ठीक है। जो हो जाए, ठीक है। जो न हो, ठीक है। और जिस दिन आप इतनी सरलता से सब स्वीकार कर लेंगे, उस दिन आपके भीतर अहंकार को खड़े होने की कोई जगह न रह जाएगी।

परमात्मा सनातन कारण है, ऐसा बोध आपके कर्तापन को गिरा जाएगा, मिटा जाएगा, धूल में डाल जाएगा। और कर्तापन का बोध गिर जाए, तो ही हम परमात्मा की दिशा में एक कदम ऊपर उठते हैं। और ध्यान रहे, आलसी हम ऐसे हैं कि परमात्मा अगर कहे कि एक कदम जरा-सा उठा लो, तो भी हम कदम नहीं उठाते।

सुना है मैंने, एक गांव में एक आदमी से गांव परेशान हो गया था। परेशान इसलिए हो गया था कि न तो वह कमाता, न कुछ पैदा करता। फिर गांव यह भी नहीं देख सकता था कि वह भूखा मरता रहे। तो गांव को उसे देना पड़ता था। वह अपने वृक्ष के नीचे, या अपने झोपड़े में पड़ा रहता था। वृक्ष के नीचे भी मुहल्ले के लोग उसे ले आते थे, तो आ जाता था। और वृक्ष के पास से, बाहर से उसको झोपड़े के भीतर लोग ले जाते थे, तो चला जाता था। अगर किसी दिन पड़ोस के लोग उसको झोपड़े के बाहर न निकालते, तो वह झोपड़े के भीतर से ही नाराजगियां जाहिर करता था।

फिर गांव परेशान हो गया, और गांव ने सोचा कि इस आदमी को कब तक ढोएंगे? फिर अकाल पड़ा और गांव ने सोचा कि अब तो इसको जिंदा या मुर्दा दफना देना चाहिए। वैसे इसके जीने से कोई फर्क भी नहीं पड़ता। पर उन्होंने सोचा, क्या वह राजी होगा? उन्होंने कहा, चलकर हम देख लें।

वे गांव के लोग उसके पास गए और उससे पूछा कि हमने यह तय किया है कि हम तुम्हें दफना दें। क्योंकि तुम्हारे होने, न होने से कोई फर्क नहीं पड़ता। एक दिन तो दफनाना ही पड़ेगा, जब तुम मरोगे। लेकिन हमारे लिए तुम मरे ही जैसे हो। और तुम्हारे लिए भी, जीते हुए हो, ऐसा हमारा अनुभव नहीं। क्या तुम राजी हो?

उसने कहा, मैं राजी हो सकता हूं। लेकिन मरघट तक ले कौन चलेगा? मुझे कोई दिक्कत नहीं है। बाकी ले जाना तुम्हीं को पड़ेगा। उन्होंने कहा, हमने तो यह सोचा भी नहीं था कि तुम इतने जल्दी राजी हो जाओगे!

उन्होंने अर्थी बनाई। उस आदमी को अर्थी पर रखा। वे उसको लेकर चले। वह आदमी अर्थी में लेट गया। थोड़े वे भी चिंतित हुए। इतना भरोसा न था उसका।

गांव में कोई परदेशी आया हुआ था। उसे यह खबर मिली कि गांव में कौन-सी घटना घट रही है कि जिंदा आदमी को लोग ले जा रहे हैं दफनाने! उसने बीच रास्ते पर आकर रोका कि भाइयो, यह क्या कर रहे हो? उन्होंने कहा, हम परेशान हो गए हैं। अब और कोई उपाय नहीं बचा। हम इसे जिंदा ही दफनाने जा रहे हैं। हमारे पास न दाना है इसको देने को, न अनाज है। उस आदमी ने कहा, रुको। अगर तुम मेरी मानो, तो मैं सालभर के लिए अनाज इसको दिए देता हूं। तुम इसे छोड़ दो।

इसके पहले कि गांव के लोग कुछ बोलते, अर्थी से आवाज आई कि पहले बात साफ हो जानी चाहिए। अनाज साफ-सुथरा है न? नहीं तो पीछे कौन झंझट करेगा! पहले कुछ निर्णय करें गांव के लोग, अर्थी से आवाज आई, साफ कर लेना। अनाज साफ-सुथरा है? एक, और दूसरी बात कि ये लोग मुझे यहीं छोड़कर चले जाएंगे, तो मुझे घर कौन पहुंचाएगा?

जिस आदमी के बाबत यह कहानी है, वह एक सूफी फकीर था। वह कोई साधारण आदमी नहीं था। जब उसकी अर्थी नीचे उतारी और अजनबी आदमी ने जब उसकी यह बात सुनी, तो उसने सोचा कि आदमी तो असाधारण है, उसके दर्शन करने चाहिए। उसको देखा तो उस अजनबी ने कहा, हैरान करते हो तुम मुझे!

तो उस आदमी ने कहा कि तुम थोड़ा मेरी आंखों में झांककर समझ पा रहे हो, इसलिए मैं तुमसे राज की बात कहता हूं। ये सारे लोग समझते हैं कि मैं आलसी हूं। लेकिन मैं उस यात्रा पर निकल गया, जो कठिनतम है। और ये सारे लोग समझते हैं कि बड़े श्रमी हैं। लेकिन ये जो भी कर रहे हैं, दो कौड़ी का कर रहे हैं। तुम सोचते होगे कि मैं एक कदम घर जाने को राजी नहीं। मैं तुमसे कहता हूं, ये भी कोई अपने असली घर जाने को एक कदम राजी नहीं। और जिस घर तुम मुझे ले जा रहे हो, वह मेरा कोई असली घर नहीं है। इसलिए मैं कब्र में भी जाने को राजी हूं। क्योंकि मेरे लिए कब्र और वह घर बराबर है। और जिस शरीर को बचाने की तुम बात कर रहे हो, इसलिए मैंने पूछा कि अनाज साफ-सुथरा है न! क्योंकि इसको बचाने के लिए इतनी मेहनत करने की मैं कोई जरूरत नहीं समझता। लेकिन मैं एक और घर को बचाने में लगा हूं। और मैं तुमसे कहता हूं कि तुम सब अलाल हो। और तुम सब समझते हो कि मैं अलाल हूं। और ध्यान रखो, तुम मुझे जिंदा दफना रहे हो। जब तुम दफना दिए जाओगे, तब मैं तुम्हें बताऊंगा। तब तुम मुझसे मिलना। और तब मैं तुम्हें बताऊंगा कि असली आलसी कौन था।

पता नहीं, उस गांव के लोग समझे या नहीं समझे, लेकिन आपसे मैं कहता हूं, एक कदम भी हम उस दिशा में उठाने की हिम्मत नहीं करते हैं।

तो कृष्ण कह रहे हैं, सनातन हूं मैं कारण। इसीलिए कह रहे हैं ताकि आपको बस एक ही कदम उठाने को बाकी रह जाए। वह एक कदम, कि आप कर्ता नहीं हैं, परमात्मा कारण है। अगर आप सब छोड़ पाएं उस सनातन कारण पर...।

लेकिन हम सनातन कारण पर नहीं छोड़ते। किसी आदमी ने गाली दे दी, तो हम क्रोध से भर जाते हैं। जरा पैर में चोट लग गई, तो हम परेशान हो जाते हैं। अगर हम सनातन कारण को देख पाएं--जो उस पत्थर के पीछे भी है, और मेरे पीछे भी; और जो गाली देने वाले के भी पीछे है, और मेरे पीछे भी; और कांटे के पीछे है, और मेरे दर्द के पीछे भी; अगर हम उस सनातन कारण को देख पाएं, जो सुख के पीछे भी है और दुख के पीछे भी; जन्म में भी और मृत्यु में भी; सम्मान में और अपमान में भी--अगर वह सनातन हमें दिख जाए, तो हमारी उत्तेजना का जगत तत्काल शांत हो जाए। फिर उत्तेजना का कोई कारण नहीं है।

उत्तेजना के सब कारण तात्कालिक हैं। जिसे अनुत्तेजना के जगत में प्रवेश करना है शांति के, उसे सनातन कारण को स्मरण कर लेना चाहिए।

और कृष्ण कहते हैं, बुद्धिमानों की मैं बुद्धि।

बुद्धिमानों की बुद्धि! सभी बुद्धिमानों में बुद्धि नहीं होती। अधिक बुद्धिमानों में तो केवल संग्रह होता है सूचनाओं का, शास्त्रों का। जरूरी नहीं कि बुद्धिमान में बुद्धि भी हो।

एक मित्र को कल ही पत्र लिख रहा था। तो उसे मैंने एक कहानी लिखी है, वह मैं आपसे कहूं।

उसे मैंने लिखा है, एक सम्राट का बेटा था, जो मूढ़ था। और सम्राट परेशान हो गया। बुद्धिमानों से सलाह ली, तो उन्होंने कहा कि यहां तो कोई उपाय नहीं है। दूर देश किसी और राजधानी में एक विश्वविद्यालय है, वहां भेजो। भेज दिया गया।

वर्षों की शिक्षा के बाद बेटे ने खबर भेजी कि अब मैं बिलकुल निष्णात हो गया, दीक्षित हो गया। सब शिक्षा मैंने पा ली। अब मुझे वापस लौटने की आज्ञा दे दी जाए। सम्राट ने उसे वापस बुला लिया। सम्राट भी खुश हुआ। वह सभी शास्त्रों का ज्ञाता होकर आ गया। वह ज्योतिष भी जानता है। वह भविष्यवाणी भी कर सकता है। वह लोगों के पीछे अतीत में भी देख सकता है। उन दिनों जो-जो विज्ञान था, वह सब जानकर आ गया।

सम्राट बहुत खुश हुआ। उसने देश के सभी बुद्धिमानों को स्वागत के लिए बुलाया। अपने बेटे के स्वागत का समारंभ किया। बड़े-बड़े बुद्धिमान आए। एक बूढ़ा भी आया। उस बूढ़े ने उस बेटे से कई सवाल पूछे। पूछा कि तुमने क्या-क्या अध्ययन किया? तो वह करिक्युलम लाया था अपने विश्वविद्यालय का। उसने निशान लगा रखे थे कि मैंने क्या-क्या पढ़ा। उसने सब बताया।

परीक्षा के लिए बूढ़े ने--क्योंकि उसने कहा कि मैं अदृश्य चीजों को भी देख पाता हूं, उनका भी अंदाज लगा पाता हूं, उनका भी अनुमान कर पाता हूं--उस बूढ़े ने बातचीत करते-करते अपने हाथ का छल्ला निकालकर अपनी मुट्ठी में अंदर कर लिया। बंद मुट्ठी उस लड़के के सामने की और कहा कि मुझे बताओ, इस मुट्ठी के भीतर क्या है?

उस लड़के ने एक सेकेंड आंख बंद की और कहा कि एक ऐसी चीज है जो गोल है और जिसमें बीच में छेद है। बूढ़ा हैरान हुआ। बूढ़े ने समझा कि लड़का सचमुच ही बुद्धिमान होकर लौट आया है। सब शास्त्र उसने जान लिए हैं। फिर भी उसने एक सवाल और पूछा कि कृपा करके उस चीज का नाम भी तो बताओ!

तो उस युवक ने आंखें बंद कीं, बहुत देर तक नहीं खोलीं। और फिर कहा कि मैंने जो शास्त्रों का अध्ययन किया, उसमें नाम बताने का कहीं भी कोई आधार नहीं मिलता है। फिर भी मैं अपने कामन सेंस से, अपनी बुद्धि से कहता हूं कि आपके हाथ में गाड़ी का चाक होना चाहिए।

वह जो बेचारा पहले बताया था, वह शास्त्र था। अब जो बता रहा है, वह खुद है!

उस बुद्धिमान ने अपने मन में ही सोचा, उसने अपने मन में ही कहा कि यू कैन एजुकेट ए फूल, बट यू कैन नाट मेक हिम वाइज--मूढ़ को भी शिक्षित किया जा सकता है, लेकिन बुद्धिमान नहीं बनाया जा सकता।

सभी बुद्धिमानों में बुद्धि होती है, इस भ्रम में मत पड़ना। अधिक बुद्धिमानों में बुद्धि का सिर्फ धोखा होता है; उधार होता है।

कृष्ण कहते हैं, बुद्धिमानों में बुद्धि!

यह जो बुद्धि है, जिसके लिए कृष्ण जोर देते हैं, जिसे विजडम कहते हैं, प्रज्ञा। जरूरी नहीं है कि बुद्धिमान बहुत कुछ जानता हो। यह जरूरी नहीं है। क्योंकि बहुत कुछ जानने वाला जरूरी रूप से बुद्धिमान नहीं होता। लेकिन बुद्धिमान जो जानता है, वह उसके जीवन को एक फूल की तरह खिला जाता है।

एक और इस तरह की कहानी आपसे कहूं, जो खयाल में आ जाए। एक वृद्ध बुद्धिमान के संबंध में बड़ी खबर थी। एक विश्वविद्यालय के दो युवकों ने सोचा--पिछली कहानी में विश्वविद्यालय के युवक की परीक्षा बूढ़े ने की; इस कहानी में बूढ़े की परीक्षा दो विश्वविद्यालय के युवकों ने की। उन्होंने सुना है कि उस आदमी के पास जाओ, तो वह कुछ भी बता देता है। आपका नाम भी बता देता है। जैसे मुट्ठी में बंद चीज को बूढ़े ने जानना चाहा था, खबर थी कि वह बूढ़ा भी बता देता है; वह बड़ा बुद्धिमान है।

तो वे दोनों युवक एक कबूतर को अपने कोट के भीतर छिपाकर आए हैं। और उस बूढ़े के सामने आकर कहा, क्या आप बता सकते हैं कि हमारे कोट के भीतर क्या है? उसने कहा, मैं बता सकता हूं। वे तैयारी करके आए थे। हाथ भीतर रखा था। उन्होंने पूछा, क्या आप बता सकते हैं कि वह जिंदा है या मुर्दा?

उन्होंने सोचा था कि अगर वह कहे जिंदा, तो अंदर ही गर्दन मरोड़कर बाहर निकालना है। अगर वह कहे मुर्दा, तो जिंदा बाहर निकाल देना है। गर्दन पर हाथ था मजबूत।

बूढ़े ने एक क्षण आंख बंद की और कहा, इट डिपेंड्स। उसने कहा कि यह कई बातों पर निर्भर करेगा कि वह जिंदा है कि मुर्दा। उन्होंने कहा, क्या मतलब? उस बूढ़े ने कहा कि अगर मैं कहूं, वह जिंदा है, तो गर्दन दबाई जा सकती है। अगर मैं कहूं, वह मुर्दा है, तो उसे ऐसे ही बाहर निकाला जा सकता है। लेकिन तुम्हारी मैं फिक्र छोड़ता हूं; कबूतर की फिक्र करता हूं। मैं कहता हूं, वह मुर्दा है। बाहर निकालो। क्योंकि कबूतर न मर जाए नाहक। बूढ़े ने कहा कि मेरी तुम फिक्र छोड़ो। कबूतर की फिक्र करता हूं। मैं कहता हूं, वह मुर्दा है। बाहर निकालो।

यह विजडम है। यह बहुत और बात है। यह बुद्धि और बात है। यह केवल जानकारी नहीं है; यह जीवन के रहस्य का बोध है। यह केवल संग्रह नहीं है ऊपर से; यह भीतर से आया हुआ आविर्भाव है। यह अंतःजागरण है, अंतःस्फूर्ति है। यह कुछ ऐसा नहीं है कि कल जो मैंने जाना था, उस पर निर्भर है। बल्कि आज भी मेरी चेतना जाग रही है और देख रही है; और जो कहेगी, वह मैं जानूंगा।

बुद्धिमान, तथाकथित बुद्धिमान, अतीत के ज्ञान पर निर्भर होते हैं--दूसरों के, खुद के। वस्तुतः बुद्धि सदा सजग वर्तमान में जीती है--अभी, जागरूक, जैसे दर्पण। जो सामने आ जाता है, दिखाई पड़ जाता है।

कृष्ण कहते हैं, बुद्धिमानों की बुद्धि हूं मैं।

बुद्धिमत्ता नहीं, बुद्धिमानी नहीं, नालेज नहीं, ज्ञान नहीं--बुद्धि, इंटेलिजेंस। इंटलेक्ट नहीं, इंटेलिजेंस; सिर्फ बुद्धि। हम जो-जो जानकारियां भर लेते हैं...। फर्क समझ लें, थोड़ा बारीक है।

एक कमरा है आपके पास। उसमें आप फर्नीचर भर लेते हैं। कभी आपने खयाल किया कि जितना फर्नीचर भरते जाते हैं, कमरा उतना छोटा होता जाता है! क्योंकि कमरे का मतलब ही जगह है। अंग्रेजी का शब्द अच्छा है, रूम। उसका मतलब होता है, जगह, स्थान। तो जितना आप फर्नीचर भरते जाते हैं, कमरा कम होता चला जाता है। इसलिए बड़े आदमियों के कमरे दिखाई ही बड़े पड़ते हैं, होते गरीबों से भी छोटे हैं। चीजें तो बढ़ती जाती हैं।

मैं अभी एक बहुत अमीर के घर में ठहरा हुआ था। तो उन्होंने कमरे में इतनी चीजें भर दी हैं कि वे उसमें कैसे अंदर आते-जाते हैं, मुझे कुछ पता नहीं। मुझे उसमें प्रवेश कराने लगे, मैंने कहा कि आप मुझे बाहर ही रहने दो। इतनी चीजें हैं! यह रूम तो है ही नहीं। यह तो कबाड़खाना है। जो भी आता है, खरीदकर ले आते हैं और रखते चले जाते हैं! पैसा पास है। पैसे के साथ बुद्धि जरूरी रूप से आती हो, ऐसा नहीं है। तो जितने माडल हो सकते हैं फर्नीचर के, सब उसी कमरे में इकट्ठे हैं!

कमरे में आप जब फर्नीचर भर देते हैं, तो कमरा छोटा हो जाता है। बुद्धि में जितनी आप सूचनाएं भर देते हैं, बुद्धि छोटी हो जाती है। बुद्धि तो रूम है, बुद्धि तो एक स्पेस है, खाली जगह है।

बुद्धिमान वह है, जो अपनी बुद्धि को सदा खाली, और ताजी, और सजग रखता है। भर नहीं लेता सिर्फ। भरकर तो सब बासा हो जाता है। कुछ नहीं भरता; खाली रखता है; ताजी रखता है; खुली रखता है। सूचनाएं जितनी इकट्ठी हो जाती हैं भीतर, उतनी ही बुद्धि की कम जरूरत पड़ने लगती है। क्योंकि आप सूचनाओं से ही काम चला लेते हैं।

कृष्ण कहते हैं, बुद्धिमानों में मैं बुद्धि हूं।

वह खाली जगह, वह स्पेस। उपनिषदों में जिसे इनर स्पेस आफ दि हार्ट कहा है–हृदय की अंतर्जगह, अंतर्गुहा। हृदय में एक जगह है, जो बिलकुल खाली है। और जो व्यक्ति उस खाली जगह में खड़ा हो जाए, वह परमात्मा के मंदिर में प्रवेश कर जाता है।

तो यहां बुद्धि से मतलब इंटलेक्ट का नहीं है। यहां बुद्धि से मतलब चालाकी का नहीं है। यहां बुद्धि से मतलब दो और दो चार जोड़ लेने का नहीं है। यहां बुद्धि से मतलब है, उस भीतर के अंतर-आकाश में खड़े हो जाने का, जो बिलकुल खाली है, शून्य है। उस शून्य में जो खड़ा है, वही बुद्धिमान है। क्योंकि उस शून्य में खड़े होकर ही सत्य का दर्शन उपलब्ध होता है।

कृष्ण कहते हैं, बुद्धिमानों में मैं बुद्धि हूं।

प्रश्न:
भगवान श्री, एक छोटा-सा प्रश्न है। कल आपने दिव्य व्यक्तित्व में अर्थात योगी में मैं तेजस हूं, इसकी चर्चा की। पिछले श्लोक में कहे गए, मैं तपस्वियों में तप हूं, इसका भी अर्थ स्पष्ट करने की कृपा करें।
मैं तपस्वियों में तप हूं। तपश्चर्या नहीं। शब्द तो दोनों एक से हैं। लेकिन तपश्चर्या का जोर होता है कृत्य पर, एक्ट पर। और तप का जोर होता है आंतरिक उपलब्धि पर।

एक तपस्वी है, तपश्चर्या कर रहा है। जो वह तपश्चर्या करता है, वह तो बाहरी कृत्य है, वह तो बाह्य कृत्य है–कि उपवास करता है, कि प्राणायाम करता है, कि आसन करता है, कि धूप में खड़ा होता है, कि शीत में खड़ा होता है–वह तो बाहरी कृत्य है, एक्ट है। और यह भी हो सकता है कि वह यह सब करता रहे, और भीतर कोई भी तप फलित न हो। क्योंकि यह कोई अज्ञानी भी कर सकता है, कोई अहंकारी भी कर सकता है, कोई एक्जीबिशनिस्ट, जिसको प्रदर्शन का शौक है, वह भी कर सकता है।

और अगर आप अपने तपश्चर्या करने वाले लोगों में खोजबीन करने जाएं, तो सौ में से नब्बे एक्जीबिशनिस्ट मिलेंगे, जो अपने प्रदर्शन को उत्सुक हैं। और जब भी प्रदर्शन करना हो, तो इस तरह के काम बहुत अच्छे होते हैं।

राबर्ट रिप्ले ने एक घटना लिखी है। कि रिप्ले युवक था, और प्रसिद्ध होना चाहता था। लेकिन प्रसिद्ध होने के लिए उसके पास कोई सीढ़ी न थी। न तो वह किसी मिनिस्टर का रिश्तेदार था; न किसी धनी का भाई-भतीजा था; न किसी यूनिवर्सिटी में प्रवेश के लिए पैसे थे उसके पास। उसके पास कुछ भी नहीं था; लेकिन प्रसिद्ध होना था।

तो उसने गांव के एक बहुत कुशल विज्ञापनदाता से जाकर पूछा कि मुझे प्रसिद्ध होना है, मैं क्या करूं? कोई ऐसी सरल तरकीब बताओ, क्योंकि मेरे पास कोई सहारा नहीं है, कोई सीढ़ी नहीं है, सीधा प्रसिद्ध हो जाऊं। उसने कहा, इसमें कौन-सी बड़ी बात है! तू इधर आ, मेरे पास आ। वह अंदर गया और एक उस्तरा उठाकर लाया। और उसने रिप्ले की आधी खोपड़ी के बाल छांट दिए। आधे बाल अलग कर दिए। रिप्ले ने कहा, यह आप क्या कर रहे हैं? उसने कहा, तू घबड़ा मत। दो दिन में तुझे प्रसिद्ध किए देता हूं। उसने कहा, लेकिन आप कर क्या रहे हैं?

आधे बाल उसने साफ कर दिए और आधी खोपड़ी पर लिख दिया राबर्ट रिप्ले! तेरा नाम, तू जा। पूरे गांव में घूम आ। पर उसने कहा, इसमें बड़ा डर लगता है। उसने कहा, डर मत। अगर तू इतना भी नहीं कर सकता, तो फिर अब मैं क्या करूं! तुझे मैं मिनिस्टर का भतीजा नहीं बना सकता। किसी धनपति से अचानक तेरा कोई रिश्ता जुड़वा नहीं सकता। यूनिवर्सिटी में दाखिला मैं करवा नहीं सकता। पर तू मेरी मान।

रिप्ले ने लिखा है कि पहले तो बड़ी हिम्मत जुटाई। फिर किसी तरह निकला। लेकिन सच, दो दिन में सब अखबारों में मेरे फोटो छप गए। और जहां से निकल जाता, वहां लोग काम-धंधा बंद करके बाहर आ जाते। और दो दिन में पूरे गांव में लोग मुझे जान गए। न केवल गांव में, बल्कि गांव के बाहर खबरें पहुंचने लगीं। राजधानी तक खबरें पहुंचने लगीं। और कुछ मैंने किया नहीं था, सिर्फ बाल काट लिए थे।

फिर रिप्ले ने कहा, फिर तो ट्रिक मेरे हाथ लग गई। फिर तो मैं जिंदगीभर ऐसे ही काम करता रहा।

उसने पूरे अमेरिका की यात्रा उलटे चलकर की। सारी दुनिया में खबर हुई और कहा गया कि इतिहास का पहला मनुष्य है, जिसने अमेरिका की यात्रा उलटे चलकर की। एक आईना बांध लिया सामने और चल पड़ा! जुलूस चलता था साथ में।

रिप्ले ने लिखा है, लेकिन मेरी जिंदगी बेकार में गई; भीड़ को इकट्ठा करने में गई। एक्जीबिशनिस्ट माइंड! प्रदर्शनकारी मन!

तो तपश्चर्या बहुत कुछ तो प्रदर्शन होती है। अगर आप किसी तपस्वी की बहुत पूजा वगैरह करते हों, तो जरा पूजा वगैरह पंद्रह दिन के लिए हालीडे पर छोड़ दें, बंद कर दें। पंद्रह दिन में तपस्वी भाग जाएगा। क्योंकि जब देखेगा, कोई पूछता नहीं, कोई फिक्र नहीं करता, कोई पैर नहीं दबाता, कोई फूल नहीं चढ़ाता, कोई कुछ नहीं करता। अब क्या मतलब है! भागो इस गांव से; कहीं और जाओ।

तपश्चर्या तो अहंकार की तृप्ति भी हो सकती है। तप क्या है? तप तो सारभूत है। कृत्य नहीं है, आत्मा है। तप का अर्थ है, जब कोई व्यक्ति दुख को दुख नहीं मानता। और ध्यान रखना, दुख को दुख न मानना बहुत बड़ा तप नहीं है। दूसरी बात आपसे कहता हूं, जब कोई व्यक्ति सुख को सुख नहीं मानता है।

दुख को दुख न मानना बहुत बड़ी बात नहीं है, क्योंकि हम सभी चाहते हैं कि दुख दुख न हो। लेकिन सुख को भी जो सुख नहीं मानता। दुख को दुख नहीं मानता; सम्मान को सम्मान नहीं मानता; अपमान को अपमान नहीं मानता; जीवन को जीवन नहीं मानता; मृत्यु को मृत्यु नहीं मानता–तब उसके भीतर एक नए जीवन का संचार शुरू होता है। उसके भीतर तप नाम का तत्व पैदा होता है। उसके भीतर क्रिस्टलाइजेशन–गुरजिएफ ने जो शब्द प्रयोग किया है, क्रिस्टलाइजेशन–कि वह क्रिस्टल बन जाता है उसके भीतर एक।

तप का ठीक अर्थ वही है। तप का अर्थ है, वह व्यक्ति पहली दफे भीतर आत्मवान बनता है। जब तक दुख आपको हिला देता है, आप दुख से कमजोर हैं। सुख हिला देता है, सुख से कमजोर हैं। कोई एक फूल की माला गले में डाल देता है और आप कंप जाते हैं, तो आप फूल की माला से कम कीमती हैं। आपकी कीमत बहुत ज्यादा नहीं है।

मैंने सुना है कि एक करोड़पति एक तालाब में गिर गया था। अनेक लोग खड़े होकर देख रहे थे। एक अजनबी आदमी भी भीड़ में था, वह चिल्लाया कि तुम खड़े होकर क्यों देख रहे हो? आदमी मर रहा है! उसे कुछ पता नहीं था कि वह आदमी कौन है। वह बेचारा कूद पड़ा। उस करोड़पति को, बड़ी मुश्किल से, अपनी जान को जोखिम में डालकर, बचाकर बाहर लाया। जब वह होश में आया धनपति, तो उसने कहा, बहुत-बहुत धन्यवाद। खीसे में उसने हाथ डालकर कुछ खोजा, फिर एक नया पैसा निकालकर उस आदमी को भेंट किया।

सारी भीड़ चिल्लाने लगी कि इसीलिए तो हममें से कोई कूदकर नहीं बचा रहा था। आदमी देखते हैं! एक नया पैसा! उस आदमी ने जिंदगी, जान लगा दी; जोखम में डाला अपने को; और यह एक पैसा उसको इनाम दे रहा है!

एक और आदमी, एक फकीर इस बीच उस भीड़ के पास आकर खड़ा हो गया था। उसने कहा, नाराज मत होओ। नो वन नोज दि वेल्यू आफ हिज लाइफ मोर दैन हिमसेल्फ, उसकी जिंदगी की कीमत उसके सिवाय और किसको ज्यादा मालूम हो सकती है! वह बिलकुल ठीक दे रहा है। एक नया पैसा! वह अपनी जिंदगी की कीमत ही चुका रहा है। और किसी की जिंदगी का कोई सवाल नहीं है। अगर मर जाता, तो एक नए पैसे का नुकसान हो रहा था दुनिया में। और तो कोई खास नुकसान नहीं था।

उस फकीर ने कहा, नाराज मत होओ। उसके सिवाय कोई भी नहीं जानता कि उसकी जिंदगी की असली कीमत कितनी है। वह ठीक आंक रहा है।

असल में हमारे भीतर हमारी कोई कीमत ही क्या है? असल में हम ही कहां हैं? बीइंग कहां है? हमारे भीतर आत्मा जैसी चीज कहां है?

गुरजिएफ जब कहता है क्रिस्टलाइज्ड, तो उसका मतलब है कि भीतर कुछ पैदा हुआ। और वह पैदा तभी होता है, जब सुख और दुख की संवेदनाएं छूती नहीं। वह पैदा तभी होता है, जब अनुकूल-प्रतिकूल बराबर हो जाता है। वह पैदा तभी होता है, जब द्वंद्वों के बीच में थिरता और समता आती है। समत्व ही तप है।

कठिन है। तपश्चर्या बहुत आसान है; तप बहुत कठिन है।

कृष्ण कहते हैं, तपस्वियों में तप।

वे अनेक-अनेक मार्गों से खबर दे रहे हैं कि मुझे तू कहीं से भी पहचान, और कहीं से भी खोज। बहुत हैं द्वार मेरे। बहुत हैं मार्ग। लेकिन अगर तू कहीं से भी दृश्य को छोड़कर अदृश्य में उतर सके–तपश्चर्या दृश्य है, तप अदृश्य है– अगर तू कहीं से भी दृश्य को छोड़कर अदृश्य में उतर सके; अगर कहीं से भी रूप को छोड़कर अरूप में; आकार को छोड़कर निराकार में; व्यर्थ को छोड़कर सारभूत में अगर तू जा सके कहीं से भी...।

तो सब तरफ से वे बात कर रहे हैं। वे कह रहे हैं, कहीं से भी तेरी समझ में आ जाए।

फिर देअर आर मोमेंट्स, कुछ क्षण होते हैं जीवन में, जब समझ पकड़ में आती है। सदगुरु जो है, उसे निरंतर खयाल रखना पड़ता है कि कभी-कभी ऐसा क्षण आता है।

क्योंकि हमारा चित्त फ्लक्चुएशन में है। हमारा चित्त कभी एक जगह नहीं है। कभी नीचे खाई छूता है, कभी ऊपर शिखर छू लेता है। हमारा चित्त पूरे वक्त नीचे-ऊंचे होते जा रहा है। हमारा चित्त कभी एक तल में नहीं है। सुबह हम नर्क में होते हैं; सांझ हम स्वर्ग में हो जाते हैं। घड़ीभर पहले हम रोते हैं; घड़ीभर बाद हंसी के फूल खिल जाते हैं। हमारा चित्त पूरे वक्त नीचे-ऊंचे हो रहा है।

कृष्ण जैसे व्यक्ति को स्मरण रखना पड़ता है। बहुत-बहुत बार वही-वही बात कहनी पड़ती है, अलग अलग रूपों में। पता नहीं अर्जुन का चित्त कब पीक पर हो, कब शिखर पर हो! और जब वह शिखर पर हो, तभी बात छुएगी। जब वह नीचे घाटी में होगा, तब कोई बात छुएगी नहीं, बात ऊपर से निकल जाएगी। इसलिए बहुत पुनरुक्ति भी करनी पड़ती है।

अनेक लोग गीता के इस हिस्से को पढ़ते हैं, तो वे सोचते हैं कि यह कृष्ण क्या कहे चले जा रहे हैं! यह एक या दो दफे कह देना काफी था। यह बार-बार क्या कह रहे हैं कि मैं इसमें यह, और उसमें वह। एक दफा कह देते कि मैं सनातन कारण हूं; बात तो पूरी हो गई। यह क्यों बार-बार कहे चले जा रहे हैं!

यह बार-बार इसलिए कहे चले जा रहे हैं कि पता नहीं वह क्षण अर्जुन के मन का कब हो, जब प्रवेश मिल जाए। द्वार सदा बंद होते हैं, कभी खुले होते हैं। और जब खुले होते हैं, तब प्रवेश हो जाता है। कब खुले होते हैं, कहना कठिन है। एकदम कठिन है।

इसलिए पुराने गुरु अपने शिष्यों को सदा पास रखने की कोशिश करते थे। पता नहीं कब, किस क्षण में...।

एक सूफी फकीर बायजीद तो कभी दिन में शिक्षा ही नहीं देता था। रात जब सब शिष्य सो जाते, तब वह घूमता रहता। शिष्यों के पास आकर उनकी हृदय की धड़कनें सुनता। शायद उनके सपनों में झांकता। शायद उनके विचारों

की पर्तों में उतरता। और जब कभी पाता कि कोई शिष्य उस गहराई में है या उस ऊंचाई में, जहां बात प्रवेश कर सकती है, तो तत्काल उसे उठा लेता और कहता, सुन! और सुनाना शुरू कर देता।

उसके शिष्य कई बार कहते भी उससे कि आप भी क्या पागलपन करते हैं! हम दिनभर बैठे रहते हैं तुम्हारे पास। और यह क्या हिसाब आपने निकाला है कि कभी रात दो बजे उठा लिया! कभी रात तीन बजे उठा लिया!

तो बायजीद कहता कि मैं जानता हूं कि कब तुम सुन पाओगे! कब! तुम जब बैठे होते हो, तब जरूरी नहीं कि तुम वहां मौजूद भी हो। तुम जब मुझे देखते होते हो, तब जरूरी नहीं कि तुम भीतर भी मुझे ही देख रहे हो। किसी और को देखते होओ! तुम्हारे कान जब मेरी तरफ लगे होते हैं, तब जरूरी नहीं कि तुम मुझे सुनो। तुम न मालूम क्या सुन रहे होओ! मैं उस क्षण की तलाश में होता हूं, जब मैं पाऊं कि हां, ठीक! अब उस जगह तुम हो, जहां मेरी बात तुम तक पहुंच पाएगी।

एक तो रास्ता यह है जो बायजीद का है। दूसरा रास्ता कृष्ण का है। युद्ध के मैदान पर इसका तो कोई उपाय नहीं था जो बायजीद ने किया। तो कृष्ण बहुत बार, बहुत बार, वही-वही बात, अलग-अलग ढंग, अलग-अलग मार्ग से कहे चले जाते हैं। इस आशा में कि कहीं से द्वार खुला मिल जाए। बाएं नहीं मिलता हवा को मार्ग, चलो दाएं घूमें। दाएं न मिले, तो और कहीं घूमें। आगे से नहीं मिलता, तो पीछे के द्वार से मिल जाए।

कृष्ण की हवा अर्जुन के घर के चारों तरफ घूम रही है कि कहीं कोई द्वार, कहीं कोई खिड़की, कहीं कोई रंध्र भी मिल जाए, तो प्रवेश कर जाए। इसलिए वे बार-बार कहे चले जाते हैं।

आज इतना ही।

ओशो – गीता-दर्शन – भाग 3
प्रकृति और परमात्मा— अध्याय-7 (प्रवचन—5)

ये चैव सात्त्विा भावा राजसास्तामसाश्च ये।
मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि।। 12 ।।
और भी जो सत्व गुण से उत्पन्न होने वाले भाव हैं और जो रजोगुण से तथा तमोगुण से होने वाले भाव हैं, उन सबको तू मेरे से ही होते हैं ऐसा जान, परंतु वास्तव में उनमें मैं और वे मेरे में नहीं हैं।

प्रकृति परमात्मा में है, लेकिन परमात्मा प्रकृति में नहीं है। यह विरोधाभासी, पैराडाक्सिकल सा दिखने वाला वक्तव्य अति गहन है। इसके अर्थ को ठीक से समझ लेना उपयोगी है।

कृष्ण कहते हैं, सत्व, रज, तम, तीनों गुणों से बनी जो प्रकृति है, वह मुझमें है। लेकिन मैं उसमें नहीं हूं।

ऐसा करें कि एक बड़ा वर्तुल खींचें अपने मन में, एक बड़ा सर्किल। उसमें एक छोटा वर्तुल भी खींचें। एक बड़ा वर्तुल खींचें, और उसके भीतर एक छोटा वर्तुल खींचें, तो छोटा वर्तुल तो बड़े वर्तुल में होगा, लेकिन बड़ा वर्तुल छोटे वर्तुल में नहीं होगा।

प्रकृति तो हमें दिखाई पड़ती है कि असीम है, बहुत विराट; ओर-छोर का कुछ पता नहीं चलता; लेकिन परमात्मा के खयाल से प्रकृति ना-कुछ है। बहुत छोटा वर्तुल है, बहुत सीमित घटना है। ऐसी अनंत प्रकृतियां परमात्मा में हो सकती हैं, होती हैं; बनती हैं, बिखर जाती हैं। परमात्मा के भीतर ही सब कुछ घटित होता है। इसलिए यह ठीक है कहना, सब कुछ मुझमें है, लेकिन मैं उस सब कुछ में नहीं हूं।

विराट क्षुद्र में नहीं होता, क्षुद्र तो विराट में होता ही है। लहर सागर में होती है, तो सागर कह सकता है, सब लहरें मुझमें हैं, लेकिन मैं लहरों में नहीं हूं। क्योंकि लहरें न रहें तो भी सागर रहेगा, लेकिन सागर न रहे तो लहरें न बचेंगी। हम सोच सकते हैं, सागर का होना बिना लहरों के, लेकिन लहरों का होना नहीं सोच सकते बिना सागर के। लहरें सागर में ही उठती हैं, सागर में ही होती हैं, फिर भी इतनी छोटी हैं कि उस सागर में उठकर भी सागर को घेर नहीं पातीं। घेर भी नहीं सकती हैं।

इस वक्तव्य को देने के कुछ कारण हैं। और साधक के लिए बहुत अनिवार्य है।

कृष्ण जब कहते हैं, यह सारी प्रकृति मुझमें है, फिर भी मैं इस प्रकृति में नहीं हूं, तो दो बातें ध्यान में रख लेने जैसी हैं। एक तो यह कि जो परमात्मा में प्रवेश कर जाए, उसमें प्रकृति होगी। लेकिन जो प्रकृति में ही खड़ा रहे, उसमें परमात्मा नहीं होगा।

जैसे कि कृष्ण को भी भूख लगती है, और कृष्ण को भी नींद आती है, और कृष्ण के भी पैर में चोट लगती है, तो दर्द और पीड़ा होती है। कृष्ण की मृत्यु हुई; पैर में तीर लगने से हुई। प्रकृति अपना पूरा काम करती है--कृष्ण में भी, महावीर में भी, बुद्ध में भी, जीसस में भी। जब जीसस को सूली पर लटकाया गया, तो प्रकृति ने पूरा काम किया।

हम में भी प्रकृति काम करती है। हम भी खाना खाते हैं, हमारे पैर में भी दर्द होता है, पीड़ा होती है। हमें भी कोई सूली पर लटका दे, तो हम भी मर जाएंगे। लेकिन हमारा सूली पर लटकना और क्राइस्ट के सूली पर लटकने में बुनियादी फर्क होगा। क्योंकि जब क्राइस्ट से प्रकृति छूट रही होगी, तब क्राइस्ट परमात्मा में प्रवेश कर रहे होंगे। और जब हमसे प्रकृति छूट रही होगी, तो हम कहीं प्रवेश नहीं कर रहे होंगे, सिर्फ प्रकृति छूट रही होगी।

इसलिए तो मरते समय हम इतने पीड़ित और परेशान हो जाते हैं। क्योंकि प्रकृति के अतिरिक्त हमने कुछ और जाना नहीं। और जब शरीर छूटता है, तो प्रकृति छूट रही है। हम मरे, हम मिटे।

जब क्राइस्ट की प्रकृति छूट रही है, वह छोटा वर्तुल छूट रहा है, तो क्राइस्ट भयभीत नहीं हैं, आनंदित हैं, क्योंकि वे बड़े वर्तुल में प्रवेश कर रहे हैं। लहर मिट रही है, और सागर में प्रवेश हो रहा है। जब हमारी लहर मिटती है, तो सिर्फ लहर मिटती है; सागर का हमें कुछ पता नहीं है। सागर में कोई प्रवेश नहीं होता।

जब आपको भूख लगती है, तो आपको भूख लगती है। और जब कृष्ण को भूख लगती है, तो प्रकृति को भूख लगती है। और जब आपके पैर में पीड़ा होती है, तो आपको पीड़ा होती है। और जब कृष्ण के पैर में पीड़ा होती है, तो प्रकृति को पीड़ा होती है। कृष्ण तो साक्षी ही होते हैं।

जिस व्यक्ति ने परमात्मा को जाना, वह प्रकृति का साक्षी मात्र रह जाता है। वह छोटा वर्तुल उसे दिखाई पड़ता है, लेकिन वह स्वयं बड़े वर्तुल के साथ एक हो जाता है। लेकिन जिसने परमात्मा को नहीं जाना, उसे तो छोटा वर्तुल ही सब कुछ दिखाई पड़ता है। उसके पार कुछ भी नहीं है। और जब हमारा ध्यान प्रकृति में अतिशय लग जाता है, तो अतिशय लग जाने के कारण ही परमात्मा की तरफ ध्यान जाना मुश्किल हो जाता है।

अठारह सौ अस्सी में यूरोप में अल्तामिरा की गुफाएं खोजी गईं और उन गुफाओं की खोज के वक्त एक बहुत मजेदार घटना घटी। एक बहुत बड़े जमींदार डान मार्शिलानो की जमीन पर अचानक पहाड़ियों में ये गुफाएं मिल गईं। एक कुत्ता भूल से गुफा के भीतर कूद गया। वर्षा में कुछ मिट्टी गलकर गिर गई; गङ्ढा हो गया; और कुत्ता उसके अंदर चला गया, फिर निकल न पाया। वहां उसने बहुत शोरगुल मचाया। तब मार्शिलानो के किसान, मजदूर जाकर किसी तरह खोदकर कुत्ते को निकाले। कुत्ता तो निकल आया, साथ में गुफाओं का आविष्कार हो गया। बड़ी गहरी और बड़ी अदभुत गुफाएं थीं। मनुष्य के पूरे इतिहास की दृष्टि उन गुफाओं ने बदल दी।

मार्शिलानो को पता चला, तो वह इतिहास का विद्यार्थी था, उसने तत्काल सब इंतजाम किया। विशेषकर वह मनुष्य की हड्डियों का अध्ययन कर रहा था वर्षों से। तो उसने सोचा कि ये गुफाएं न मालूम कितनी पुरानी होंगी, तो हड्डियां, कीमती हड्डियां इसमें मिल सकती हैं, और किसानों ने खबर दी कि बहुत अस्थिपंजर हैं।

तो मार्शिलानो ने सर्चलाइट लेकर गुफाओं को खुदवाया और उनमें प्रवेश किया। छः दिन तक रोज घंटों वह सरककर गुफाओं में जाता, एक-एक हड्डी पर नजर रखता। हड्डियां खोजीं उसने बहुत। सातवें दिन उसकी छोटी लड़की ने, जो सात-आठ साल की लड़की थी, उसने कहा, मैं भी अंदर चलना चाहती हूं। वह लड़की को ले गया।

आप जानकर हैरान होंगे कि अल्तामिरा की असली गुफाएं उस लड़की ने खोजीं सात साल की। सर्चलाइट लेकर वह जो इतिहासज्ञ पिता था, वह नहीं खोज पाया। बड़ी अदभुत घटना घटी। जब वह लड़की को लेकर गया, तो वह अपना सरककर अपनी हड्डियों की जांच-पड़ताल में लग गया कि जमीन में एक हड्डी भी चूक न जाए; सर्चलाइट पास था। अचानक लड़की चिल्लाई, पिताजी, पिताजी, ऊपर देखिए!

छः दिन से वह जा रहा था रोज, लेकिन उसने ऊपर आंख ही नहीं उठाई थी। वह नीचे हड्डियां बीनने में इतना व्यस्त था कि गुफाओं के ऊपर सीलिंग पर क्या है, उसने नजर न डाली थी। सीलिंग पर तो इतने अदभुत चित्र थे, जैसे कल रंगे गए हों। और ठेठ बीस हजार साल पुराने चित्र निकले।

अल्तामिरा की गुफाएं सारे जगत में प्रसिद्ध हो गईं उन चित्रों के कारण। इतने अदभुत चित्र थे कि जिसने भी उन्हें बनाया होगा, पिकासो से कम सामर्थ्य का चित्रकार नहीं था। तो सारा इतिहास बदलना पड़ा। क्योंकि खयाल था कि पुराने जमाने में तो किसी आदमी के पास इतनी बड़ी कला नहीं हो सकती। लेकिन पाया यह गया कि वे जो अल्तामिरा की गुफाओं पर जो जानवरों के चित्र हैं, सांड के चित्र हैं, वे इतने कलात्मक हैं और इतने अदभुत हैं कि आज भी कोई चित्रकार उनका मुकाबला नहीं कर सकता।

हैरान हुआ मार्शिलानो कि वह छः दिन से रोज सर्चलाइट लेकर आ रहा था, लेकिन सर्चलाइट उसका जमीन पर लगा था। वह हड्डियां खोज रहा था कि कोई हड्डी चूक न जाए। तो ऊपर नजर नहीं गई।

यह मैं इसलिए कह रहा हूं कि हम सब भी जब तक प्रकृति में हड्डियां खोजते रहते हैं...। बड़ा सर्चलाइट हमारे पास है। लेकिन ऊपर सीलिंग की तरफ नहीं उठ पाता, वह परमात्मा की तरफ नहीं उठ पाता। टू मच आक्युपाइड जमीन पर सरकने में और प्रकृति में खोज करने में। हड्डियों की ही खोज है; कुछ और बहुत खोज नहीं है। जब आप कामवासना में खोज रहे हैं, तो हड्डियों से ज्यादा कुछ भी नहीं खोज रहे हैं। और जब आप सिंहासनों पर चढ़ने में खोज कर रहे हैं, तब भी हड्डियों से ज्यादा कुछ नहीं खोज रहे हैं। हड्डियों को ही चढ़ा रहे हैं सिंहासनों पर। जब आप धन खोज रहे हैं, तो सिर्फ हड्डियों की सुरक्षा खोज रहे हैं; और कुछ भी नहीं खोज रहे हैं। जब आप शक्ति खोज रहे हैं, तो हड्डियों के लिए केवल इंतजाम कर रहे हैं सिक्योरिटी का; और कुछ भी नहीं कर रहे हैं।

प्रकृति में उलझा हुआ मन ऊपर की तरफ नहीं उठ पाता। उसे नहीं देख पाता वह, जो वृहत वर्तुल है, वह जो ग्रेटर सर्किल है। जिसकी कृष्ण बात कर रहे हैं, मुझमें है प्रकृति, लेकिन मैं प्रकृति में नहीं हूं। उस तरफ नजर नहीं उठ पाती है।

तो जो प्रकृति में उलझा है, वह कृष्ण के वचन से ठीक से समझ ले, क्योंकि इस बात की भ्रांति है कि अगर कृष्ण यह कहते कि मैं प्रकृति में हूं और प्रकृति मुझमें है, तो भी गलत नहीं था। क्योंकि छोटा वर्तुल अगर बड़े वर्तुल में है, तो बड़ा वर्तुल भी किसी न किसी अर्थ में छोटे वर्तुल में है। अगर लहर सागर में है, तो सागर कितने ही क्षुद्रतम अर्थों में, लहर के भीतर है। तर्क किया जा सकता है। क्योंकि यह असंभव है कि बड़ा वर्तुल छोटे वर्तुल में न हो, तो छोटा वर्तुल बड़े वर्तुल में कैसे हो सकेगा? माना कि पूरा बड़ा वर्तुल छोटे वर्तुल में नहीं हो सकेगा, अंश ही होगा; लेकिन होगा तो ही।

लेकिन कृष्ण उस तर्क को मद्दे-नजर कर रहे हैं, जानकर। क्योंकि एक बार आदमी को यह पता चल जाए और यह खयाल में आ जाए कि प्रकृति में परमात्मा है और परमात्मा में प्रकृति है, तो शायद हम प्रकृति से ऊपर नजर उठाने को कभी राजी न हों। कभी राजी न हों। क्योंकि हम कहें कि जब प्रकृति में ही परमात्मा है--खाने-पीने में, कपड़े पहनने में, मकान बनाने में--तो फिर और परमात्मा की खोज की जरूरत क्या है? जब इस शरीर में ही परमात्मा है, तो फिर शरीर ही परमात्मा हो जाएगा। हम तत्काल इस बात को अपने मतलब की तरफ झुका लेंगे।

और आदमी बड़ा कुशल है, वह सब चीजों के अर्थ अपनी तरफ झुका लेता है। क्योंकि दो ही रास्ते हैं। या तो अर्थ की तरफ आप झुकिए, या तो सत्य की तरफ आप झुकिए; या सत्य को अपनी तरफ झुका लीजिए। अन्यथा बेचैनी अनुभव होगी।

जिस दिन कोई जानेगा बड़े वर्तुल को, परमात्मा को, उस दिन वह शायद यह भी जान ही लेगा कि प्रकृति भी उसमें ही है, वह भी प्रकृति में है। लेकिन हमसे यह कहना, यह सत्य कहना, खतरनाक है। कहना इसलिए खतरनाक है कि अगर हमें यह बात पक्की हो जाए कि हम जो कर रहे हैं, उसमें भी परमात्मा है, तो फिर शायद परमात्मा की तरफ नजर उठाने का खयाल ही मिट जाए। जरूरत भी नहीं रह जाती।

इसलिए कृष्ण बहुत सोच-विचारकर कहते हैं, प्रकृति मुझमें है अर्जुन, लेकिन मैं प्रकृति में नहीं हूं। तो तू प्रकृति में कितना ही खोजता रहे, मुझे न पा सकेगा। हां, मुझे पा ले, तो प्रकृति तो पाई ही हुई है।

यह भी बहुत मजे की बात है। कोई आदमी कितना ही धन खोजे, धनी नहीं हो पाता। लेकिन कोई आदमी परमात्मा को खोज ले, तो दरिद्रता भी धन हो जाती है।

जीसस का वचन है, सीक यी फर्स्ट दि किंगडम आफ गॉड, देन आल एल्स विल बी एडेड अनटु यू। खोज लो पहले प्रभु के राज्य को, और फिर सब–सब–साथ में मिल जाएगा।

लेकिन हम सबको खोजने चलते हैं, प्रभु को छोड़कर। तब प्रभु तो मिलता ही नहीं, सबमें से भी कुछ नहीं मिलता है। सिर्फ दौड़-धूप; और आखिर में राख हाथ में लगती है–सपनों की राख, आशाओं की राख। यश कोई कितना ही खोजे, यश हाथ लगेगा नहीं। और कोई परमात्मा को खोज ले, तो यशस्वी हो जाता है, तत्क्षण। कोई कितना ही प्रेम खोजे, प्रेम मिलेगा नहीं। और कोई प्रार्थना को खोज ले, तो जीवन प्रेम की सुगंध से भर जाता है; ऐसी सुगंध से, जो फिर कभी चुकती नहीं।

हम कुछ भी खोजें प्रकृति में, हमारे हाथ में कुछ लगेगा नहीं; मिट्टी-पत्थर ही लगेंगे। यद्यपि प्रत्येक मिट्टी-पत्थर के भीतर परमात्मा छिपा है। लेकिन जो प्रकृति में खोजने चला है, वह परमात्मा के प्रति अंधा होता है। वह नैरोड, उसकी कांशसनेस तो हड्डियों में अटकी रहती है, नीचे। वह ऊपर की तरफ नहीं उठ पाता है।

कितनी निकट थीं अल्तामिरा की वे चित्रावलियां! जरा-सा तो सर्चलाइट ऊपर उठाना था। सर्चलाइट हाथ में था। जरा तो आंख ऊपर करनी थी। लेकिन जो नीचे खोजने में लगा है, उसकी आंख ऊपर नहीं उठ पाती।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, सत्व, रज, तम, सब मुझमें हैं अर्जुन, लेकिन मैं उनमें नहीं हूं।

बड़ी मजेदार बात है। अगर कोई आदमी परमात्मा के बिना सात्विक भी हो जाए, तो भी धार्मिक नहीं हो सकता। अगर कोई व्यक्ति परमात्मा के बिना सात्विक भी हो जाए, परम सात्विक हो जाए, तो भी धार्मिक नहीं हो सकता। और कोई व्यक्ति कितना ही तामसिक और कितना ही राजसिक हो, अगर परमात्मा में प्रवेश कर जाए, तो तत्काल सात्विक हो जाता है।

अगर आदमी अपने ही बल से सात्विक हो जाए, तो सिवाय अहंकार के और कुछ निर्मित नहीं होता। पायस, पवित्र अहंकार निर्मित होता है। और कोई व्यक्ति कितना ही बुरा हो, दीन हो, हीन हो, पापी हो, और परमात्मा में छलांग लगा जाए, तो तत्काल, जैसे आग में कचरा जल जाए, ऐसे परमात्मा की आग में सब पाप जल जाते हैं।

और परमात्मा में जब कुछ जलता है, तो अहंकार नहीं बचता, वह भी जल जाता है। और आदमी जब कुछ भी जलाए, कुछ भी मिटाए, कुछ भी बनाए, एक चीज पीछे बची रह जाती है–मैं पीछे बचा रह जाता है।

इसलिए सात्विक से सात्विक व्यक्ति भी एक सूक्ष्म अहंकार से पीड़ित रहता है। और परमात्मा तभी उपलब्ध होता है, जब अहंकार की पतली से पतली, बारीक से बारीक दीवाल भी बीच में न रह जाए। और कोई बाधा नहीं है।

कृष्ण का भी मतलब वही है, जो क्राइस्ट का है, कि पहले तू परमात्मा को खोज।

अर्जुन क्या कह रहा है? अर्जुन यह कह रहा है कि मुझे इस युद्ध से जाने दो। यह तामसिक, राजसिक मालूम पड़ता है। मैं सात्विक होना चाहता हूं। मुझे हट जाने दो। यह सब बात बड़ी गड़बड़ मालूम पड़ती है। यह लोगों को मारना–यश के लिए, धन के लिए, राज्य के लिए–क्षुद्र मालूम पड़ता है। यह मेरे सात्विक मन को प्रीतिकर नहीं लगता; यह श्रेयस्कर नहीं है। मुझे जाने दो कृष्ण, मुझे हट जाने दो, इस युद्ध से। इससे तो बेहतर भीख मांगकर जी लेना होगा। इससे तो बेहतर भिखारी हो जाना होगा। इससे तो बेहतर किसी वृक्ष के नीचे, किसी अरण्य में बैठ जाऊंगा, प्रार्थना में डूब जाऊंगा। यह सब मैं नहीं करना चाहता हूं। यह बड़ा तामसिक मालूम पड़ता है।

कृष्ण कहते हैं, सत्व, रज, तम, सब मुझमें हैं, लेकिन मैं उनमें नहीं हूं। इसलिए अगर तू सात्विक भी हो जाए मेरे बिना, मुझे समर्पित हुए बिना, तो तेरे सत्व से भी कुछ हल न होगा। अगर तू अपने ही हाथ से स्वर्ग में भी पहुंच जाए, तो तेरा अहंकार साथ होगा और सब स्वर्ग नर्क हो जाएंगे। क्योंकि असली नर्क तेरे पीछे ही चलता रहेगा; तेरे साथ ही चलता रहेगा। तू पहले मुझे पा ले और फिर तू बात करना सत्व, रज और तम की; फिर तू बात करना प्रकृति की। पहले तू मुझे पा ले।

धर्म की और नीति की यही बुनियादी दूरी है। नीति कहती है, सात्विक हो जाओ। धर्म कहता है, धार्मिक हो जाओ। नीति कहती है, पहले अपने कर्म बदलो, आचरण बदलो। धर्म कहता है, पहले प्रभु में प्रवेश कर जाओ। क्योंकि तुम क्या आचरण बदलोगे और तुम्हारा बदला हुआ आचरण तुम्हारा ही बदला हुआ होगा। वह तुमसे बड़ा नहीं हो सकता। तुम क्या सदाचरण करोगे? वह तुमसे ही निकलेगा। वह तुमसे महत्वपूर्ण नहीं हो सकता। जैसे कोई आदमी अपने जूते के बंद पकड़कर खुद को नहीं उठा सकता, ऐसे ही कोई आदमी अपने ही द्वारा सदाचरण को उपलब्ध नहीं हो सकता। आप ही तो सदाचरण करेंगे–आप ही। यह थोड़ा समझने जैसा है।

एक आदमी चोर है। और वह चोर कहता है कि मैं कोशिश कर रहा हूं कि अचोर हो जाऊं, चोरी छोड़ दूं। अब चोर ही तो चोरी छोड़ने की कोशिश करेगा! चोर ही कोशिश करेगा चोरी छोड़ने की। यह जूते के बंद पकड़कर अपने को उठाने से भी कठिन काम है। यह होने वाला नहीं है। क्योंकि अगर चोर इस योग्य होता कि चोरी उससे न होती होती, तब तो बात ही और थी, लेकिन यह बात नहीं है।

चोर चोर है। और कसम खा रहा है कि मैं चोरी नहीं करूंगा। वह अपने साथ भी चोरी कर जाएगा।

एक आदमी क्रोधी है और वह कह रहा है, मैं क्रोध नहीं करूंगा। लेकिन उसे पता नहीं है कि जो यह कह रहा है, नहीं करूंगा, यह भी उसका क्रोधी स्वभाव है, जो कसम ले रहा है, जो संकल्प बांध रहा है कि मैं क्रोध नहीं करूंगा। सौ में सौ ही मौके इस बात के हैं कि यह क्रोध ही बोल रहा हो कि मैं क्रोध नहीं करूंगा। अब वह दिक्कत में पड़ेगा।

जैसे कभी-कभी कुत्ते को आपने देखा हो कि अपनी पूंछ पकड़ने की दिक्कत में पड़ जाता है। जोर से छलांग लगाता है। पूंछ बिलकुल पास मालूम पड़ती है। जरा सा मुंह पास पहुंच जाए, तो पूंछ पकड़ में आ जाए। लेकिन बेचारे कुत्ते को पता नहीं; कुत्ते को क्या, हमारे तथाकथित तपस्वियों, नैतिक साधकों को भी पता नहीं, तो कुत्ते का तो कोई कसूर नहीं है।

जब पूंछ बिलकुल करीब दिखाई पड़ती है, तो कुत्ता सोचता है कि जरा ही मुंह बढ़ा लूं, तो पूंछ पकड़ में आ जाए। मुंह बढ़ाता है, लेकिन तब तक पूंछ हट जाती है। क्योंकि वह मुंह से ही पीछे जुड़ी है, यह उसे पता नहीं है। जब छूटती है, तो और जोर से कूदता है। सोचता है कि शायद थोड़ा कम कूदा, इसलिए पूंछ पकड़ में नहीं आ सकी। पर जितने जोर से कूदता है, पूंछ भी उतने ही जोर से कूदती है। अब एक विसियस सर्किल, एक दुष्टचक्र पैदा होता है, जिसमें कुत्ता दिक्कत में पड़ेगा, थकेगा, परेशान होगा; कभी पूंछ पकड़ में आएगी नहीं।

जब कोई हिंसक आदमी कहता है कि अब मैं अहिंसक होने की कोशिश करूंगा, तब वह आदमी कुत्ते के तर्क पर चल रहा है। नहीं; आप अपने में बदलाहट न ला सकेंगे। क्योंकि लाएगा कौन बदलाहट? आप ही!

इसलिए कृष्ण कहते हैं, या क्राइस्ट कहते हैं, कि परमात्मा की तरफ पहले नजर उठा लो, फिर बदलाहट आ जाएगी। क्योंकि तब तुम परमात्मा के हाथ में होओगे, और उसके हाथ में पड़ते ही बदलाहट शुरू हो जाती है। उसकी तरफ आंख उठाते ही बदलाहट शुरू हो जाती है, क्योंकि आप दूसरे ही आदमी हो जाते हैं। उसकी तरफ नजर पड़ते ही सब कुछ बदल जाता है। क्योंकि जैसे ही विराट दिखाई पड़ता है, वैसे ही हमारी क्षुद्रताएं गिर जाती हैं, कि हम भी कैसे पागल थे! हम खोज क्या रहे थे? हम पाने की कोशिश क्या कर रहे थे?

बुद्ध के पास एक स्त्री सुबह-सुबह आई है। उसका लड़का मर गया है और बुद्ध गांव में रुके हैं। तो वह छाती पीटती हुई आई और उसने कहा कि मैं तुम्हारी बातें तभी सुनूंगी, जब तुम मेरे लड़के को जिंदा कर दो। लोग कहते हैं, तुम भगवान हो। तो भगवान ने तो इतना बड़ा जगत बनाया, तुम मेरे इस लड़के को ही जिंदा कर दो।

बुद्ध के संन्यासी, भिक्षु मुश्किल में पड़ गए। अब क्या होगा! बुद्ध ने कहा, कर दूंगा सांझ तक। एक छोटा-सा काम तू पहले मेरे लिए कर ला। गांव में जा–मैं इसे जिंदा करने की दवाई बुला रहा हूं–और किसी भी घर से सरसों के बीज ले आ, उस घर से, जिसमें कोई कभी मरा न हो। जा, सांझ तक लेकर आ जाना। बस, तू सरसों के बीज ले आना उस घर से जिसमें कोई कभी न मरा हो; मैं इसे सांझ जिंदा कर दूंगा।

औरत खुशी से भागी पागल होकर, जरूर किसी न किसी के घर में सरसों के बीज मिल जाएंगे, और उसका बेटा जिंदा हो जाएगा। लेकिन एक-एक घर के द्वार पर उसने दस्तक दी। जिस घर में भी गई, वहीं लोगों ने कहा, सरसों के बीज तो हैं। अभी-अभी फसल कटी है। तो बुद्ध ने कोई बड़ी कठिन दवाई नहीं मांगी है। लेकिन हमारे घर के सरसों के बीज काम न पड़ेंगे। हमारे घर में तो बहुत लोग मरे हैं।

सांझ तक एक-एक घर छान डाला। और सांझ तक हर घर पर यही बात सुनकर कि हर घर में कोई मरा है, और मृत्यु जीवन का नियम है, वह स्त्री सुबह रोती हुई आई थी, सांझ हंसती हुई आई।

बुद्ध ने कहा, ले आई सरसों के बीज? उस स्त्री ने कहा, सरसों के बीज तो नहीं लाई, लेकिन बड़ी बुद्धिमत्ता लेकर आई हूं। बच्चे को लौटा दें। मैं अपनी प्रार्थना वापस लेती हूं। उसे जिंदा करने की कोई जरूरत नहीं। बुद्ध ने कहा, इतनी जल्दी कैसे तू बदल गई?

उस स्त्री ने कहा कि जिस तथ्य की तरफ मेरी कभी आंख ही न उठी थी, उस तथ्य का दर्शन होते ही सब बदल गया। जब सभी मरते हैं, और जब सभी को मरना है, तो मेरे बेटे के साथ भी अपवाद कैसे हो सकता है! नहीं; अब मैं दुखी नहीं हूं। और अब मैं लड़के को जिलाने की प्रार्थना वापस लेने आई हूं। और आपसे यह भी प्रार्थना करने आई हूं कि आज से मैं भी समझिए कि मर गई, क्योंकि मर ही जाऊंगी। मरने के पहले जीवन को जानने की कोई विधि हो, तो मुझे बताएं। अब सदा जीने की कोई आकांक्षा नहीं है, क्योंकि मृत्यु तथ्य है; इसलिए अब मृत्यु का कोई भय भी नहीं है। लेकिन जब तक जी रही हूं, तब तक जीवन को जानने की कोई विधि हो, तो मुझे बताएं।

बुद्ध ने कहा, दिनभर में तेरी इतनी बड़ी बदलाहट! वह तो सांझ संन्यासिनी हो गई। उसने बुद्ध से उसी सांझ दीक्षा ली।

किस बात से यह बदलाहट हुई? एक तथ्य की तरफ दृष्टि उठी–एक बड़े तथ्य की तरफ–कि मृत्यु जीवन का हिस्सा है।

जिस दिन परमात्मा की तरफ दृष्टि उठेगी, कि प्रकृति परमात्मा का हिस्सा है; जिस दिन ऊपर की तरफ देखेंगे, उस विराट की तरफ, जिसमें सारी प्रकृति समाई हुई है; उस दिन आप दूसरे आदमी हो जाएंगे। उस दिन चोरी असंभव होगी। उस दिन क्रोध असंभव होगा। उस दिन बेईमानी मुश्किल हो जाएगी। उस दिन बेईमानी ऐसी ही होगी, जैसे कोई आदमी अपने एक खीसे से रुपए चुराकर दूसरे खीसे में रख ले। बस! ऐसे कुछ लोग हैं कि अपने ही एक खीसे से

चुराकर अपने ही दूसरे खीसे में रख लेते हैं। सभी लोग ऐसे हैं, अगर सत्य दिखाई पड़े तो। क्योंकि आपका खीसा भी सिर्फ थोड़ी दूर, मेरा ही खीसा है।

जिस दिन परमात्मा दिखाई पड़े, उस दिन चोरी असंभव है, क्योंकि सबमें ही परमात्मा दिखाई पड़ेगा। अपनी ही चोरी कौन करता है? वह तो चोरी हम करते इसलिए हैं कि दूसरा दूसरा है। और जिस दिन परमात्मा दिखाई पड़े, उस दिन सब मालकियत का खयाल खो जाता है। क्योंकि जब असली मालिक का पता चल गया, तो हमें पता चल जाता है कि हम मालिक नहीं हैं, और हम मालिक नहीं हो सकते। जब मालकियत ही नहीं हो सकती, तो क्या चोरी? क्योंकि चोरी तो मालकियत की व्यवस्था है, किसी तरह मालकियत कायम करने की चेष्टा है।

कृष्ण कहते हैं, मुझमें तो सारी प्रकृति है, लेकिन मैं प्रकृति में नहीं हूं। तू मुझे खोज ले, तो पूरी प्रकृति तुझे मिल जाए। और तूने प्रकृति खोजी, तो तू मुझे न पा सकेगा। इसलिए तू सत्व गुण की बात मत कर। तू यह तम और रज की निंदा मत कर। ये तीनों मुझमें हैं। पर तू मेरी बात कर; तू मेरी शरण आ। टुकड़ों की बात मत कर; पूरे की बात कर। खंडों की बात मत कर; पूर्ण की बात कर।

खंडों में पूर्ण है, लेकिन पूर्ण में खंड नहीं है। यह आध्यात्मिक गणित का एक कीमती सूत्र है। कहां से शुरू करनी है यात्रा, उसे स्मरण दिलाने के लिए कृष्ण ने ऐसा कहा है।

एक छोटी-सी घटना मुझे याद आती है। सुना है मैंने कि कनफ्यूसियस के जमाने में चीन में दो चीनियों ने आमने-सामने दुकान खोली, होटल। एक का नाम था यिन और दूसरे का नाम था यांग; उन दोनों ने दुकानें खोलीं। दोनों की दुकानें अच्छी चलने लगीं, बहुत जोर से चलने लगीं। धन इकट्ठा होने लगा, तिजोड़ी भरने लगी। लेकिन दोनों का दुख भी बड़ा होने लगा, जैसा कि अक्सर होता है। सफलता के साथ न मालूम कैसी गहरी उदासी आने लगती है। क्योंकि आप अकेले ही सफल नहीं होते, दूसरा भी सफल हो रहा होता है।

दोनों परेशान हो गए। दोनों की दुकान अच्छी चलती है। भीड़-भड़क्का होता है। ग्राहक काफी आते हैं। लेकिन दोनों परेशान हो गए। दोनों का हृदय-चाप बढ़ गया। दोनों की नींद हराम हो गई। अनिद्रा पकड़ गई। दोनों चिकित्सकों का चक्कर लगाने लगे, लेकिन कोई रास्ता न सूझे। धन बढ़ता गया और बेचैनी बढ़ती चली गई। बेचैनी यह थी कि दोनों अपने-अपने काउंटर पर बैठकर देखते थे कि दूसरे की दुकान में कितने ग्राहक जा रहे हैं, उनकी गिनती करते थे। रात परेशान होते थे कि इतने ग्राहक चूक गए; अपने पास भी आ सकते थे।

चिकित्सकों ने कहा कि हम तुम्हारा इलाज न कर पाएंगे, क्योंकि यह बीमारी शारीरिक नहीं है। तुम कनफ्यूसियस के पास चले जाओ। उन्होंने कहा, कनफ्यूसियस इसमें क्या करेगा? वह उपदेश देगा। उपदेश से कुछ होने वाला नहीं है। सवाल असल यह है कि दूसरे की दुकान पर ग्राहक बहुत जा रहे हैं, और उन्हें हम देखते हैं। आंख बंद कर नहीं सकते हैं। सामने ही दुकान है। छाती पर चोट लगती है। हर बार एक आदमी भीतर प्रवेश करता है, फिर छाती पर चोट लगती है। नींद न जाएगी, तो होगा क्या!

फिर भी, चिकित्सकों ने कहा, तुम कनफ्यूसियस के पास जाओ। वह आदमी होशियार है, और वह आदमी की गहरी बीमारियों को जानता है।

वे दोनों गए। कनफ्यूसियस ने तरकीब बताई और वह काम कर गई और दोनों स्वस्थ हो गए। बड़ी मजेदार तरकीब थी। शायद ही इस जमीन पर किसी और होशियार आदमी ने ऐसी तरकीब कभी बताई हो।

कनफ्यूसियस ने कहा, पागलो। बड़ा सरल-सा इलाज है। दुकानें चलने दो, तुम एक-दूसरे के काउंटर पर बैठने लगो। यिन यांग के काउंटर पर बैठे, यांग यिन के काउंटर पर बैठे, तब तुम दोनों का चित्त बड़ा प्रसन्न होगा। दूसरे की दुकान में जो घुस रहे हैं, वे अपनी ही दुकान में जा रहे हैं! तुम ऐसा कर लो।

और कहते हैं, उन दोनों ने ऐसा कर लिया और उस दिन से उनकी सब बीमारियां समाप्त हो गईं। वे दिनभर बैठे मजा लेते रहते कि ठीक! काफी लोग जा रहे हैं अपनी दुकान में! वह दूसरे की दुकान अपनी हो गई अब।

जिस दिन कोई परमात्मा को झांक लेता है, उस दिन सब दुकानें अपनी हो जाती हैं, सब कुछ अपना हो जाता है। उस दिन भीतर की प्रफुल्लता का कोई अंत नहीं है। उस दिन फूल खिलते हैं भीतर के। सहस्र पंखुड़ियों वाला फूल उस दिन खिलता है भीतर का, क्योंकि उस दिन हम परम आनंद में विराजमान हो जाते हैं। सब अपने हैं। सब अपना है। सारा विराट अपना है।

लेकिन जो प्रकृति में खोजने जाएगा, वह न खोज पाएगा इसे। इसे तो परमात्मा में कोई खोजने जाएगा, तो प्रकृति में भी पा लेगा।

टेनिसन ने कहा है, एक वृक्ष के पास से निकलते हुए, एक दीवाल के पास से निकलते हुए, जिसमें एक छोटा-सा घास का फूल खिला है; निकलते वक्त उसने कहा है कि अगर मैं इस छोटे-से फूल के राज को समझ लूं, तो मुझे सारी दुनिया का राज समझ में आ जाए।

लेकिन अगर वह कृष्ण से पूछे, तो कृष्ण कहेंगे, तू कभी इस फूल के राज को न समझ पाएगा। अगर तुझे सारी दुनिया का राज समझ में आ जाए, तो इस फूल का राज समझ में आ सकता है।

धर्म की दृष्टि पूर्ण से नीचे की तरफ यात्रा करती है। अधर्म की दृष्टि खंड से ऊपर की तरफ यात्रा करती है। धर्म अवतरण है पूर्ण से नीचे की ओर। और हमारी सब सोच-समझ, हमारी तथाकथित सांसारिक समझ, नीचे से ऊपर की तरफ चढ़ाव है--एक-एक कदम, एक-एक सीढ़ी।

ध्यान रहे, पर्वत से उतरना सदा आसान है; पर्वत पर चढ़ना बहुत कठिन है। सबसे बड़ी कठिनाई तो यही होती है पर्वत पर चढ़ने में कि जिस कदम पर आप खड़े होते हैं, वहां आपने जो इकट्ठा कर लिया होता है, वही अगले कदम उठाने में बाधा बनता है। और हर कदम पर आप कुछ इकट्ठा करते चले जाते हैं। यश, धन, मान, सम्मान, मित्र, प्रियजन इकट्ठा करते हैं हर कदम पर। फिर हर अगले कदम पर यही फांसी बन जाते हैं; यही बोझ की तरह चारों तरफ लटक जाते हैं। ये कहते हैं, कहां जाते हो? हमें छोड़कर कहां जाते हो? ये सब तिजोड़ियां छाती से अटक जाती हैं।

ऊपर से नीचे की तरफ उतरना बड़ा ही सुगम है, जैसे सूरज की किरण उतरती है। नीचे से ऊपर की तरफ जाना बहुत कठिन है।

कृष्ण यह कह रहे हैं कि प्रकृति की तरफ अगर तूने ध्यान दिया, तो तू मुझ तक न आ पाएगा। यद्यपि प्रकृति मुझमें है, फिर भी तू मुझ तक न आ पाएगा, क्योंकि मैं छिपा हूं। और जो तुझे दिखाई पड़ेगा, वह मैं नहीं हूं; जो नहीं दिखाई पड़ेगा, वह मैं हूं। हां, तू मुझे देख ले, अदृश्य को; जब तू अदृश्य को देख लेगा, तो दृश्य में देख लेना तो बहुत सरल है।

जब कोई आदमी ध्वनिरहित ध्वनि को सुन ले, तो फिर ध्वनि को सुनना कठिन नहीं है। और जब कोई शब्दरहित शब्द को जान ले, तो फिर शब्दों को पहचानना कठिन नहीं है। और जब कोई विराट को देख ले, तो क्षुद्र को देखने में क्या अड़चन है!

इसलिए कृष्ण का तर्क, या कृष्ण की पद्धति पूर्ण से शुरू करने की है। समस्त धर्म की पद्धति पूर्ण से शुरू करने की है। समस्त विज्ञान की पद्धति खंड से, टुकड़े से शुरू करने की है, फ्राम दि पार्ट। और धर्म की पद्धति, फ्राम दि होल। वही विज्ञान और धर्म की पद्धतियों का बुनियादी भेद है।

विज्ञान शुरू करता है एटम से, अणु से। और अणु से छोटी चीज मिले, तो उससे। और भी छोटी चीज मिल जाए, तो उससे। जितनी क्षुद्र मिल जाए, विज्ञान उससे शुरू करेगा। क्योंकि जितनी क्षुद्र हो, आदमी अपने हाथ में उसे उतनी ही आसानी से ले सकता है। जितनी क्षुद्र हो, उतना ठीक से विश्लेषण हो सकता है। जितनी क्षुद्र हो, प्रयोगशाला में प्रयोग हो सकता है। जितनी क्षुद्र हो, आदमी उसका मालिक हो सकता है।

और धर्म शुरू करता है विराट से। निश्चित ही फर्क पड़ेगा। विराट को आप अपने हाथ में नहीं ले सकते। अगर विराट को जानना है, तो आपको स्वयं ही विराट के हाथों में गिर जाना होगा। क्षुद्र को आप अपने हाथ में ले सकते हैं। प्रयोगशाला की परखनली में जांच सकते हैं। काट-पीट कर सकते हैं। क्षुद्र के आप मालिक हो सकते हैं। लेकिन विराट के मालिक आप नहीं हो सकते हैं। विराट को ही आपको अपना मालिक बना लेना होगा।

इसलिए पूर्ण से जब धर्म शुरू होता है, तो समर्पण उसकी विधि हो जाती है। और चूंकि विज्ञान क्षुद्र से शुरू होता है, इसलिए संघर्ष उसकी विधि होती है। इसलिए विज्ञान सोचता है इन टर्म्स आफ कांकरिंग, जीतने की भाषा में। और धर्म सोचता है हारने की भाषा में, आदमी कैसे हार जाए परमात्मा के चरणों में।

इसलिए कृष्ण कहते हैं कि मैं तो छिपा हूं इस सब क्षुद्र में भी, लेकिन तू मुझसे शुरू कर।

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत्।
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम्।। 13 ।।
गुणों के कार्यरूप सात्विक, राजस और तामस, इन तीनों प्रकार के भावों से यह सब संसार मोहित हो रहा है, इसलिए इन तीनों गुणों से परे मुझ अविनाशी को तत्व से नहीं जानता।

प्रकृति के मोह में सारे ही लोग हैं। अलग-अलग कारण होंगे मोह के, अलग-अलग बहाने होंगे। बस, बहाने ही अलग-अलग होते हैं, मोह का परिणाम एक ही होता है।

बड़ा क्रांतिकारी सूत्र है! सत्व, रज, तम, तीनों से ही जो मोहित हैं, वे मेरे तत्व को न जान पाएंगे, क्योंकि मैं बियांड हूं, मैं पार हूं तीनों के।

इसको समझना पड़ेगा। क्योंकि हमें लगता है, चोर नहीं जान पाएगा, बेईमान नहीं जान पाएगा; लेकिन हमें लगता है, सज्जन तो जान लेगा! सज्जन तो सत्व से मोहित है। हम कहते हैं, वह आदमी नहीं जान पाएगा, जो सिर्फ धन कमा रहा है। वह आदमी तो जान लेगा, जो जाकर मरीजों की सेवा कर रहा है! हम कहते हैं, वह आदमी भला न जान पाए, जो आदमी सिर्फ राजनीति की सीढ़ियां चढ़ रहा है। लेकिन वह आदमी तो जान लेगा, जो दीन-दुखियों के पैर दाब रहा है।

कृष्ण कहते हैं, सत्व, रज, तम, तीनों ही! वह जो बुरा दिखाई पड़ता है, वह तो मोहित है ही। वह जो भला दिखाई पड़ता है, वह भी मेरी ही प्रकृति के सत्व गुण से हिप्नोटाइज्ड है, वह भी मोहित है। यह बड़े मजे का है, और कठिन है थोड़ा; और थोड़ा जटिल है जानना ।

समझिए कि आप अपनी दुकान पर बैठे हैं, और आज अगर ग्राहक न आए, तो आप दुखी होते हैं। लेकिन आपको पता है कि किसी सेवक को अगर कोई सेवा करवाने वाला न मिले, तो आपसे कम दुख नहीं होता। इतना ही दुख हो जाता है। फर्क क्या हुआ? माना कि वह काम अच्छा कर रहा था, लेकिन परिणाम तो एक ही है।

अगर समाज इतना सुखद हो जाए, इतना मंगल को उपलब्ध हो जाए कि किसी व्यक्ति को समाज में समाज-सुधार के काम करने का मौका न मिले, तो आप जानते हैं, समाज-सुधारकों की कैसी हालत हो जाए! बड़ी मुश्किल में पड़ जाएं, बड़ी बेचैनी में। वह बेचैनी ठीक वैसी ही होगी, जैसे अचानक धंधा डूब जाए; ग्राहक न आएं; फैशन बदल जाए; आपकी दुकान की चीजें बिकनी बंद हो जाएं। वह पीड़ा उतनी ही होगी।

सत्व भी, अच्छा काम भी बिना परमात्मा को समर्पित हुए सिर्फ एक मोह है, और उससे भी अहंकार ही निर्मित होता है। इसलिए जिनको हम सात्विक लोग कहते हैं, वे भी अपने ढंग से अपनी अस्मिता को मजबूत करने में लगे रहते हैं।

परमात्मा के अतिरिक्त–वह जो पार है, वह जो परा है प्रकृति के ऊपर, उसके अतिरिक्त–सभी सम्मोहन है। सभी मोह के आधार बन जाते हैं; सभी मन को पकड़ लेते हैं, और सभी मन को मूर्च्छित कर देते हैं।

कृष्ण को यह कहने की जरूरत क्या है अर्जुन से? अर्जुन सत्व से मोहित हो रहा है, इसलिए कहने की जरूरत है।

बुद्ध के पास एक आदमी आया है एक सुबह और बुद्ध के चरणों में सिर रखकर उसने कहा, मुझे कुछ बताएं कि मैं दुनिया का कल्याण कर सकूं। बुद्ध ने उसकी तरफ नीचे देखा और कहा कि तू अपना ही कर ले, तो काफी है। तू दुनिया को क्यों मुसीबत में डालना चाहता है! तू अपना ही कर ले तो काफी है। तेरा कल्याण हो चुका? उसने कहा कि मैं कोई स्वार्थी आदमी नहीं हूं। मुझे मेरी फिक्र ही नहीं है; मुझे तो दुनिया की फिक्र है। बुद्ध ने कहा, जिसका खुद का दीया बुझा हो, वह किसके दीए जला सकेगा!

मगर वह आदमी कह रहा है, मैं स्वार्थी नहीं हूं, मुझे दुनिया की फिक्र है। लेकिन यह आदमी अगर कल्याण करने जाए, तो किसी के जले दीए और बुझा देगा। इससे कल्याण हो नहीं सकता।

परमात्मा के सिवाय कल्याण हो नहीं सकता। आदमी कैसे कल्याण करेगा? आदमी होना ही एक बीमारी है, एक डिसीज। और वह कहता है कि नहीं, मेरी उत्सुकता मुझमें, अपने आपमें नहीं है। मेरी उत्सुकता तो यह है कि दूसरों का भला कैसे हो!

बुद्ध ने अपने भिक्षुओं को कहा कि देखो, यह एक पवित्र अहंकारी है। इसको यह भी अहंकार है कि यह स्वार्थी नहीं है। तो बुद्ध ने कहा, पहले तू अपना स्वार्थ तो साध ले। तू पहले स्वयं को तो जान ले। उसने कहा कि इन सब बातों में मुझे मत डालें। दुनिया में बड़ी तकलीफ चल रही है और मुझे सब बदलना है और सब ठीक कर देना है।

ये ठीक करने वाले हजारों साल से ठीक कर रहे हैं, दुनिया की तकलीफ बढ़ती जाती है, कम नहीं होती। अब तो ऐसा लगने लगा है कि किसी तरह समाज का समाज-सुधारकों से छुटकारा हो जाए, तो थोड़ी राहत मिले।

असल में दूसरे को बदलने और ठीक करने का भी एक रस है। और सारी दुनिया को ठीक कर देने में भी एक बड़ी मौज है, बड़ा रस है। और हरेक इस खयाल से जीता है कि मैं सारी दुनिया को ठीक कर दूंगा।

खुद को ठीक करना बहुत मुश्किल पाकर लोग दुनिया को ठीक करने निकल जाते हैं! खुद से बचने के लिए लोग हजार उपाय खोज लेते हैं। खुद की बीमारियां दिखाई न पड़ें, खुद की परेशानियां दिखाई न पड़ें, खुद की परेशानियों से पलायन हो जाए, तो दूसरे की परेशानियों में लग जाते हैं। भुलाने की तरकीबें हैं; लेकिन सात्विक हैं बातें, इसलिए मजा भी है।

चोर को तो आप कह भी दें कि तू बुरा काम कर रहा है, नष्ट कर रहा है अपने को। साधु को कैसे कहिएगा? वह तो सेवा कर रहा है। वह तो कोई बुरा काम कर नहीं रहा है। वह तो स्कूल खोल रहा है; धर्मशाला बना रहा है; अस्पताल बना रहा है। कोई बुरा काम नहीं कर रहा है। कोढ़ियों की मालिश कर रहा है; कोई बुरा काम नहीं कर रहा है।

लेकिन कृष्ण कहते हैं, सत्व, रज, तम, तीनों! चाहे कोई ऐसा कृत्य, जो बुरा हो; और चाहे कोई ऐसा कृत्य, जो भला हो; और भले और बुरे की तरफ दौड़ने की जो प्रवृत्ति है, वे तीनों ही प्रकृति हैं। और अर्जुन, तू ठीक से समझ ले कि जब तक इन तीन से कोई मोहित हुआ जी रहा है, तब तक वह मुझ पार को, वह जो अतीत है, वह जो अतिक्रमण कर जाता है, उसको उपलब्ध नहीं हो सकेगा।

इसका अर्थ? इसकी निष्पत्ति?

इसकी निष्पत्ति यह हुई कि परमात्मा को पाने के लिए बुरे के तो ऊपर उठना ही पड़ता है, भले के भी ऊपर उठ जाना पड़ता है। परमात्मा को पाने के लिए असदवृत्तियों को तो छोड़ ही देना पड़ता है, सदवृत्तियों को भी छोड़ देना पड़ता है। असल में उस परम स्वतंत्रता के लिए लोहे की जंजीरें तो तोड़नी ही पड़ती हैं, सोने की जंजीरें भी तोड़ देनी पड़ती हैं।

और ध्यान रहे, लोहे की जंजीरों से अक्सर ही सोने की जंजीरें ज्यादा जंजीरें सिद्ध होती हैं। क्योंकि लोहे की जंजीर को तो तोड़ने का मन भी होता है; सोने की जंजीर को बचाने का भी मन होता है। सोने की जंजीर आभूषण मालूम पड़ने लगती है। इसलिए बुराई से तो कोई आदमी उठने की तैयारी दिखलाता है, लेकिन भलाई से तो उठने की तैयारी भी नहीं दिखलाता।

तो कृष्ण कहते हैं, तू सत्व की बातों में मत पड़ अर्जुन। तू यह साधुता की बातें मत कर। क्योंकि मुझे पाए बिना कोई भी साधु नहीं है। उसके पहले सिर्फ धोखा है मन का। कुछ लोग बुरे ढंग से अपने को धोखा देते हैं, कुछ लोग भले ढंग से अपने को धोखा देते हैं। कुछ लोग दूसरों को नुकसान करके अपने को धोखा देते हैं, कुछ लोग दूसरों को लाभ पहुंचाकर अपने को धोखा देते हैं। लेकिन धोखा तब तक जारी रहता है, जब तक कोई प्रकृति के गुणों के ऊपर न उठ जाए।

नहीं; चित्त ऐसी अवस्था में चाहिए जहां न बुरा खींचता हो, न भला खींचता हो। न आकर्षित करती हों बीमारियां--क्रोध, काम, लोभ; न आकर्षित करते हों तथाकथित फूल--सेवा, सदभाव, मंगल, कल्याण। नहीं; कोई भी आकर्षित न करता हो।

और जब दोनों में से कोई भी आकर्षित नहीं करता, तो चित्त ठहर जाता है। नहीं तो दौड़ता रहता है। कभी बुरे के लिए, कभी भले के लिए; कभी साधु होने के लिए, कभी असाधु होने के लिए; दौड़ जारी रहती है। चित्त तो रुकता ही तब है, जब दोनों से मुक्त हो जाता है। और जब चित्त दोनों से मुक्त होता है, तब एक नए आयाम में यात्रा शुरू होती है, अंतर्यात्रा या ऊर्ध्वयात्रा शुरू होती है। तब व्यक्ति प्रकृति के ऊपर उठकर परमात्मा को अनुभव कर पाता है।

इसलिए हमने इस देश में साधु को वह मूल्य नहीं दिया, जो संत को दिया। साधु और असाधु ठीक है; एक ही दुनिया के रहने वाले लोग हैं। एक के हाथ में लोहे की जंजीरें हैं। एक के हाथ में सोने की जंजीरें हैं। एक बुरे कामों में उलझा है, लेकिन व्यस्त है उसी तरह, जैसा दूसरा भले कामों में उलझा है और व्यस्त है, आक्युपाइड है। लेकिन दोनों की नजरें जमीन पर लगी हैं। दोनों में से कोई आकाश की तरफ नहीं देख रहा है।

हमने उसे संत कहा है, जो न भले में उलझा है, न बुरे में। जो उलझा ही नहीं है; जिसने जमीन से नजर ऊपर उठा ली; जिसने आकाश को देखा है; जिसने परमात्मा को पहचाना है।

इसका यह मतलब नहीं है कि परमात्मा को पहचानने के बाद वह साधु नहीं होगा। वह साधु होगा। वही साधु होगा। लेकिन बुनियादी अंतर पड़ जाएंगे।

जिसने परमात्मा को नहीं पहचाना, उसकी साधुता असाधुता के खिलाफ एक संघर्ष होती है, एक सतत संघर्ष। असाधु भीतर मौजूद रहता है। वह तमस भीतर मौजूद रहता है। सत्व की लड़ाई चलती रहती है।

साधु का मतलब है, जिसने क्रोध को भीतर दबाया है; अक्रोधी हुआ। जिसने चोरी को भीतर दबाया; अचोर हुआ। जिसने परिग्रह को दबाकर छोड़ा; अपरिग्रही हुआ। जिसने अहंकार को दबाया, और विनम्र हुआ। लेकिन वे सब भीतर बीमारियां कतारबद्ध मौजूद हैं, और प्रतीक्षा कर रही हैं कि कब आप विश्राम करिएगा! कब! कब थोड़ा-सा अवकाश लेंगे अपने संघर्ष से!

इसलिए साधु रात सोने तक में डरते हैं, क्योंकि सोने में विश्राम हो जाता है। और जिस-जिस को दिन में दबाया है, वह सब सपना बनकर छाती पर घूमने लगता है। इसलिए साधु जरा भी विश्राम लेने में डरते हैं कि कहीं भी जरा विश्राम लिया और वह संघर्ष अगर थोड़ा भी शिथिल हुआ, तो मालूम है उन्हें भलीभांति कि दुश्मन मौजूद है।

सब साधु अपने भीतर असाधु को दबाए हुए हैं। और जब तक असाधु मौजूद है, साधु सिर्फ सतह है। भीतर तो सब उबल रहा है लावे की तरह। ज्वालामुखी की तरह भीतर आग लगी है। अभी धुआं दिखाई नहीं पड़ रहा; अभी ज्वालामुखी फूटा नहीं; लेकिन इससे ज्वालामुखी नहीं है, ऐसा कहने की कोई जरूरत नहीं। ज्वालामुखी भीतर तैयारी कर रहा है।

संत हम उसे कहते हैं, जो असाधुता से लड़कर साधु नहीं है। संत हम उसे कहते हैं, जिसने परमात्मा को देखा, और परमात्मा को देखने से साधु हो गया। कोई संघर्ष नहीं है। किसी को दबाया नहीं, किसी से लड़ा नहीं। इसलिए संत विश्राम से नहीं डरेगा। डरने का कोई सवाल ही नहीं है। उसे विपरीत की संभावना ही नहीं है। उसके भीतर से, परमात्मा को देखने से, असाधुता गिर गई।

संत वह है, जिसकी असाधुता गिर गई; और साधुता पनपी, प्रकट हुई। और साधु वह है, जिसने असाधुता को दबाया, और साधुता को कल्टिवेट किया, साधुता का अभ्यास किया; साधुता को थोपा, आरोपित किया। साधु की तरह अपने को नियोजित किया, संयमित किया; अपने को बनाया, तैयार किया। साधु की तरह जिसने अपने ऊपर मेहनत की। इसमें आदमी की मेहनत है। आदमी की मेहनत ज्यादा दूरगामी नहीं हो सकती। आदमी हमेशा प्रकृति से हार जाएगा। आदमी प्रकृति से बहुत कम है।

मैंने आपसे कहा, अब मैं एक और छोटा वर्तुल आपसे बनाने को कहता हूं। मैंने कहा, एक बड़ा वर्तुल खींचें, वह परमात्मा है। उसमें एक छोटा वर्तुल खींचें, वह प्रकृति है। उसमें और एक छोटा-सा वर्तुल खींचें, वह आदमी है।

मैंने आपसे कहा कि प्रकृति परमात्मा में है, लेकिन परमात्मा प्रकृति में नहीं है। अब मैं आपसे दूसरी बात कहता हूं। आदमी प्रकृति में है, लेकिन प्रकृति आदमी में नहीं है। वह आदमी और छोटा वर्तुल है।

तो आदमी प्रकृति के खिलाफ लड़ेगा अगर, तो हारेगा। प्रकृति से लड़ नहीं सकता; वह बड़ी है, उससे विराट है। प्रकृति आदमी में है, छिपी पूरी भीतर, गहरे में। आदमी उसका छोटा-सा हिस्सा दबाए हुए है। इसलिए आप रोज प्रकृति से हारते हैं, लेकिन आपको खयाल नहीं आता कि आप अपने से बड़ी शक्ति से लड़ रहे हैं; हारेंगे ही।

जब आप क्रोध से हारते हैं, तो आपको पता है, आप किससे लड़ रहे हैं? आप सोचते हैं कि क्रोध छोटी-मोटी चीज है। क्रोध छोटी-मोटी चीज नहीं है; प्रकृति का हिस्सा है। उसकी जड़ें गहरी हैं; आपके खून से ज्यादा गहरी; आपकी हड्डियों से ज्यादा गहरी; आपकी बुद्धि से ज्यादा गहरी। इसलिए आप हजार दफे तय कर लेते हैं बुद्धि से कि अब क्रोध नहीं करूंगा, और जब क्रोध आता है, तो पता नहीं बुद्धि कहां फिंक जाती है, और क्रोध आ जाता है। क्रोध गहरा है। आप ऊपर-ऊपर निर्णय करते रहते हैं, भीतर प्रकृति आपकी फिक्र नहीं करती।

अगर प्रकृति से आपने अपने ही भरोसे जीतने की कोशिश की, तो आप रोज हारेंगे। कभी-कभी साधु मालूम पड़ेंगे, फिर असाधुता प्रकट हो जाएगी। फिर साधु बनेंगे, फिर असाधुता प्रकट हो जाएगी। प्रकृति आपको हराती ही रहेगी।

अगर प्रकृति को हराना है, तो आदमी के भरोसे नहीं, बड़े वर्तुल, परमात्मा के भरोसे हराया जा सकता है। आदमी के भरोसे नहीं। तब सहारा उसका लें; उस बड़े वर्तुल के साथ सहारा लें। उसके साथ तत्काल जीत हो जाती है। उसके साथ प्रकृति उसी तरह हार जाती है, जैसे आपके साथ प्रकृति से आप हार जाते हैं।

प्रकृति से आप लड़ेंगे, तो आप हारेंगे। अगर परमात्मा को लड़ाएंगे, तो प्रकृति हारी ही हुई है; कोई सवाल नहीं है। कोई सवाल नहीं है, क्योंकि परमात्मा और भी प्रकृति के गहरे में है।

आप, जैसा मैंने कहा, सागर, सागर पर उठी लहरें, लहरों पर तैरता हुआ एक तिनका, ऐसा समझ लें। सागर परमात्मा, लहरें प्रकृति, और आप एक छोटे-से तिनके हैं लहरों के ऊपर। आप लहरों से भी नहीं लड़ सकते हैं। लहर से भी हार जाएंगे। आप कितना ही निर्णय करें कि हम तो लहर के ऊपर रहेंगे; लहर की मर्जी कि कब नीचे गिरा दे। लेकिन सागर का सहारा ले लें, तो फिर लहर कुछ भी नहीं है। क्योंकि सागर के सामने लहर की क्या औकात! क्या वश!

परमात्मा में निष्ठा का अर्थ, या परमात्मा के प्रति परायण होने का अर्थ, या परमात्मा में समर्पित होने का इतना ही अर्थ है कि प्रकृति से मनुष्य की सीधी लड़ाई असंभव है। हम परमात्मा में समर्पित होते हैं, समर्पित होते ही लड़ाई समाप्त हो जाती है। परमात्मा को देखते ही प्रकृति शांत हो जाती है–देखते ही।

यह करीब-करीब ऐसा ही घटित होता है, जैसे कि स्कूल के क्लास के बच्चे खेल रहे हैं, शोरगुल कर रहे हैं, और शिक्षक भीतर आया, और सब शांति हो गई। बच्चे अपनी जगह बैठ गए हैं; उन्होंने किताबें खोल लीं; अपना काम करने लगे। अभी शोरगुल था, अब सब शांत हो गया।

ठीक ऐसे ही परमात्मा की तरफ आंख उठते ही प्रकृति एकदम शांत हो जाती है। मालिक आ गया। प्रकृति का कोई उपाय नहीं रह जाता। लेकिन आप! आप तो प्रकृति के एक छोटे-से टुकड़े हैं, तिनके, और प्रकृति से लड़ने की कोशिश कर रहे हैं।

सात्विक होने की चेष्टा बिना धार्मिक हुए, बिना परमात्मा में समर्पित हुए, प्रकृति से लड़ने की चेष्टा है। इन तीनों के पार है प्रभु। जब आपके चित्त में तीन चीजें न हों, तब आपका चित्त परमात्मा की तरफ उठेगा; सत्व न हो, तम न हो, रजस न हो। इनको थोड़ा-सा समझ लें कि कैसी स्थिति होगी, जब ये तीनों न होंगे।

बुरा करने की भावना न हो, भला करने की भावना न हो, जब ये दोनों भावनाएं नहीं होतीं, तो वह जो करने वाली ऊर्जा है, वह जो रजस है, वह जो शक्ति है...। ये दो काम करने के केंद्र बिंदु हैं। वह जो शक्ति है, जो करती है, जब ये दोनों नहीं रहते--बुरा करने का भाव नहीं, भला करने का भाव नहीं--तब वह जो शक्ति है, वह कहां जाए? और शक्ति तो कहीं जाएगी ही। अगर आप मार्ग न देंगे, तो भी जाएगी। अब न बुरे की तरफ जा सकती है, न भले की तरफ जा सकती है, तो अब कहां जाए?

जब दोनों दिशाएं बंद हो जाती हैं, तो शक्ति ऊपर की तरफ, तीसरे, थर्ड डायमेंशन में, तीसरी यात्रा पर उठने लगती है। और वह तीसरी यात्रा पर परमात्मा है, जहां न शुभ है, न अशुभ है। जहां दोनों नहीं, जहां द्वंद्व नहीं; जहां अद्वय है, जहां अद्वंद्व है, जहां अद्वैत है। उसकी एक झलक, और सारी प्रकृति शांत हो जाती है।

फिर कृष्ण कहते हैं कि तू उस झलक को पा ले और फिर तू बात करना साधुता की। करने की जरूरत न रहेगी; तू साधु हो जाएगा। तू साधु हो ही जाएगा। उसकी नजर पड़ी, कि तू बदला; तेरी नजर उस पर पड़ी, कि तू बदला। एक दफा उस दर्शन को...।

यह दर्शन शब्द बड़ा अदभुत है। इसका अर्थ है, एक दफा उसका दीदार, उसका दर्शन, एक दफे वह दिख जाए, बस। और उसे देखने के लिए इन तीन के ऊपर जाना जरूरी है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, मैं इन तीनों के पार हूं। इन तीनों तक प्रकृति है, ऐसा तू जानना। और जब इन तीनों के पार उठे, तब तू मुझे देख, और जान पाएगा।

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।। 14 ।।
यह अलौकिक अर्थात अति अदभुत त्रिगुणमयी मेरी योगमाया बड़ी दुस्तर है, परंतु जो पुरुष मेरे को ही निरंतर भजते हैं, वे इस माया का उल्लंघन कर जाते हैं अर्थात संसार से तर जाते हैं।

दुस्तर है, कठिन है, आर्डुअस है, अलौकिक है, बड़ी शक्ति है प्रकृति की, क्योंकि है तो परमात्मा की ही शक्ति। कठिन है, क्योंकि हम उसी शक्ति से निर्मित हैं, हमारा सब कुछ। सिर्फ हमारे भीतर जो परमात्मा है, उसे छोड़कर।

हमारा शरीर, हमारा मन, हमारी बुद्धि, हमारा सब कुछ प्रकृति से ही निर्मित है। जब हम मिट्टी से लड़ते हैं, तो हम मिट्टी को ही लड़ा रहे हैं। हम प्रकृति से ही प्रकृति को लड़ा रहे हैं। तो हम न जीत पाएंगे। बहुत दुस्तर हो जाएगी बात।

कृष्ण कहते हैं, विचित्र है, अदभुत है, अलौकिक है, असाधारण है यह शक्ति! क्योंकि शक्ति तो आखिर परमात्मा की ही है। माना कि कितनी ही छोटी लहरें हों, फिर भी हैं तो सागर की। यह सोचकर कि लहरें हैं, उनसे जूझ मत जाना। हमें डुबाने को तो वे लहरें भी काफी हैं। क्योंकि हम तो लहरों में भी और छोटी लहर हैं। कठिन है, अगर आदमी

अपने बलबूते लड़े। कठिन है, अगर अपने पर ही भरोसा रखकर लड़े। अगर सोचता हो कि मैं ही पार कर लूंगा, तो कठिन है।

लेकिन कृष्ण कहते हैं, कठिन नहीं भी है, संभव भी है, अगर कोई मेरा सहारा ले ले। अगर कोई दिन-रात मुझे ही भजे, अगर कोई दिन-रात मुझको ही समर्पित रहे, अगर कोई मेरे ही हाथ में सारी बात छोड़ दे और कहे कि ठीक, अब तुम्हीं नाव को खेओ। अब मैं छोड़ता हूं; अब तुम मुझे ले चलो, जहां ले चलना हो। अगर कोई मुझ पर भरोसा कर सके, ट्रस्ट कर सके, तो बड़ी सरल है।

विराट शक्ति के साथ भरोसा हो, तो लड़ाई बहुत आसान है। खुद आदमी लड़ने की कोशिश करे, तो लड़ाई बहुत कठिन है; जीतना करीब-करीब असंभव है; हारना ही सुनिश्चित है। विराट के साथ हार असंभव है; विराट के साथ जीत सुनिश्चित है।

लेकिन विराट के हाथों में अपने को छोड़ने के लिए कृष्ण कहते हैं, दिन-रात मुझे ही भजे। क्या मतलब होगा दिन-रात भजने का? क्या कोई आदमी कृष्ण-कृष्ण, कृष्ण-कृष्ण कहता रहे? कई लोग कह रहे हैं। कुछ दिखाई नहीं पड़ता कि कुछ हुआ हो।

नहीं; भजना इतनी साधारण बात नहीं है। इसका यह मतलब भी नहीं है कि कोई कृष्ण-कृष्ण न कहे। भजना बहुत भाव की दशा है। भजने का अर्थ है, एक अंतःस्मरण। जहां भी, जो भी दिखाई पड़ जाए, उसमें कृष्ण का ही स्मरण। फूल दिखे, तो पहले फूल का खयाल न आए, पहले खयाल कृष्ण का आए। फिर कृष्ण फूल में खिल जाए; फिर फूल कृष्णरूप हो जाए। भोजन को बैठें, तो पहले खयाल भोजन का न आए, कृष्ण का आए। पेट में भूख लगे, तो पहले खयाल यह न आए कि मुझे भूख लगी है; पहले खयाल आ जाए, कृष्ण को भूख लगी है। ऐसा रोएं-रोएं में, उठते-बैठते, चलते-सोते; सांझ जब रात बिस्तर पर गिरने लगें, तो ऐसा खयाल न आए कि मैं सोने जा रहा हूं; ऐसा खयाल आए कि मेरे भीतर वह जो कृष्ण है, अब विश्राम को जाता है।

और यह शब्द से नहीं, यह भाव से। मैं तो आपसे कहूंगा, तो शब्द से ही कहूंगा। लेकिन यह भाव से खयाल आए। घर में आपके एक बच्चा पैदा हो, तो ऐसा न लगे कि बच्चा पैदा हुआ है; ऐसा लगे कि कृष्ण आए, या परमात्मा आया। कोई भी नाम से कोई अंतर नहीं पड़ता, क्योंकि सभी नाम उसी के हैं। लेकिन भाव यह हो कि परमात्मा है। सभी स्थितियों में--सुख में, दुख में, विपदा में, संपदा में--सभी स्थितियों में उसका ही स्मरण बना रहे। सभी कुछ उसको ही समर्पित हो जाए।

ऐसा जो दिन-रात भजे कोई, तो विराट से सम्मिलन शुरू हो जाता है। क्योंकि हमारी चेतना उसी तरफ बहने लगती है, जिस तरफ हमारी स्मृति होती है। स्मृति चेतना के लिए चैनेलाइजेशन है।

जैसे हम नहर बनाते हैं नदी में। नहर नहीं बनाते, तो नदी बहती है, जहां उसे बहना होता है। नहर बना देते हैं, तो फिर नदी नहर से बहती है। और जहां हमें ले जाना होता है, नदी वहां पहुंच जाती है।

स्मरण या जिसे संतों ने स्मृति कहा है, सुरति कहा है, बुद्ध ने राइट माइंडफुलनेस कहा है, सम्यक स्मृति; या और कोई सुमिरन या और भी नाम हैं हजार। भाव में प्रवेश कर जाए यह बात। सुबह जब नींद खुले, तो ऐसा न लगे कि मैं जग रहा हूं; ऐसा लगे कि मेरे भीतर परमात्मा जागा। और यह शब्द से नहीं; ऐसा आप सुबह उठकर कहें कि मेरे भीतर परमात्मा जागा, उससे बहुत अर्थ नहीं है। क्योंकि कहने का मतलब ही यह है कि आपको भाव पैदा नहीं हो रहा है। भाव पैदा हो, तो कहने की जरूरत नहीं है।

भाव और शब्द में फर्क है। शब्द धोखा देते हैं। एक आदमी बार-बार किसी से कहता है, मैं बहुत प्रेम करता हूं; मैं बहुत प्रेम करता हूं। तब वह धोखा देने की कोशिश कर रहा है। क्योंकि जब प्रेम होता है, तो प्रेम शब्द-शून्य होता है; कहने की भी जरूरत नहीं होती पूरे प्राणों से प्रकट होता है; रोएं-रोएं से प्रकट होता है।

मां बच्चे से कह भी नहीं सकती कि मैं तुझे प्रेम करती हूं। कैसे कहेगी! बच्चा भाषा भी नहीं जानता। फिर भी बच्चा पहचानता है। रोएं-रोएं से, मां के चारों तरफ, प्रेम बहने लगता है। कोई भाषा नहीं है।

और बड़े मजे की बात है, मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि अगर बच्चे को मां के पास बड़ा न किया जाए, तो फिर वह जिंदगी में किसी को भी प्रेम न कर पाएगा--किसी को भी। और मजा यह है कि मां कभी बच्चे से कहती नहीं कि मैं तुझे प्रेम करती हूं, क्योंकि वह तो भाषा भी नहीं जानता; उससे कहने का कोई उपाय नहीं है। लेकिन उसे छाती से लगा लेती है। भाव की कोई धारा दोनों की छातियों के बीच आदान-प्रदान हो जाती है। उसकी आंखों में झांकती है। भाव की कोई धारा एक-दूसरे की आंख से उतर जाती है। उसका हाथ हाथ में लेती है, और भाव की कोई धारा हाथ-हाथ के पार चली जाती है। शब्द नहीं।

इसलिए मनोवैज्ञानिक यह भी कहते हैं कि कोई भी व्यक्ति अपनी पत्नी से तृप्त नहीं हो पाएगा। उसका कारण है कि प्रत्येक व्यक्ति उस प्रेम को खोज रहा है, जो उसने मां से पाया था। मनोवैज्ञानिक इसको ऐसा कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी पत्नी में अपनी मां को खोज रहा है, जो कि बहुत मुश्किल मामला है। मिल नहीं सकता! इसलिए कभी तृप्ति नहीं हो सकती।

वह जो अनूठा प्रेम था--शब्दहीन, निःशब्द, मौन; जाना था जिसे, किसी ने कहा नहीं था कभी; किसी ने दावा नहीं किया था; लेकिन फिर भी बहा था और पहचाना था--उसी प्रेम की तलाश चल रही है जिंदगीभर। वह प्रेम फिर दुबारा नहीं मिलेगा, इसलिए बेचैनी है, इसलिए कठिनाई है, इसलिए अड़चन है।

मां की खोज चल रही है। वह नहीं मिलती। वह नहीं पकड़ में आती फिर कभी। वह कहां मिलेगी? वह कैसे मिल सकती है? उसका उपाय भी न के बराबर है। फिलहाल तो नहीं है। पर उसने तो कभी कहा नहीं था। पत्र नहीं लिखे थे; कोई प्रेम-पत्र नहीं लिखे थे, बड़े दावे नहीं किए थे। लेकिन फिर दावे करने वाले लोग आते हैं। दावे बहुत होते हैं, और भीतर कुछ भी नहीं होता।

सुना है मैंने कि एक प्रेमी अपनी प्रेमिका से कह रहा है कि अगर आग भी बरसती हो, तो भी तुझे बिना देखे मैं नहीं रह सकता। अगर प्रलय भी आ जाए, तो भी तुझे बिना देखे मैं नहीं रह सकता। अगर एटम बम भी बरसता हो, तो भी मैं तुझे देखे बिना नहीं रह सकता। फिर उसकी प्रेयसी ने, जब वह विदा हो रहा था, उससे पूछा कि कल आने वाले हो या नहीं? उसने कहा कि देखो; अगर सांझ वर्षा न हुई, तो मैं जरूर आ जाऊंगा।

वह जो बेचारा कह रहा था, प्रलय आ जाए, आग बरसती हो, वह कह रहा है, कल अगर वर्षा न हुई, तो जरूर आ जाऊंगा! दावे हैं फिर, लेकिन दावों के पीछे कोई भाव नहीं है।

यह जो स्मरण है, यह जो प्रभु-परायण होने की बात है, यह जो कृष्ण कहते हैं, मुझे ही जो भजे चौबीस घंटे, इसका अर्थ? इसका अर्थ है, जो भाव से मुझमें जीए। उठे-बैठे कहीं भी, भाव से मुझमें रहे। चले-फिरे कहीं भी, भाव से मुझमें रहे। करे कुछ भी, भाव से मुझमें रहे। एक अंतर्धारा भाव की मेरी तरफ बहती रहे, बहती रहे, बहती रहे। धीरे-धीरे वह नहर खुद जाती है, जिससे व्यक्ति और परमात्मा के बीच सेतु बन जाता है।

और एक बार वह सेतु निर्मित हो जाए, फिर इस प्रकृति से ज्यादा निर्बल कोई चीज नहीं है। यह बहुत निर्बल है। बहुत दीन है प्रकृति। लेकिन जब तक वह सेतु न बने, महाशक्तिशाली है प्रकृति। क्योंकि ये सब तुलनात्मक वक्तव्य हैं। हमारी तुलना में प्रकृति बहुत शक्तिशाली है। परमात्मा की तुलना में कोई सवाल ही नहीं उठता। कोई प्रश्न ही नहीं है।

इसलिए आदमी अगर अपने पर भरोसा करे, तो उलझाएगा अपने को। और जब से आदमियत ने, पूरी आदमियत ने अपने पर भरोसा करना शुरू किया है, और जब से ऐसा लगा है कि ईश्वर को बीच में आने की कोई भी जरूरत नहीं है, हम काफी हैं; मैन इज़ इनफ, पर्याप्त है आदमी; तब से हमने आदमी की समस्याएं करोड़ गुना गहरी और गहन कर दी हैं। और सुलझाव कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। रोज उलझाव बढ़ता चला जाता है।

एक समस्या सुलझाते हैं, तो सुलझाने में पच्चीस नई समस्याएं खड़ी कर लेते हैं। उनको सुलझाने जाते हैं कि और हरेक समस्या से पच्चीस समस्याएं खड़ी होती हैं। सारा मनुष्य एक समस्या हो गया है; सिर्फ एक समस्या; जिसे कहीं से भी छुओ, और समस्या! जैसे सागर को कहीं से भी चखो, और नमकीन, नमक। ऐसे आदमी को कहीं से भी छुओ, और समस्याएं निकल आती हैं। कुछ भी करो, और समस्याएं। सब तरफ समस्याएं फैल गई हैं। क्या बात हो गई है?

असल में प्रकृति से लड़कर हम जो कर रहे हैं, उससे यही होना निश्चित था। प्रकृति दुस्तर है, उससे लड़ा नहीं जा सकता। उससे लड़कर हम सिर्फ अपने ऊपर मुसीबत बुला सकते हैं। हां, थोड़ी देर हम अपने को भ्रम में रख सकते हैं कि हम लड़ रहे हैं, और जीत जाएंगे। हम थोड़ी देर आशाएं बांध सकते हैं। लेकिन सब आशाएं धूल-धूसरित हो जाती हैं; सब मिट्टी में मिल जाती हैं।

फिर भी आदमी अजीब है, अब तक उसे खयाल नहीं आया। और हम एक-दूसरे को हिम्मत बढ़ाए चले जाते हैं। बाप बेटे को कहता है, कोई फिक्र नहीं; मैं नहीं जीता, तू जीत जाएगा। जरा परिस्थितियां ठीक न थीं। शिक्षक विद्यार्थी को कहे जाता है, कोई फिक्र नहीं। हम नहीं जान पाए कि सत्य क्या है, लेकिन तुम जान लोगे, क्योंकि अब ज्ञान और काफी विकसित हो गया है।

सुना है मैंने, एक आदमी एक रास्ते से गुजर रहा है, एक गरीब गधे को लिए हुए है। उसके ऊपर सामान काफी लादा हुआ है। जितना गरीब गधा हो, उतना ज्यादा सामान लाद देते हैं लोग! लेकिन रास्तेभर के लोग बड़े हैरान हैं, क्योंकि वह चिल्ला-चिल्ला कर कई नाम ले रहा है, और गधा एक है। कभी कहता है, शाबाश कल्लू! कभी कहता है, शाबास हीरा! कभी कहता है, शाबास माणिक! गधा एक है, और नाम इतने ले रहा है!

एक आदमी का आखिर धीरज टूट गया और उसने जाकर पास पूछा कि माफ करना, इस गधे का नाम क्या है? उसने कहा, इसका नाम कल्लू है। तो इतने नाम क्यों ले रहे हो? उसने कहा, ताकि इसको भरोसा बना रहे कि और भी गधे लदे हैं। और सब चल रहे हैं, तो मैं भी क्यों परेशान! चलता रहूं। उस कुम्हार ने कहा कि जरा मास-साइकोलाजी का उपयोग कर रहा हूं, भीड़ का मनोविज्ञान।

अगर गधे को पता चले कि अकेले कल्लू ही चल रहे हैं, तो बहुत मुश्किल में पड़ जाएंगे। वे बैठ जाएं, कि नहीं चलते! कोई दुनिया में नहीं चल रहा है, हम ही क्यों परेशान हों! लेकिन चारों तरफ गधे चल रहे हैं--माणिक भी, हीरा भी--सब चल रहे हैं, तो कल्लू भी चल रहे हैं। वे प्रसन्न हैं, क्योंकि अकेले तो लदे नहीं; सब लदे हैं। और जरूर कहीं पहुंच जाएंगे।

कहीं पहुंचना नहीं है। कहीं पहुंचना नहीं है।

अरब में एक छोटी-सी कहावत है। एक बूढ़े ऊंट से किसी ने पूछा कि तुम पहाड़ पर जाते वक्त ज्यादा आनंद अनुभव करते हो कि पहाड़ से नीचे जाते वक्त? उसने कहा, ये दोनों बातें फिजूल हैं। असली सवाल यह है कि मेरे ऊपर बोझ है या नहीं। ऊपर-नीचे का कोई सवाल नहीं है। मेरा दोनों वक्त एक ही काम रहता है। चाहे पहाड़ के नीचे जाऊं, तो बोझ ले जाता हूं। चाहे पहाड़ के ऊपर जाऊं, तो बोझ ले जाता हूं। उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। सदा बोझ ही ढोता हूं।

लेकिन हमें फर्क लगता है। कभी हम जब सफलता की तरफ जा रहे होते हैं, तो बोझ हम आसानी से ढोते हैं, क्योंकि हमें लगता है, पहाड़ उतार पर है। जल्दी पहुंच जाते हैं। पर हमें पता नहीं कि पहाड़ के नीचे जाकर करना क्या है? फिर नया बोझ लादना है, फिर पहाड़ पर चढ़ना है!

हर सफलता नई असफलता का बोध देगी। हर सफलता नई सफलता के लिए यात्रा बनेगी। हर सफलता पड़ाव होगी, मंजिल तो नहीं। मगर जब सफल होता है मन, तो हम ज्यादा बोझ ढो लेते हैं; और जब असफल होता है, तो जरा पीड़ित अनुभव करते हैं। लेकिन हम जिंदगीभर करते क्या हैं? शाबाश कल्लू! शाबास हीरा! शाबास माणिक! और चले जा रहे हैं।

यह जो हमारी, आदमी की आज की दशा है। और हम सब एक-दूसरे को कहे चले जाते हैं कि बढ़े जाओ, मंजिल बहुत पास है। बढ़े जाओ, मंजिल बहुत पास है। न हमें कोई मंजिल मिली है; न जिनसे हम कह रहे हैं, उन्हें कोई मिलेगी; लेकिन चलाए चले जाते हैं।

कृष्ण कह रहे हैं, मुझको परायण को उपलब्ध हो जा, मेरे प्रति समर्पित हो जा। इस दौड़ से बच। ये तीन प्रकृति के गुण और यह प्रकृति का पूरा का पूरा सम्मोहन का जाल, यह मेरी योगमाया है। यह मेरे हिप्नोसिस, यह मेरे सम्मोहन की शक्ति है। और इस सब में सारा जगत चल रहा है और दौड़ा चला जा रहा है। शाबास कल्लू! और दौड़े चले जा रहे हैं। रुक। और तू मेरे स्मरण में लग। अगर तुझे सम्मोहन के बाहर आना है, तो परमात्मा के स्मरण में लग।

परमात्मा का सम्मोहन डी-हिप्नोटाइजिंग है; वह सम्मोहन को तोड़ता है, वह एंटीडोट है। देखें, उदाहरण के लिए मैं आपको कहूं कि वह कैसे एंटीडोट है।

रास्ते पर एक खूबसूरत स्त्री आपको दिखाई पड़ी। आपने अपने मन में कहा, शाबाश कल्लू! और चले। चल पड़े आप। उस वक्त थोड़ा स्मरण करें। स्मरण करें कि वह जो स्त्री है सामने, वहां भी कृष्ण हैं। और स्मरण करें अपने भीतर कि वहां जो, जिसको आप कल्लू कह रहे हैं, वहां भी कृष्ण हैं। और फिर देखें कि बीच में वह जो सम्मोहन पैदा हुआ था वासना का, वह एकदम गिर जाता है या नहीं!

फौरन गिर जाएगा। अचानक आप पाएंगे कि कोई अंधेरा बीच से उठ गया; कोई पर्दा बीच से हट गया। कोई चीज बीच से टूट गई, सरक गई, तत्काल।

एक आदमी ने आपको गाली दी है और आपके भीतर क्रोध का धुआं उठा। वह सम्मोहन है प्रकृति का। बटन दबा दी उसने आपकी। बस, अब आपका पंखा भीतर चलने लगा। उस वक्त जरा स्मरण करें, उस ओर भी कृष्ण हैं, इस ओर भी कृष्ण हैं। और तब आप अचानक पाएंगे कि भीतर क्रोध जो पंख फैलाता था उड़ने के लिए, उसने पंख सिकोड़ लिए।

डी-हिप्नोटाइजिंग है स्मरण। परमात्मा का स्मरण सम्मोहन- तोड़क है। और अगर परमात्मा को भूले और अपना ही स्मरण रखा कि मैं ही सब कुछ हूं, तो यह मैं जो है, यह बहुत मादक है। और यह सम्मोहन को गहन करता है, और मूर्च्छित करता है, बेहोश करता है। फिर हम दौड़े चले जाते हैं। यह तीन का खेल चलता रहता है चारों तरफ। यह प्रकृति की तीन की लीला चलती रहती है; ट्राएंगल; हम दौड़ते रहते हैं उसमें।

इससे कब ऊपर उठेंगे? इससे उठने का द्वार कहां है? इससे उठने का द्वार है, प्रभु-स्मरण। कहीं से भी स्मरण मिलता हो! कहीं से भी स्मरण मिलता हो!

लेकिन हमारी तो बड़ी अजीब हालतें हैं। यहां कुछ संन्यासी मेरे नाम के साथ भगवान लगाकर चिल्ला देते हैं। मैं चुप रह जाता हूं यह सोचकर कि आज नहीं कल वे मेरा नाम भी छोड़ देंगे और सिर्फ भगवान का नाम ही उच्चारित करेंगे। क्योंकि उसमें भगवान शब्द झूठ नहीं है, उसमें मेरा नाम ही झूठ है।

लेकिन मेरे पास चिट्ठियां आती हैं लोगों की कि आप लोगों को मना क्यों नहीं करते कि भगवान लगाना बंद करें; सिर्फ रजनीश कहें; आचार्य रजनीश कहें; भगवान लगाना बंद करें। लोगों की चिट्ठियां आती हैं! वे समझते हैं बहुत होशियार लोग हैं, जो मुझे चिट्ठियां भेजते हैं।

एक आदमी ने चिट्ठी नहीं भेजी कि वह कहता कि रजनीश कहना बंद कर दें, क्योंकि दोनों बात एक साथ नहीं हो सकतीं। जब तक रजनीश हूं, तब तक भगवान होना मुश्किल। जब भगवान हो जाऊं, तो रजनीश होना मुश्किल। ये दोनों कंट्राडिक्टरी हैं।

लेकिन वे चिट्ठियां, होशियार लोग जो हैं–होशियार का मतलब कि जिनके पास कोई यूनिवर्सिटी का कागज का टुकड़ा वगैरह है–वे फौरन चिट्ठी भारी...। मुझे कई चिट्ठियां, दस-पांच चिट्ठियां आईं कि फौरन बंद करवाइए! यह क्या हो रहा है?

अक्ल के तो हम जैसे दुश्मन हैं। लट्ठ लेकर अक्ल के पीछे पड़े हुए हैं। चलो, यही बहाना अच्छा; भगवान का ही तो नाम ले लेते हैं। खूंटी मेरी भी सही, तो क्या हर्जा! खूंटी तुड़वा लेंगे। खूंटी कोई बड़ी चीज नहीं है। भगवान जैसा भजन रखोगे, खूंटी कितनी देर बचेगी! खूंटी गिर ही जाएगी। लेकिन नहीं; जिनको यह तकलीफ होती है, उनकी तकलीफ का कारण है। स्मरण जैसी चीज का उन्हें कोई पता नहीं है।

एक और मजे की बात है कि मैं सदा आपके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता रहा। तब किसी ने मुझे चिट्ठी लिखकर नहीं भेजी कि हमको आप परमात्मा क्यों कहते हैं? किसी आदमी ने चिट्ठी लिखकर नहीं भेजी मुझे कि आप हमको परमात्मा क्यों कहते हैं? मैंने बहुत दिन कहकर देख लिया। मैंने सोचा कि वह कुछ सुनाई नहीं पड़ता आपको। मैंने बंद कर दिया।

अब यह दूसरे छोर से इन लोगों ने शुरू कर दिया। यह छोर दूसरा है; बात वही है। लेकिन अब उनको बड़ी बेचैनी हो रही है। उन्हीं सज्जनों को, जिनको कि मैं निरंतर कहता रहा कि आपके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। उन्होंने बड़े मजे से स्वीकार किया था। उनको अब बड़ी अड़चन हो रही है कि ये भगवान का नाम क्यों ले रहे हैं?

स्मरण का हमें कोई पता नहीं है। अच्छा ही है, इस बहाने आपके कान में पड़ गया।

कल तो एक मित्र ने आकर कहा कि अगर अब दोबारा इन्होंने लिया, तो मैं सुनने ही नहीं आऊंगा। बहुत मजेदार है। वे मुझे सुनने आते हैं। कहते हैं, सुनना मुझे प्रीतिकर है। आपकी बात ठीक लगती है। लेकिन यह भर नहीं होना चाहिए, यह भगवान का नाम।

भगवान से ऐसी क्या दुश्मनी है? मुझसे तो दुश्मनी नहीं मालूम पड़ती उनकी। क्योंकि कहते हैं, आपको सुनने में अच्छा लगता है। हम रोज आना चाहते हैं। भगवान से दुश्मनी मालूम पड़ती है।

मत आएं। बिलकुल न आएं। और पिछली दफे भी जो आए हों, उसको बिलकुल भूल जाएं। क्योंकि वह बेकार है। क्योंकि मैं जो बोल रहा हूं, वह सिर्फ इसलिए बोल रहा हूं कि मुझमें ही नहीं सब जगह, जहां भी कभी कुछ दिखाई पड़े, भगवान ही दिखाई पड़े; उसके लिए बोल रहा हूं। और मुझे सुनने का कोई प्रयोजन नहीं है। आप बिलकुल मत आएं। क्या जरूरत है? यहां कोई शाबाश कल्लू, आपको कोई दौड़ तो लगवानी नहीं है मुझे।

ओशो – गीता-दर्शन – भाग 3
जीवन अवसर है— अध्याय -7 (प्रवचन—6)

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः।।15।।
चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ।।16।।
माया द्वारा हरे हुए ज्ञान वाले और आसुरी स्वभाव को धारण किए हुए तथा मनुष्यों में नीच और दूषित कर्म करने वाले मूढ़ लोग तो मेरे को नहीं भजते हैं।

और हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ अर्जुन, उत्तम कर्म वाले अर्थार्थी, आर्त, जिज्ञासु और ज्ञानी अर्थात निष्कामी, ऐसे चार प्रकार के भक्तजन मेरे को भजते हैं।

कौन करता है प्रभु का स्मरण, इस संबंध में कृष्ण ने कुछ बातें कही हैं।

मनुष्य जाति को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। और जब दुनिया से सारे वर्ग मिट जाएंगे, तब भी वही विभाजन अंतिम सिद्ध होगा।

बहुत तरह से आदमी को हम बांटते हैं। धन से बांटते हैं; गरीब है, अमीर है। शिक्षा से बांटते हैं; शिक्षित है, अशिक्षित है। चमड़ी के रंगों से बांटते हैं; गोरा है, काला है। हजार तरह से आदमी को हम बांटते हैं। लेकिन जो परम विभाजन है, जो अंतिम विभाजन है, वह न तो चमड़ी से तय होता, न धन से तय होता, न यश से तय होता, न शिक्षा से तय होता। ये सब बातें बहुत ऊपर और बहुत बाहर हैं, बहुत सतह पर। अंतिम विभाजन तो एक ही है, वे जो प्रभु-उन्मुख हैं, और वे जो प्रभु-उन्मुख नहीं हैं। वे जिनकी आंखें परमात्मा की तरफ उठ गई हैं; और वे जो पीठ किए हुए परमात्मा की तरफ खड़े हुए हैं।

कृष्ण कहते हैं, मूढ़जन मुझे नहीं भजते हैं।

कठिन लगेगा यह शब्द। और कृष्ण किसी को मूढ़ कहें, तो लगेगा, गाली दे रहे हैं। लेकिन जहां तक कृष्ण का संबंध है, वे केवल एक तथ्य की सूचना कर रहे हैं। एक फैक्ट। और मूढ़ कहना गाली नहीं है, मूढ़ कहना केवल एक तथ्य की घोषणा है।

सच ही वह आदमी मूढ़ है, जो परमात्मा की तरफ पीठ किए खड़ा है। इसलिए नहीं कि इससे परमात्मा की कोई हानि है और इसलिए कृष्ण नाराज होकर उसे मूढ़ कह रहे होंगे। बल्कि इसलिए कि वह अपना ही घात कर रहा है, आत्मघात कर रहा है।

मूढ़ किसे कहते हैं? मूढ़ विशेष शब्द है। मूढ़ का अर्थ सिर्फ मूर्ख नहीं होता। इसे थोड़ा समझ लेना पड़ेगा। मूढ़ पारिभाषिक शब्द है। अगर मनसविद से पूछेंगे, तो मनसविद जिसे ईडियट कहता है, उसे संस्कृत में मूढ़ कहा जाता है। उसका मतलब फुलिश नहीं है, उसका मतलब मूर्ख नहीं है। क्योंकि मूर्ख और बुद्धिमान में जो अंतर होता है, वह गुणात्मक होता है, डिग्री का होता है। जिसको आप मूर्ख कहते हैं, वह थोड़ा कम बुद्धिमान है; बस। और जिसको आप बुद्धिमान कहते हैं, वह थोड़ा कम मूर्ख है; बस। उन दोनों के बीच जो अंतर है, वह मात्रा का है, गुण का नहीं है। क्वालिटी का नहीं है, क्वांटिटेटिव है।

फिर दो शब्द और हैं, एक जिसको हम कहते हैं मूढ़; और दूसरा, जिसको हम कहते हैं मेधावान। उनके बीच जो अंतर है, वह क्वालिटी का है, गुण का है, क्वांटिटी का नहीं है।

मूढ़ से मतलब है, ऐसा आदमी, जो जिस शाखा पर बैठा हो, उसी को काटता हो।

कालिदास की कथा हमने पढ़ी है। वे मूढ़ के प्रतीक हैं। बैठे हैं वृक्ष पर, शाखा को काट रहे हैं। और जिस शाखा को काट रहे हैं, उसी पर बैठे हुए हैं। गिरेंगे ही। और कोई और जिम्मेवार न होगा। खुद ही शाखा को काट रहे हैं। और जितनी शाखा कटती है, कालिदास उतने प्रसन्न हो रहे होंगे, क्योंकि सफलता मिल रही है। हालांकि सफलता कुल इसमें मिल रही है कि वे थोड़ी देर में गिरेंगे और हाथ-पैर तोड़ लेंगे।

मूढ़ से मतलब है, ऐसा व्यक्ति, जो आत्मघात में लगा हो; स्युसाइडल। मेहनत भी करता हो, तो अपने को ही नुकसान पहुंचाता हो। श्रम भी करता हो, तो अपना ही घात करता हो।

निश्चित ही, परमात्मा के खिलाफ जो पीठ करके खड़े हैं, उनसे बड़ा मूढ़ कोई भी नहीं हो सकता। क्योंकि शाखाओं पर से कोई काटकर गिर भी पड़े, तो कितना नुकसान होने वाला है! लेकिन परमात्मा की तरफ पीठ करके खड़ा हुआ आदमी तो सब भांति के नुकसान में पड़ जाएगा।

इसलिए कृष्ण जब मूढ़ कहते हैं, तो आप मत सोचना कि गाली दे रहे हैं। वे केवल सूचना दे रहे हैं कि ऐसे व्यक्ति को हम मूढ़ कहते हैं। क्योंकि परमात्मा है हमारी परम संपदा। उसके बिना हम दरिद्र ही रहेंगे, चाहे हम कितनी ही संपत्ति इकट्ठी कर लें। और परमात्मा है परम यश। उसके बिना हम पदहीन ही रहेंगे, क्योंकि वह है परम पद, चाहे हम कितने ही बड़े पदों पर पहुंच जाएं। और परमात्मा के बिना हम कहीं भी नहीं पहुंच सकते हैं, चाहे हम कितनी ही यात्रा करें। हम आखिर में पाएंगे कि हम वहीं खड़े हैं, जहां जन्म ने हमें खड़ा किया था। मौत के वक्त हम वहीं खड़े हुए मिलेंगे। हमारी सब दौड़ व्यर्थ जाने वाली है।

असल में परम शक्ति को इनकार करना वैसा है, जैसा मैंने सुना है कि एक बेल एक भवन पर चढ़ती थी। लेकिन एक दिन एक नास्तिक से उस बेल का मिलना हो गया और उस नास्तिक ने कहा कि यह तेरी मजबूरी है कि तुझमें फूल आते हैं। यह कोई तेरा गौरव नहीं है।

बेल को तो पता ही न था। वह तो फूल खिलते थे, तो आनंद से नाचती थी; पक्षियों को निमंत्रण देती थी। सूरज की किरणें आती थीं, तो सुगंध बिखेरती थी। उस नास्तिक ने कहा, पागल, यह तेरी कोई गरिमा और कोई गौरव नहीं है। तू तो मजबूर है बढ़ने को। फूल खिलाने के लिए मजबूरी है तेरी। यह तेरी गुलामी है। तू चाहे तो भी फूल खिलना रुक नहीं सकता।

जैसा कि सार्त्र ने कहा है। सार्त्र का प्रसिद्ध वचन है, मैन इज़ कंडेम्ड टु बी फ्री। शायद स्वतंत्रता के साथ कंडेम्ड का प्रयोग दुनिया में किसी दूसरे आदमी ने इसके पहले नहीं किया था। सार्त्र कह रहा है, मनुष्य स्वतंत्र होने के लिए बाध्य है। या कहना चाहिए, मनुष्य स्वतंत्र होने के लिए निंदित है। उसे स्वतंत्र होना ही पड़ेगा। स्वतंत्रता उसकी गुलामी है। कोई उपाय नहीं है; स्वतंत्र होना ही पड़ेगा। जबर्दस्ती स्वतंत्र किया जा रहा है।

ऐसा उस नास्तिक ने कहा, यू आर कंडेम्ड टु ग्रो एंड टु फ्लावर। तुम निंदित हो कि तुममें फूल खिलें और तुम बढ़ो। इसमें तुम्हारा कोई गौरव नहीं है।

निश्चित ही, बेल को बड़ी तकलीफ हुई। फूल तो उसकी छाती पर अब भी खिले थे, लेकिन बेकार हो गए। पहली बार अहंकार जागा। और उसने आकाश की तरफ सिर उठाकर परमात्मा से कहा कि बस, अब मैं बढ़ने से इनकार करती हूं। अब मैं इनकार करती हूं; ठीक से सुन लो कि अब मैं नहीं बढ़ूंगी। और अब मैं इनकार करती हूं कि अब मैं फूल नहीं खिलाऊंगी। और अब मैं इनकार करती हूं कि मुझमें फल नहीं लगेंगे।

परमात्मा ने कहा, जैसी तेरी मर्जी। क्योंकि प्रेम का अर्थ ही यह है कि वह आपको अपनी मर्जी पर पूरी तरह छोड़ दे। प्रेम का अर्थ ही यह है कि वह अपनी मर्जी आपके ऊपर न थोपे। परमात्मा ने कहा, जैसी तेरी मर्जी।

लेकिन उसी दिन से बेल बड़ी बेचैन हो गई। क्योंकि भीतर तो प्राणों की ऊर्जा बढ़ना चाहती थी। भीतर तो रस चल रहा था। जमीन से रस अपशोषित किया जा रहा था। सूरज से किरणें पीयी जा रही थीं। हवाओं से आक्सीजन लिया जा रहा था। पानी की धार भीतर बह रही थी। यह सब जारी था। और बेल ने कहा, मैं बढ़ूंगी नहीं।

समझ सकते हैं, मुसीबत शुरू हो गई। भीतर से बढ़ने का धक्का प्राणों में, और बेल अपने को बाहर से रोके। भीतर तो सुगंध जमीन से इकट्ठी होने लगी और फूल खिलने को मचलने लगे, और बेल ने इनकार किया कि फूल मैं खिलने न दूंगी।

जिस बेल में बड़ी बढ़ती होती थी और जो आकाश की तरफ उठती थी, वह जमीन की तरफ झुक गई। उसमें गांठें पड़ गईं। जो शक्ति बीज बन सकती थी, वह गांठ बन गई। और जिससे फूल पैदा होते, उससे बेल सिर्फ बेचैन, परेशान हो गई। रात की नींद खो गई, सुबह का आनंद खो गया। पक्षी अब भी गीत गाते, तो बेल को बुरे मालूम पड़ते।

क्योंकि पक्षियों के गीत वसंत की याद दिलाते, जब फूल खिलते थे। और जब सूरज निकलता, तो बेल बेचैन होती, उसे याद आती उन दिनों की, जब बेल बढ़ती थी। और जब आकाश में बादल घूमते, तो बेल कष्ट पाती, क्योंकि इन बादलों से उस सब की याद जुड़ी थी, जब इनसे बरसा होती थी और बेल तृप्त होती थी।

अब बेल बिलकुल पागल हो गई। एक दिन घबड़ाकर उसने परमात्मा से कहा कि मैं बिलकुल पागल हुई जा रही हूं। परमात्मा ने कहा, जैसी तेरी मर्जी। मैंने तुझे कभी पागल होने को नहीं कहा। तू अपने ही हाथ से और तू अपने ही आंतरिक स्वभाव से लड़ रही है। क्योंकि परमात्मा से लड़ना, अपने ही स्वभाव से लड़ना है।

जब भी कोई आदमी परमात्मा के खिलाफ खड़ा होता है, तो किसी गहरे अर्थों में अपने खिलाफ खड़ा हो जाता है। वह उन्हीं शाखाओं को काटने लगता है, जो उसके प्राण हैं। और जब भी कोई व्यक्ति परमात्मा के विपरीत पीठ करता है, तो वह अपने से ही अजनबी हो जाता है। क्योंकि वह अपने ही तरफ पीठ कर रहा है।

परमात्मा ने कहा कि तू अपने हाथ से मुसीबत में पड़ गई है। ये जो गांठें तुझे दर्द दे रही हैं, ये तेरे भीतर बीज बन सकती थीं। और ये जो पत्ते कुम्हलाकर जमीन की तरफ झुक गए हैं, ये आकाश में खिले हुए फूल बन सकते थे। और आज पक्षियों के गीत कष्ट देते हैं, और सुबह की सूरज की किरणें भी प्राणों में भालों की तरह छिद जाती हैं। और आकाश में बादल उठते हैं, पहले भी उठते थे, तब तू नाचती थी मोरों के साथ; लेकिन अब तू नाचती नहीं, तू अपने को सम्हालकर खड़ी रहती है। तू अपने ही खिलाफ हो गई है! यह अपने से विरोध छोड़। क्योंकि परमात्मा से विरोध अपने से ही विरोध है।

कृष्ण कह रहे हैं, वह आदमी मूढ़ है।

इस बेल की तरह है वह आदमी, जो परमात्मा का भजन नहीं कर रहा है। भजन का अर्थ है, जो परमात्मा और अपने बीच कोई सेतु नहीं बना रहा है; जो परमात्मा की शक्ति को अपनी शक्ति नहीं मान रहा है; जो परमात्मा और अपने बीच किसी तरह का विरोध और रेजिस्टेंस खड़ा कर रहा है, वह आदमी मूढ़ है। क्योंकि वह किसी और से नहीं लड़ रहा है, वह अपने से ही लड़ रहा है। और हारेगा, क्योंकि बड़ी विराट ऊर्जा से लड़ रहा है। लहर सागर से लड़ने चल पड़ी!

तो कृष्ण एक तथ्य की बात कहते हैं। कहते हैं, मूढ़ है वह आदमी। मूढ़ मुझे नहीं भजते हैं।

इसमें कई दफे पढ़कर ऐसा लगता है कि जो कृष्ण को नहीं भजता है, कृष्ण उसको गाली दे रहे हैं कि तुम मूढ़ हो। नहीं, ऐसा नहीं है। नहीं भजते हो, इसलिए मूढ़ हो, ऐसा नहीं। मूढ़ हो, इसलिए नहीं भजते हो। और इस मूढ़ता में आत्मघात छिपा है, अपना ही विनाश छिपा है। सेल्फ-डिस्ट्रक्टिव, आत्मविनाश की वृत्ति छिपी है। और हम सबके भीतर आत्मविनाश की वृत्ति है।

फ्रायड ने तो अपने जीवन के अंतिम दिनों में, मनुष्य के भीतर एक डेथ विश, मृत्यु की आकांक्षा भी है, इसकी खोज की है। फ्रायड ने जिंदगीभर एक ही चीज की बात की थी, वह थी ईरोज, कामवासना, जीवन की इच्छा। लेकिन अंत में उसे लगा कि यह अधूरी बात है। आदमी के भीतर मरने की इच्छा भी छिपी हुई है। उसे उसने थानाटोस, डेथ विश, मृत्यु की आकांक्षा कहा। उसने कहा कि आदमी के भीतर कोई ऐसा तत्व भी है, जो स्वयं को भी नष्ट करने के लिए आतुर रहता है।

इस खोज ने सारे पश्चिम में हैरानी पैदा कर दी थी। लेकिन पूरब इसे सदा से जानता है। सदा से जानता है कि आदमी के भीतर जीवन की आकांक्षा भी है, और मरने की आकांक्षा भी है। स्वस्थ आदमी वह है, जो जीवन की आकांक्षा पर यात्रा करता है। अस्वस्थ, रुग्ण आदमी वह है, जो मृत्यु की आकांक्षा पर यात्रा करने लगता है।

ध्यान रहे, जो आदमी जीवन की आकांक्षा से जीता है, वह परमात्मा की तरफ उन्मुख हो जाता है; और जो आदमी मृत्यु की आकांक्षा से भर जाता है, वह परमात्मा की तरफ विमुख हो जाता है।

यह जो फ्रायड ने बहुत गहरी खोज की, और फ्रायड को खुद भी मुसीबत पड़ी। क्योंकि जिंदगीभर से कहता था, आदमी जीने के लिए आतुर है। लेकिन बुढ़ापे में उसे समझ में आया कि सिर्फ जीने के लिए आतुर नहीं है। क्योंकि आदमी हजार ऐसे काम कर रहा है, जो गवाही देते हैं कि आदमी मरने को भी आतुर है। आदमी कभी-कभी मरना भी चाहता है। आप अपने ही तरफ सोचेंगे, तो समझ में आएगा।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं, ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है, जो जिंदगी में दस-पांच बार स्वयं की हत्या का विचार न करता हो। यह दूसरी बात है कि आप हत्या न करते हों, क्योंकि हत्या करने के लिए और सब इंतजाम चाहिए, जो आपके पास न हो। हिम्मत चाहिए, जो न हो। लेकिन हत्या का विचार आदमी करता है। और ऐसा नहीं कि बूढ़े ही करते हैं। छोटे-से बच्चे को बाप जोर से डांट दे और बच्चा अपने भीतर सोचता है, इससे तो मर ही जाऊं। छोटा-सा बच्चा, अभी जो जीवन की यात्रा पर निकला भी नहीं है; उसके भीतर भी मरने का भाव पकड़ता है। वह भी सोचता है, खतम कर दो अपने को, नष्ट कर दो।

अगर मनुष्य के भीतर कोई मरने की वृत्ति न हो, तो इतनी जल्दी मरने का खयाल नहीं आ सकता है। और जो गहरे खोजते हैं, वे कहते हैं कि हम दूसरे को भी मारने के लिए इसलिए उत्सुक हो जाते हैं, क्योंकि हमें डर है कि अगर हम दूसरे को न मारें, तो कहीं अपने को मारना शुरू न कर दें। यह बहुत उलटा लगेगा।

नीत्से से किसी ने पूछा कि तुम सदा हंसते रहते हो, बात क्या है? नीत्से ने कहा, सिर्फ इसलिए हंसता रहता हूं कि कहीं रोने न लगूं। क्योंकि दो के सिवाय कोई उपाय नहीं दिखाई पड़ता। या तो हंसूं, या रोऊं। दो के बीच कोई जगह नहीं है, जहां आदमी खड़ा हो जाए। खड़े होने के लिए जगह नहीं है। या तो हंसूं या रोऊं। तो मैं हंसता ही रहता हूं, कि अगर हंसना रोका, तो फिर रोना पड़ेगा। रोने पर विकल्प बदल जाएगा।

इसलिए हर आदमी दूसरे की हत्या का विचार करता रहता है कि कहीं अपनी हत्या का विचार न करने लगे। और हर आदमी दूसरे को नुकसान पहुंचाने की धारणा बनाता रहता है, ताकि अपने को नुकसान न पहुंचाने लगे। हर आदमी आक्रामक है, ताकि कहीं आत्महिंसा में न लग जाए।

और यह बड़े मजे की बात है, जो लोग आक्रमण छोड़ देते हैं, या जो लोग चेष्टा करके दूसरे की हिंसा छोड़ देते हैं, वे आत्महिंसा में फौरन लग जाते हैं। इसलिए तथाकथित अहिंसा के साधक आत्म-हिंसा में लग जाते हैं, वे अपने को सताने लगते हैं।

यह बहुत मजे की बात है कि जो आदमी दूसरे को सताना छोड़ता है, वह फौरन अपने को सताने के उपाय करने लगता है। दो में से कोई और रास्ता दिखाई नहीं पड़ता।

कृष्ण उसे मूढ़ कहते हैं, जो अपने को सता रहा है। और अपने को सताने के लिए सबसे बड़ी विधि अगर जगत में कोई है, तो वह प्रभु को भूल जाना है।

आप कहेंगे, यह कैसी विधि? छाती में छुरा भोंक लो, ज्यादा तकलीफ होगी। कांटों पर लेट जाओ। जहर पी लो।

नहीं। परमात्मा के विस्मरण से बड़ी तकलीफ इस जगत में कोई भी नहीं हो सकती है। परमात्मा के विस्मरण से बड़ी तकलीफ इसलिए नहीं हो सकती है, क्योंकि परमात्मा के विस्मरण के साथ ही जीवन के सब आनंद की धाराएं अवरुद्ध हो जाती हैं। आदमी जीता भी है मरा हुआ। ध्यान रहे, मर जाना उतना बुरा नहीं है, जितना मरे हुए जीना बुरा है।

सुना है मैंने, ईरान के एक बादशाह का वजीर एक जुर्म में पकड़ा गया। और जुर्म यह था कि उसने कानून के खिलाफ तीन विवाह कर लिए थे और तीनों औरतों को धोखा दिया था। एक ही विवाह कर सकता था, तीन विवाह कर लिए थे और हर स्त्री को धोखा दिया था कि मैं अविवाहित हूं।

यह बात पकड़ गई और सम्राट ने उस वजीर को कहा कि यह तो बहुत ही खतरनाक जुर्म है। अपने न्यायाधीशों से कहा, कठिन से कठिन सजा खोजो। अगर यह भी सजा हो कि इसको फांसी देनी पड़े, तो फांसी दो। लेकिन न्यायाधीशों ने एक सप्ताह विचार किया और कहा कि नहीं, फांसी देने को हम बड़ी कठिन सजा नहीं मानते। हमने और दूसरी सजा खोजी है। बादशाह ने कहा, हैरान करते हो मुझे तुम। फांसी से और कठिन सजा क्या हो सकती है? उन्होंने कहा कि तीनों औरतों के साथ इस आदमी को इकट्ठा रहने दो। तीनों औरतों को साथ रहने दो इसके साथ।

कहते हैं, इक्कीसवें दिन उस आदमी ने आत्महत्या कर ली। और वह चिट्ठी लिखकर रख गया कि यह सजा मुझे तो दी, लेकिन कभी अब किसी और को मत देना। इससे तो फांसी बेहतर थी।

मौत इतनी बुरी नहीं है, जीवन जितना बुरा हो सकता है। जीवन के बुरे होने की संभावना बहुत ज्यादा है। मौत के बुरे होने की संभावना बहुत ज्यादा नहीं है। मौत तो सिर्फ द्वार का बंद हो जाना है।

जीवन, प्रभु से हीन, ऐसा जीवन है, जिसमें चारों तरफ हमारे सब तरह के दुश्मन इकट्ठे हो जाते हैं। उसके पास तो तीन औरतें थीं; हमारे पास तीन हजार औरतें इकट्ठी हो जाती हैं। औरतों का मतलब, क्रोध इकट्ठा हो जाता है, बेईमानी इकट्ठी हो जाती है, चोरी इकट्ठी हो जाती है, हिंसा इकट्ठी हो जाती है, सब उपद्रव इकट्ठे हो जाते हैं। और उनके बीच हमें जीना पड़ता है।

एक प्रभु का साथ छूटा कि चारों तरफ जीवन में सिवाय उपद्रव के और कुछ नहीं बचता। क्योंकि जो आदमी प्रभु की तरफ पीठ करेगा, उसने अपने आप अंधेरे की तरफ आंखें कर लीं। अब वह अंधेरे में, और अंधेरे में, और अंधेरे में उतरेगा। जिसने प्रभु का साथ छोड़ा, उसने अपने हाथ से दुर्गुणों को निमंत्रण दिया। जिसने प्रभु का साथ छोड़ा, उसने अपने हाथ से गड्ढों में, पतन में और नर्कों में उतरने का इंतजाम किया।

तो कृष्ण कहते हैं, मूढ़ हैं जगत में ऐसे, दुष्टजन हैं वे, नासमझ हैं, असात्विक भावनाओं से भरे हुए हैं, वे मेरी प्रार्थना नहीं करते।

लेकिन आपसे मैं एक बात कह दूं। इससे आप यह मत समझना कि जो-जो प्रार्थना करते हैं, वे इन मूढ़ों में नहीं हैं। क्योंकि जरूरी नहीं है कि आप प्रार्थना करते वक्त प्रार्थना ही कर रहे हों। प्रार्थना करनी बड़ी कठिन है। इसलिए आप एकदम निश्चिंत होकर मत बैठ जाना कि यह किसी और की बात हो रही है, मैं तो रोज मंदिर जाता हूं। मैं तो प्रार्थना करता हूं। जरूरी नहीं है, आपकी प्रार्थना प्रार्थना हो।

मैंने सुना है, एक स्त्री के पास एक तोता था, नर तोता; लेकिन वह गाली-गलौज सीख गया था। जिससे खरीदा था, वह एक होटल थी और वहां सब तरह के लोग आते-जाते थे। वह गाली-गलौज सीख गया था। वह स्त्री बड़ी परेशान थी, क्योंकि घर में मेहमान आते और वह बेहूदी बातें बोल देता। उसने अपने पड़ोस के पादरी को, चर्च के पादरी को कहा कि कुछ उपाय करो। तुम तो सब कुछ जानते हो। आदमियों तक को बदल देते हो, तो यह तो तोता है। फिर से दोहराऊं, उसने कहा, आदमियों तक को बदल देते हो, तो यह तो तोता है। इसे थोड़ा उपदेश दो कि यह बदल जाए।

पादरी ने कहा, यह तो मेरी भाषा न समझेगा, लेकिन मेरे पास एक मादा तोता है। वह दिन-रात प्रार्थना किया करती है। चौबीस घंटे चर्च में उसकी प्रार्थना गूंजती रहती है। तुम इसे ले आओ; दोनों को सत्संग में रख दें।

सत्संग का असर तो पड़ता ही है। निश्चित पड़ता है। लेकिन किस तरफ से पड़ेगा, कहना मुश्किल है। गुरु शिष्य को ले जाएंगे स्वर्ग की तरफ, कि शिष्य गुरु को ले जाएंगे नर्क की तरफ, कहना मुश्किल है! प्रभाव तो जरूर पड़ता है।

खैर, स्त्री को बात जंच गई। वह अपने नर तोते को ले आई। एक ही पिंजरे में दोनों को बंद कर दिया। दोनों दूर बैठ गए; देखें कि क्या चर्चा चलती है! मादा तोता थोड़ी देर चुपचाप बैठी रही; नर तोता भी थोड़ी देर चुपचाप बैठा रहा। फिर उस नर तोते ने कहा, क्या खयाल है? हे डियर बेबी, व्हाट डू यू थिंक अबाउट लविंग–प्रेम के बाबत क्या खयाल है? उस मादा तोते ने कहा, इट इज़ ओ के किड। बिलकुल ठीक। व्हाट डू यू थिंक, आई वाज प्रेइंग फार आल दीज इयर्स? क्या सोचते हो तुम, मैं प्रार्थना किसलिए कर रही थी इतने वर्षों से? एक तोता मिल जाए।

यह प्रार्थना जो वर्षों से चल रही थी चर्च में उस मादा तोते की, वह यही प्रार्थना थी कि कहीं से एक तोता मिल जाए। चर्च का पादरी धोखे में था। अधिक चर्चों के पादरी धोखे में है कि जो लोग प्रार्थना करने आते हैं, वे किसलिए आ रहे हैं।

असली सवाल यह नहीं है कि आप प्रार्थना करते हो; असली सवाल यह है कि किसलिए करते हो। अगर परमात्मा के अतिरिक्त और कोई भी मांग बीच में है, तो वह प्रार्थना परमात्मा की प्रार्थना नहीं है। अगर बीच में धन है, पद है, यश है, स्वास्थ्य है, सुख है, तो आपको परमात्मा से कोई भी प्रयोजन नहीं है। आपको प्रयोजन अपने सुख से है। प्रार्थना करते हैं कि शायद परमात्मा से मिल जाए, तो परमात्मा को भी एक इंस्ट्रमेंट, एक साधन–सच, परमात्मा से भी थोड़ी सेवा लेने की उत्सुकता है, और कुछ भी नहीं है।

प्रार्थना कर लेने से प्रार्थना नहीं हो जाती। तो इसलिए जरूरी नहीं है कि मूढ़ लोग प्रार्थना न करते हों। मूढ़ लोग प्रार्थना करते हैं, लेकिन प्रार्थना कभी नहीं करते। कुछ मांग ही होगी उनकी, छोटी-मोटी, क्षुद्र। और कभी सोचेंगे भी नहीं कि क्या मांगने परमात्मा के सामने खड़े हैं!

असल में कुछ भी मांगने अगर कोई परमात्मा के सामने खड़ा है, तो प्रार्थना नहीं होगी; क्योंकि प्रार्थना मांग नहीं है। प्रार्थना का अर्थ ही है, बिना मांगा धन्यवाद; मांग नहीं है। प्रार्थना बड़ी उलटी चीज है। वह किसी चीज की मांग नहीं है; बल्कि जो परमात्मा ने दिया है, उसके लिए धन्यवाद है, अनुग्रह का भाव है, ग्रेटिटयूड है। जितना दिया है, वह इतना ज्यादा है कि उसे धन्यवाद देने की बात है, वह थैंक्स गिविंग।

लेकिन उसको धन्यवाद देने हम कभी नहीं जाते कि तूने हमें इतना दिया है। हम जाते हैं कहने कि क्या मारे डाल रहा है! कुछ भी नहीं है पास। लड़के की नौकरी नहीं लग रही। लड़की की शादी नहीं हो रही। परीक्षा में फेल हुए जा रहे हैं। धंधा बिगड़ा जा रहा है। सब इस तरह की बातें लेकर हम परमात्मा के सामने जाते हैं।

मूढ़ भी प्रार्थना करता है, लेकिन कृष्ण उसकी प्रार्थना को प्रार्थना नहीं मानते। क्योंकि वह परमात्मा को नहीं भजता, वह परमात्मा के बहाने जगत की चीजों को ही भजता है; वह जगत को ही भजता है।

कठिनाई है। हमारा चित्त जैसा है, वह केवल सांसारिक वस्तुओं को ही भज पाता है। कभी देखा, एक आदमी एक नई कार खरीदने की सोचता है, तो रातभर नींद नहीं आती। करवटें बदलता है, फिर कार दिखाई पड़ने लगती है। फिर करवट बदलता है, फिर कार दिखाई पड़ने लगती है। हजार रंग दिखाई पड़ते हैं, हजार ढंग दिखाई पड़ते हैं। महीनों सो नहीं पाता।

यह जो चित्त है, अगर इसको आप मंदिर में ले जाएं, तो प्रार्थना तो जरूर करेगा, लेकिन इसे दिखाई कार ही पड़ेगी। इसे कुछ और दिखाई नहीं पड़ सकता। चित्त की भाषाएं हैं।

सुना है मैंने, एक आदमी ने एक घोड़ा खरीदा। बेचने वाले ने बहुत दाम बताए। आदमी ने पूछा, इतने दाम की बात क्या है? उसने कहा, यह घोड़ा बहुत अदभुत है। एक तो, यह तूफान की चाल से चलता है। और इससे भी बड़ी बात यह है कि–इसकी चाल तो तेज है ही, तो अक्सर सवार गिर जाता है–अगर कभी तुम गिर जाओ, तो यह तुम्हें वहीं स्थान पर सुलाकर, डाक्टर को भी बुला लाता है। उस आदमी ने कहा, चमत्कार! उसके दिल में भी बहुत दिन से घोड़ा तो लेने का इरादा था। उसने घोड़ा खरीद लिया। दाम भी चुकाए। और उसने सोचा कि पहले दिन प्रयोग करके भी देख लें।

घोड़े पर बैठा। घोड़ा सचमुच तूफान की तरह दौड़ा। और दौड़ा, तो उसने जाकर एक गङ्ढे में उस आदमी को गिराया। जब वह आदमी गिरा, तो उसने सोचा कि आधी बात तो पूरी हो गई, अब आधी देखें। घोड़ा उसे गिराकर फौरन वापस लौटा। उसने सोचा, हैरानी की बात है! और थोड़ी देर में घोड़ा डाक्टर को लेकर आ गया।

फिर दो-दिन बाद जब उस आदमी को होश आया, तो घोड़े का मालिक उसके पास आया और उसने कहा, कहो भाई, संतुष्ट तो हो? उसने कहा, संतुष्ट तो बहुत हूं। हाथ-पैर टूट गए। पर, उसने कहा कि देखा, घोड़ा डाक्टर को

बुलाकर लाया। उसने कहा कि बिलकुल लाया। लेकिन एक ही गलती हो गई। वेटरनरी डाक्टर को बुला लाया। उसने कहा, घोड़ा तो घोड़ा ही है। उसको आदमियों के डाक्टर का कोई भी पता नहीं है। वह घोड़ों के डाक्टर को लिवा लाया। तो यह तो तुम्हें पहले ही समझ लेना था! उस बेचने वाले ने कहा, यह तो साफ ही है।

वह जो हम सबकी भाषाएं हैं। घोड़ा ठीक ही है कि वेटरनरी डाक्टर को बुला लाए। वह हमारा जो चित्त है, वह जब प्रार्थना करने जाएगा, तो उसकी अपनी भाषा है; वह वेटरनरी डाक्टर को बुला लाएगा। वह परमात्मा तक नहीं पहुंचेगा। वह उन चीजों तक पहुंच जाएगा, जिन चीजों से उसके संबंध रहे हैं, जिन चीजों से उसका परिचय है, जिन चीजों को उसने चाहा है।

अगर परमात्मा भी मिल जाए अचानक हमारे चित्त को, तो हम वही चीजें मांगेंगे, जो हम मांगते रहे हैं। उस मौके को भी हम खो देंगे। अगर ठीक परमात्मा...। सोचें जरा अपने मन में कि आज रात परमात्मा आपके बिस्तर के पास आकर खड़ा होकर जगाए कि उठिए। क्या चाहिए? तो जरा सोचें अपने मन में। आपको फौरन पता चल जाएगा कि आप क्या मांगेंगे। परमात्मा को कोई मांगेगा, इसमें बहुत संदेह है। क्योंकि जिसने कभी नहीं मांगा उसे, वह अचानक आज रात नहीं मांग पाएगा।

कृष्ण कहते हैं, मूढ़ है वह व्यक्ति। मूढ़ मुझे नहीं भजते हैं। फिर मुझे कौन भजता है? जिज्ञासु, मुमुक्षु, वे सात्विक लोग, वे सदाचरण वाले लोग, बुद्धिमान मुझे भजते हैं।

सच में ही, वही आदमी बुद्धिमान है, जो इस जगत के अवसर का उपयोग प्रभु की झलक पाने में कर ले। उसके अलावा कोई भी बुद्धिमान नहीं है। वही आदमी बुद्धिमान है, जो इस जीवन के अवसर का उपयोग जीवन के परम सत्य की खोज में कर ले। बाकी कोई आदमी बुद्धिमान नहीं है। बाकी सभी बुद्धिहीन हैं।

जीवन उन चीजों को इकट्ठा करने में भी गंवाया जा सकता है, जिन चीजों को पाकर कुछ भी नहीं मिलता। और हम सब वैसा ही गंवाते हैं। जीवन उन चीजों की खोज में नष्ट किया जा सकता है, जिन्हें हम न पाएंगे, तो भी दुखी होंगे; और पा लेंगे, तो भी दुखी होंगे।

सिकंदर जीत ले सारी दुनिया, तो भी सुखी नहीं हो पाया। क्योंकि सारी दुनिया को जीतने से सुख का कोई भी संबंध नहीं है। न जीते, तो दुखी हो। जीतने की कोशिश करे, तो परेशान हो। और फिर जीत ले, तो जीत से कुछ न पाए। सब मिल जाए--जो हमारा मन चाहता है, सब मिल जाए--तो भी हम अचानक पाएंगे कि भीतर सब कुछ खाली रह गया है। कुछ मिला नहीं। जीवन के गहरे मूल्य तृप्त नहीं हुए। और जीवन की गहरी प्यास, प्यास ही रह गई; और जीवन की असली भूख, भूख ही रह गई, और प्राण अब भी पुकार रहे हैं किसी वर्षा के लिए। बादल बहुत बरसे, बहुत गर्जन हुआ, बिजलियां चमकीं, सागर भर गए नीचे। लेकिन वह अमृत नहीं बरसा, जिसकी तलाश थी।

परमात्मा के अतिरिक्त वह अमृत कहीं और नहीं है। परमात्मा से क्या मतलब?

परमात्मा से मतलब है, जीवन का जो गहनतम सत्य है, वही। जन्म के पहले भी जो मेरे भीतर था, और मृत्यु के बाद भी जो मेरे भीतर होगा, वही। जब मैं जागता हूं, तब भी जो मेरे भीतर है; और जब मैं सो जाता हूं, तब भी मेरे भीतर होता है--वही। जब मैं बच्चा हूं तब, और जब मैं जवान हूं तब, और जब बूढ़ा हो जाऊंगा तब, तब भी जो नहीं बदलता मेरे भीतर--वही। वह जो सारे परिवर्तन के बीच शाश्वत है; वह जो सारी उथल-पुथल के बीच स्थिर है; वह जो सारी गतियों के बीच, सारी आंधियों के बीच अडिग है; वह जो सब जीवन और मृत्यु के बीच सदा एक-सा है--उस एक की खोज परमात्मा की खोज है।

निश्चित ही, बुद्धिमान वही है, वाइज वही है, मेधावी वही है, जो इस जीवन से उसे पा ले।

हम करीब-करीब ऐसे लोग हैं कि सागर के तट पर गए हों, अवसर मिला हो, और सागर में हीरे पड़े हों, लेकिन हम किनारे पर रेत में जो सीप और चमकदार पत्थर पड़े रहते हैं, उनको बीनने में बिता रहे हैं। वह हम सब बीनकर इकट्ठा ढेर कर लेंगे। जीवन हाथ से खो जाएगा! ढेर वहीं पड़ा रह जाएगा।

क्या खोज रहे हैं हम? हमारी खोज वैसी है, रामकृष्ण कहा करते थे कि चील अगर आकाश में भी उड़ रही हो, तब भी तुम यह मत सोचना कि वह आकाश में उड़ती है। उसकी नजर तो नीचे कचरेघरों में कोई मांस का टुकड़ा पड़ा हो, कोई हड्डी पड़ी हो, उस पर लगी रहती है। आकाश में उड़ती चील के धोखे में मत आ जाना कि वह आकाश में उड़ रही है, इसलिए आकाश में उड़ रही होगी। उसका चित्त तो किसी हड्डी पर लगा रहता है, जो किसी कचरेघर पर पड़ी होगी।

जीवन का विराट आकाश मिलता है हमें, जिसमें हम परमात्मा के आलिंगन को उपलब्ध हो सकते हैं। बड़ी संपदा हमारी हो सकती है, जिसका कोई अंत नहीं। कुबेर के खजाने चुक-चुक जाएं और सोलोमन के खजाने छोटे पड़ जाएं। सीपियां सिद्ध होते हैं। नदी के किनारे बीने गए कंकड़-पत्थर रंगीन, बच्चों के खिलौने! लेकिन एक और संपदा है, जिसे पाते ही जीवन उस रौनक को उपलब्ध होता है, जिसका कोई अंत नहीं है; जिसे मृत्यु नहीं बुझाती; जिसे अंधेरा नहीं मिटाता; जिसे दुख नहीं मिटाता; जिसे पीड़ा नहीं छूती; जो अस्पर्शित रह जाती है। उस संपदा को पाया जा सकता है इसी जीवन में।

निश्चित ही, जो उस दिशा में न चले, उसे कृष्ण कैसे बुद्धिमान कहें? वे कहेंगे, बुद्धिमान हैं वे, वे ही हैं बुद्धिमान, जो मुझे भजते हैं।

यह भजने का, प्रभु को स्मरण करने का इतना आग्रह! क्या चाहते हैं? क्या इशारा है उनका? एक छोटी-सी कहानी से समझाने की कोशिश करूं।

सुना है मैंने, एक संन्यासी को उसके गुरु ने कहा कि तू अब यहां न सीख पाएगा। हम जो सिखा सकते थे, सिखाया; लेकिन उसके लिए तू बहरा है। तू यहां से जा और देश की राजधानी में सम्राट के पास पहुंच जा। अगर कुछ सीख सकता है, तो अब वहीं।

वह संन्यासी यात्रा करके सम्राट के द्वार पर पहुंचा। बड़ी मुश्किल में पड़ा। सम्राट को देखा। रात हो गई थी। दरबार भरा था। नर्तकियां नाचती थीं। अर्धनग्न स्त्रियां नाचती थीं। शराब ढाली जा रही थी। सम्राट बीच में बैठा था। उस संन्यासी ने कहा, यहां मुझे सीखने भेजा है! अपने मन में सोचा, अच्छा फंसा! अब कहां भागकर जाऊं? अब इस रात कहां ठहरूंगा?

सम्राट ने कहा, इतने चिंतित मत होओ। इतने बेचैन मत होओ। ठीक जगह ही भेजे गए हो। आओ, विश्राम करो रात। जल्दी क्या है लौट जाने की? दो दिन बाद लौट जाना। वह बहुत घबड़ाया। उसने कहा, मैंने तो आपसे कुछ कहा नहीं! सम्राट ने कहा कि कहने से ही कुछ सुनाई पड़ता हो, ऐसा कहां! तेरे गुरु ने कितना तुझसे कहा, तूने कुछ न सुना। जब कहने से सुनाई न पड़े, तो न कहने से भी सुनाई पड़ सकता है। तू बैठ। तू जल्दी मत कर।

रात भोजन करवाया। भोजन के बाद फिर उस संन्यासी ने कहा, एक बात तो कम से कम बता दें! सम्राट ने कहा, जल्दी क्या है? कल सुबह पूछ लेना। उसने कहा कि नहीं; रातभर नींद न आएगी। यह क्या मजा है! मेरे गुरु ने आपके पास भेज दिया; शराबी के पास। नाच-गान चल रहा है। यह सब क्या उपद्रव है! मैं संन्यासी, मैं ब्रह्मचारी। मुझे यहां कहां भेज दिया! आपके पास किसलिए भेजा है? और आप मुझे क्या खाक सिखाएंगे? अभी खुद ही तो सीखे नहीं!

उस सम्राट ने कहा कि मैं तो भजन करता रहता हूं। उसने कहा, क्या खाक भजन होता होगा! यह भजन हो रहा है? शराब ढल रही है; प्याले सरक रहे हैं; स्त्रियां नाच रही हैं--यह भजन हो रहा है? तुम मुझे अभी चले जाने दो। ऐसा भजन मुझे नहीं सीखना। सम्राट ने कहा कि यह तो भजन नहीं है। लेकिन भजन जारी है। खैर, कल सुबह हम बात कर लेंगे।

बहुत सुंदर बिस्तर पर उसे सुलाया, जैसे पर वह कभी न सोया हो। बहुत सुखद इंतजाम किया। सब सुविधा की; जो सम्राट के पास श्रेष्ठतम था।

सुबह जब उठा संन्यासी, सम्राट ने पूछा, प्रसन्न तो हैं। कोई अड़चन, कोई तकलीफ तो न थी? उस संन्यासी ने कहा, तकलीफ तो कोई न थी, आराम तो पूरा था। लेकिन नींद नहीं लगी। नींद क्यों नहीं लगी? कहा कि आप भी अजीब आदमी हैं। अच्छा बिस्तर दिया। सब दिया। यह ऊपर एक नंगी तलवार एक धागे से काहे के लिए बांधकर लटका दी? तो रातभर प्राण संकट में रहे। आंख बंद करूं, तो तलवार दिखाई पड़े। पता नहीं धागा कब टूट जाए! और पतला धागा! करवट लूं, तो प्राण संकट में, कि पता नहीं, वह तलवार कब टूट जाए। रातभर एक पल सो नहीं सका।

सम्राट ने कहा, मैं तुझे कहता हूं कि इसे ऐसा कह कि रातभर तूने तलवार का भजन किया। बिस्तर लुभा न सके। चारों तरफ इत्र की खुशबुएं थीं, वे सुला न सकीं। कुछ सुला न सका। तलवार का भजन जारी रहा। तुझसे मैं कहता हूं, स्त्रियां नाचती थीं, माना कि वे अर्धनग्न थीं; शराब ढलकाई जाती थी, माना कि लोग शराब पी रहे थे; लेकिन तुझे मैं कहता हूं, ठीक तलवार की तरह मौत मेरे ऊपर लटकी है। तेरे ऊपर ही कल रात लटकी थी, ऐसा नहीं; सबके ऊपर लटकी है; कच्चे धागे में ही लटकी है। तुझे दिखाई पड़ रही थी, क्योंकि मैंने प्रत्यक्ष लटका दी थी। मौत की तलवार दिखाई नहीं पड़ती; सबके ऊपर लटकी है।

पर, उसने कहा, इससे भगवान के भजन का क्या मतलब? जिस तरह मैं तलवार का भजन करता रहा रातभर, अगर आपको मौत इस तरह लटकी हुई दिखाई पड़ती है, तो आप मौत का भजन कर रहे होंगे?

उस सम्राट ने कहा, नहीं; जिस दिन मौत प्रतिपल दिखाई पड़ने लगे, जिस दिन मौत चारों तरफ दिखाई पड़ने लगे, जिस दिन शरीर का सब कुछ मरेगा, यह दिखाई पड़ने लगे; जिस दिन पदार्थ के जगत में सब विनष्ट होगा, यह दिखाई पड़ने लगे--उस दिन उसका स्मरण शुरू हो जाता है, जो विनष्ट नहीं होता, जो अमृत है। मौत तो तलवार की तरह लटकी है, लेकिन मेरे हृदय में अब मौत का स्मरण नहीं है, क्योंकि मौत तो है। अब मेरे मन में उसका स्मरण है, जो मौत के भी पार है, और जो मौत से भी नष्ट नहीं होता; जो मौत के बीच से भी गुजर जाता है, अस्पर्शित।

प्रभु-स्मरण का अर्थ है, अमृतत्व का स्मरण, चैतन्य का स्मरण, परम सत्ता का स्मरण।

और वह स्मरण ऐसा नहीं है कि आप पांच क्षण को घर में बैठकर दोहरा लें और हो गया। वह स्मरण ऐसा है कि आपके रोएं-रोएं में, श्वास-श्वास में, हृदय की धड़कन-धड़कन में प्रवेश कर जाए। उठें, तो उस भजन में; सोएं, तो उस भजन में; चलें, तो उस भजन में--तो बुद्धिमत्ता है।

कृष्ण कहते हैं, दो तरह के लोग हैं इस जगत में। मूढ़जन हैं, जो मेरी तरफ आंख नहीं उठाते, जब कि मैं उन्हें निहाल कर दूं। बुद्धिमान हैं, जो मेरे अतिरिक्त और कहीं नजर नहीं ले जाते। क्योंकि मेरी तरफ नजर उठी कि फिर और कोई जगह देखने योग्य नहीं रह जाती। मेरी तरफ नजर उठी कि फिर और कुछ पाने योग्य नहीं रह जाता। मुझे जिन्होंने पा लिया, उन्होंने सब पा लिया है।

यह कृष्ण कह रहे हैं अर्जुन से कि अर्जुन समझे, कि मूढ़ के जगत से यात्रा करे बुद्धिमान के जगत की तरफ।

कोई मूढ़ ऐसा नहीं है कि बुद्धिमान न हो सके; और कोई बुद्धिमान ऐसा नहीं है कि कभी न कभी मूढ़ न रहा हो। सब संतों का अतीत है, और सब पापियों का भविष्य है। और पाप से गुजरे बिना कोई संतत्व तक नहीं पहुंचा है। और संतत्व तक जो भी पहुंचा है, पाप की अग्नि से निकला है।

इसलिए कभी ऐसा मन में सोचकर मत बैठ जाना कि मैं तो मूढ़ हूं। दुनिया में कोई मेधा नहीं है, जो मूढ़ता से न गुजरी हो। वह अनिवार्य शिक्षा है। और दुनिया में कोई ऐसा मूढ़ नहीं है, जिसके भीतर वह बीज न छिपा हो, जो मेधा बन जाए, प्रतिभा बन जाए; खिल जाए और बुद्धिमानी हो जाए। फर्क सिर्फ रूपांतरण का है, एक छलांग का। एक अबाउट टर्न, एक पूरा घूम जाना। जिस तरफ मुंह है, उस तरफ पीठ; और जिस तरफ पीठ है, उस तरफ मुंह हो जाना। बस, इतने में ही मूढ़ बुद्धिमान हो जाता है। इतनी-सी घटना से मूढ़ बुद्धिमान हो जाता है। जड़ता गिर जाती है, और चैतन्य का जन्म हो जाता है। पर्दे हट जाते हैं, और रहस्य के द्वार खुल जाते हैं।

लेकिन हम हिप्नोटाइज्ड हैं, हम बिलकुल सम्मोहित हैं चीजों से। हम इस बुरी तरह से सम्मोहित हैं, जिसका कोई हिसाब नहीं! हाथ कुछ नहीं लगता; अनुभव तक नहीं लगता हाथ। जिंदगीभर इस उपद्रव के बाद अनुभव भी हाथ नहीं लगता।

सुना है मैंने कि एक आदमी ने नई-नई किसी के साथ साझेदारी की। कोई पूछता था कि फिर कोई साझेदार मिल गया तुम्हें? क्योंकि वह आदमी कई साझेदारों को धोखा दे चुका है। फिर कोई साझेदार मिल गया तुम्हें? उसने कहा, फिर कोई साझेदार मिल गया। जमीन पर नासमझों की कोई कमी नहीं है। लेकिन कोई भी साझेदार मेरे साथ रहकर नुकसान में कभी नहीं पड़ता। उस आदमी ने कहा, यह तुम क्या कह रहे हो! हमने तो अब तक यही सुना कि जो भी तुम्हारे साथ रहता है, नुकसान में पड़ता है।

उसने कहा, तुम समझो, फिर तुम कभी ऐसा न कहोगे। अब यह जो नया साझीदार है, पूरी पूंजी लगा रहा है। पूरी पूंजी वह लगा रहा है, पूरा अनुभव मैं लगा रहा हूं। फिफ्टी-फिफ्टी समझो। आधा मेरा है, आधा उसका। अनुभव मेरा, धन उसका। और तुमसे मैं कहता हूं कि पांच साल में अनुभव उसके पास होगा और धन मेरे पास। लेकिन तुम समझते हो कि मैं ही फायदे में रहूंगा, वह फायदे में नहीं रहेगा? अनुभव!

लेकिन हम जिंदगी में कई बार जीवन का धन गंवा चुके और अब तक उस अनुभव को उपलब्ध नहीं हुए, जो वह साझीदार कह रहा था कि पांच साल में मेरा मित्र हो जाएगा। हमने न मालूम जीवन के धन को कितनी बार गंवाया है। हम किसी अनुभव को उपलब्ध नहीं हुए। हम फिर वही करते हैं। हम फिर वही करते हैं। हम फिर वही करते चले जाते हैं। जैसे अनुभव जैसी कोई चीज हमारे जीवन में पैदा ही नहीं होती। कल भी वही किया, परसों भी वही किया। पिछले वर्ष भी वही किया था। आने वाले वर्षों में भी आप वही करेंगे। क्या मतलब है इसका? कहीं कोई चीज है, जैसे बिलकुल हम विक्षिप्त की तरह सम्मोहित हैं संसार के साथ। बिलकुल बंधे हैं पागल की तरह; आब्सेस्ड हैं। नजर नहीं हटती, जैसे किसी ने नजर बांध दी हो; वशीकरण हो गया हो।

इसलिए कृष्ण कहते हैं कि मेरी माया में डूबे हुए, मेरे सम्मोहन में डूबे हुए; प्रकृति की दुस्तर माया में डूबे हुए मूढ़जन, मेरा भजन नहीं कर पाते हैं। हिप्नोटाइज्ड बाई नेचर। बिलकुल हिप्नोटाइज्ड हैं; प्रकृति के गुणों से सम्मोहित हो गए हैं। और मेरा स्मरण नहीं कर पाते। बस, प्रकृति का ही स्मरण करते हैं। उन्हें कुछ मिलने वाला नहीं है। लेकिन अगर अनुभव भी मिल जाए, तो बहुत। और जिसे अनुभव मिल जाता है, वह तत्काल रूपांतरित हो जाता है।

एक मित्र मेरे पास आए थे, वे कह रहे थे कि दूसरी शादी करने का विचार कर रहा हूं। मैंने उनसे कहा कि जहां तक मुझे याद आती है, तुम छः महीने पहले भी आए थे, जब तुम्हारी पत्नी जिंदा थी, तब तुम तलाक देने का सोचते थे। उन्होंने कहा, हां, इस स्त्री को तो तलाक देने की सोचता था, ऊब गया था। और मैंने कहा, जहां तक मुझे याद है, तुमने कहा था कि अगर मेरा किसी तरह इस स्त्री से तलाक हो जाए, तो मैं संन्यास ही ले लूं। लेकिन अब यह स्त्री अपने आप विदा हो गई। अब तुम दूसरी शादी की क्यों सोच रहे हो?

तो मैंने उन्हें कहा कि किसी मनोवैज्ञानिक से भी कोई यही पूछ रहा था, तो उसे मनोवैज्ञानिक ने कहा कि इससे मालूम पड़ता है, यह अनुभव के ऊपर आशा की विजय है। अनुभव के ऊपर आशा की विजय!

अनुभव तो यही है। वह आदमी कह रहा है कि अब मैं बचना चाहता हूं किसी तरह उस कलह से, जिसका नाम शादी था; उस उपद्रव से। लेकिन फिर करने का मन हो रहा है। अनुभव के ऊपर आशा जीत रही है फिर। इस आशा में कि शायद दुबारा वैसा न हो।

इसी आशा में हम हजारों जन्म गंवा देते हैं। फिर खोजेंगे धन; शायद इस बार धन मिल जाए। फिर खोजेंगे पद; शायद इस बार पद मिल जाए। फिर खोजेंगे मकान; शायद इस बार मकान मिल जाए। लेकिन कभी मकान नहीं मिलता, मौत मिलती है, कब्र मिलती है। और कभी धन नहीं मिलता; ढेर जरूर लग जाता है धन का; भीतर आदमी निर्धन का निर्धन रह जाता है। कभी पद नहीं मिलता; सब पद मिल जाते हैं; भीतर की हीनता उतनी की उतनी रह जाती है; उसमें कहीं कोई अंतर नहीं पड़ता।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि राजनीतिज्ञ जितने ज्यादा इनफीरिआरिटी कांप्लेक्स से, हीनता की ग्रंथि से पीड़ित होते हैं, इतना कोई भी पीड़ित नहीं होता है। सच तो यह है कि हीनता की ग्रंथि से पीड़ित होते हैं, इसीलिए पदों की तलाश पर निकलते हैं।

लेनिन के पैर, कुर्सी पर बैठता था, साधारण कुर्सी पर, तो जमीन तक नहीं पहुंचते थे। ऊपर का हिस्सा बड़ा था, नीचे का हिस्सा छोटा था। मनोवैज्ञानिक कहते हैं–विशेषकर एडलर–कि लेनिन यह दिखाने के लिए कि मैं कुछ हूं...! वह जो छोटे पैर थे, उनकी हीनता मन में उसको भारी थी।

हिटलर ना-कुछ था। फौज में एक साधारण से सिपाही की तरह उसे निकाला गया था। वह दिखाने को उत्सुक हो गया कि मैं भी कुछ हूं।

जिन लोगों के भीतर बहुत हीनता की ग्रंथि है, वे किसी बड़े पद पर खड़े होकर दुनिया को दिखाना चाहते हैं, हम कुछ हैं, समबडी। लेकिन उससे कोई अंतर नहीं पड़ता। हीनता की ग्रंथि भीतर रहती है, सोना ऊपर सज जाता है; पद ऊपर हो जाते हैं; रेशम लग जाता है; मखमल लग जाती है; गोटा-सितारा लग जाता है। वह भीतर जो हीन आदमी था, हीन का हीन बना रह जाता है।

लेकिन कितने ही अनुभव के बाद भी हमारे हाथ अनुभव की संपदा नहीं लगती। क्योंकि अनुभव की संपदा लग जाए, तो वह जो सम्मोहन है प्रकृति का, वह तत्काल टूट जाता है। और प्रकृति का सम्मोहन टूटा कि आपकी आंखें उस तरफ उठती हैं, जिस ओर प्रभु है।

सम्मोहन से बंधे रहना मूढ़ता है। प्रभु की ओर आंखों का उठ जाना, उसका भजन शुरू हो जाए, उसका नर्तन शुरू हो जाए, उसका कीर्तन भीतर जग उठे, जीवन एक नृत्य बन जाए–प्रभु को समर्पित, उसके चरणों में झुका हुआ–तो परम आनंद की उपलब्धि होती है। लेकिन वह सम्मोहन टूटे, तभी संभव है।

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः।। 17।।
उनमें भी नित्य मेरे में एकीभाव से स्थिति हुआ अनन्य प्रेम भक्ति वाला ज्ञानी अति उत्तम है, क्योंकि मेरे को तत्व से जानने वाले ज्ञानी को मैं अत्यंत प्रिय हूं और वह ज्ञानी मेरे को अत्यंत प्रिय है।

एकी रूप से, अनन्य भाव से, तत्व को समझकर, मुझे जो प्रेम करता है, वह ज्ञानी उत्तम है।

दो बातें। एकीभाव से; जरा भी फासला नहीं रखता जो मेरे और अपने बीच; किंचित मात्र भेद नहीं मानता जो अपने और मेरे बीच। यह बड़ी कठिन बात है। इसे थोड़ा समझना होगा।

क्या कभी आपने खयाल किया कि प्रेम जिससे भी हमारा होता है, हम उससे कुछ भी नहीं छिपाते! अगर कुछ भी छिपाते हैं, तो वह मतलब यही हुआ कि प्रेम नहीं है; पूरा नहीं है। और पूरा ही प्रेम होता है; अधूरा तो कोई प्रेम होता नहीं।

प्रेम का अर्थ है, जिस व्यक्ति से मेरा प्रेम है, उसके साथ मैं ऐसे ही रहूंगा, जैसे मैं अपने ही साथ हूं। उससे मैं कुछ भी छिपाऊंगा नहीं। न मेरा कोई पाप, न मेरा कोई झूठ, न मेरी कोई वृत्ति। उससे मैं कुछ भी न छिपाऊंगा। उसके सामने मैं उघड़कर बिलकुल नग्न हो जाऊंगा, मैं जैसा हूं।

क्या परमात्मा के सामने कभी आप उघड़कर पूरे नग्न हुए हैं?

ईसाइयत ने, क्रिश्चियनिटी ने कन्फेशन ईजाद किया इसी सिद्धांत के आधार पर। आधार यही है कि तब तक प्रार्थना पूरी नहीं हो सकती, जब तक कि किसी ने अपने पापों को स्वीकार न कर लिया हो, अन्यथा पाप का छिपाना ही फासला रहेगा, डिस्टेंस रहेगा।

एक आदमी खड़ा है भगवान के मंदिर में जाकर और वह जान रहा है कि मैंने चोरी की है। पुलिस से तो छिपा रहा है; घर के लोगों से छिपा रहा है; गांव के लोगों से भी छिपा रहा है; भगवान से भी छिपा रहा है! खड़ा है चंदन-तिलक वगैरह लगाकर। और उस चंदन-तिलक के पीछे चोर खड़ा है। और भगवान की प्रार्थना कर रहा है बड़े जोर-शोर से! तो फासला भारी है।

इसलिए ईसाइयत ने सच में कीमती तत्व विश्व के धर्म में जोड़ा, और वह तत्व था, कन्फेशन, स्वीकारोक्ति। पहले अपने पाप का स्वीकार, फिर पीछे प्रार्थना। ताकि कोई फासला न रह जाए। तुम नग्न और उघड़कर एक हो जाओ। कम से कम परमात्मा से तो पूरी बात कह दो। कम से कम उसके सामने तो वही हो जाओ, जो तुम हो!

सारी दुनिया में तो धोखा हम चलाते हैं। जो हम नहीं होते, वैसा दिखाते हैं। कमजोर आदमी सड़क पर अकड़कर चलता है। हालांकि सब अकड़ कमजोर आदमी की गवाही देती है। ताकतवर आदमी क्यों अकड़कर चलेगा? किससे अकड़कर चलेगा?

कमजोर आदमी अकड़कर चलता है। निर्बल आदमी साहस की बातें करता है। कुरूप आदमी सौंदर्य के प्रसाधनों का उपयोग करता है। इसलिए दुनिया जितनी कुरूप होती जाती है, उतने सौंदर्य के साधन की ज्यादा जरूरत पड़ती है। क्योंकि वह कुरूपता को छिपाना है सब तरफ से।

स्त्रियों को कुरूपता का बोध ज्यादा भारी है। क्योंकि शरीर का बोध थोड़ा पुरुष से ज्यादा है; बाडी कांशसनेस थोड़ी ज्यादा है। तो वे अपने बैग में ही सब सामान लिए हुए हैं। वहीं उनका सारा सौंदर्य उस बैग में बंद है। जरा मौका मिला कि उनको फिर अपने को तैयार कर लेना है! अपने पर जरा भरोसा नहीं है। वह जो बैग में थोड़ा-सा सामान पड़ा है, उस पर सारा भरोसा है। एक पतली पर्त है सौंदर्य की, जिसके पीछे कुरूपता अपने को ओट में लेती है।

हम दुनिया को तो धोखा दे रहे हैं। पर यह धोखा क्या परमात्मा के पास भी ले जाइएगा? क्या वहां भी इसी धोखे की शक्ल को, इसी मास्के, इसी मुखौटे को लेकर खड़े होंगे? क्या वहां भी परमात्मा को दिखलाने की कोशिश करेंगे वह, जो कि आप नहीं हैं? तो फिर एकीभाव न रहा। फिर प्रेम नहीं है, प्रार्थना नहीं है।

कृष्ण कहते हैं, एकीभाव को उपलब्ध हुआ, जो छिपाता ही नहीं कुछ।

जैसे छोटा बच्चा बगल के मकान से फल चुराकर खा आया है और दौड़ता चला आ रहा है अपनी मां को कहने, कि देखा, आज पड़ोसी के घर में घुस गया और फल खाकर चला आ रहा हूं! ऐसा सरल, इतना इनोसेंट, जो परमात्मा के सामने अपने को बिलकुल प्रकट कर देता है, तो एकीभाव निर्मित होता है; नहीं तो एकीभाव निर्मित नहीं होता।

एक आदमी अपने विवाह का पच्चीसवां वर्ष-दिन मना रहा था; पच्चीस वर्ष पूरे हो गए थे। एक मित्र ने उससे पूछा कि पच्चीस वर्ष तुम पति और पत्नी दोनों इतनी शांति से साथ रहे हो; तुम दोनों के बीच भी कुछ ऐसी बातें हैं क्या, जो तुम्हारी पत्नी तुम्हारे बाबत न जानती हो, और तुम तुम्हारी पत्नी के बाबत न जानते हो?

उस आदमी ने कहा कि ऐसी बहुत-सी बातें हैं, जो पत्नी सोचती है कि उसके बाबत मुझे पता नहीं हैं, हालांकि मुझे पता हैं। और इसीलिए मैं सोचता हूं, ऐसी भी बहुत-सी बातें जरूर होंगी, जो मैं सोचता हूं, मेरी पत्नी को पता नहीं हैं, लेकिन उसे पता हैं। अगर तुम सच ही पूछ रहे हो, तो ये पच्चीस साल हम साथ रहे, यह कहना कठिन है। हम इन पच्चीस सालों में अपने-अपने मुखौटों को सम्हालने में लगे रहे। हम एक-दूसरे को वह दिखाने की कोशिश करते रहे हैं, जो हम नहीं हैं। और यही हमारा दुख है, यही हमारी पीड़ा है, यही हमारी परेशानी है।

हालांकि पच्चीस साल जिसके साथ रहो, वह सब जान लेता है; मुखौटे के पीछे जो छिपा है, उसको भी जान लेता है। क्योंकि कभी नींद में मुखौटा उखड़ जाता है। कभी क्रोध में उतर जाता है। कभी बाथरूम से एकदम जल्दी से बाहर निकल आए; खयाल न रहा, मुखौटा नहीं होता चेहरे पर। कभी मौके-बेमौके जिसके हम साथ रहते हैं, वह झांक ही लेता है कि पीछे कौन आदमी है! लेकिन फिर भी कोशिश चलती है।

बाप बेटे के सामने नहीं खुलता। पत्नी पति के सामने नहीं खुलती। मित्र मित्र के सामने नहीं खुलता। सारी पृथ्वी एक बड़ा डिसेप्शन, एक बड़ा जाल है। और इसीलिए हम इतने परेशान, इतने चिंतित और बोझिल हैं, क्योंकि सारी दुनिया हमारे खिलाफ है और हम अकेले लड़ रहे हैं। एक-एक आदमी इतनी बड़ी दुनिया के खिलाफ लड़ रहा है। इतनी बड़ी दुनिया को धोखा देने में लगा हुआ है, तो लड़ाई भारी है।

परमात्मा के पास तो वही पहुंच सकेगा, जो अपने सब धोखे, अपने मुखौटे, अपनी शक्लें मंदिर के बाहर छोड़ जाए, भीतर जाकर नग्न खड़ा हो जाए और कह दे कि मैं ऐसा हूं।

एकीभाव बहुत वैज्ञानिक बात है। जब किसी से मैं कुछ भी नहीं छिपाता, तो एकीभाव उत्पन्न होता है। जब तक छिपाता हूं, तब तक दूजापन, दुई, द्वैत, दूसरापन मौजूद रहता है। एक।

दूसरा, कृष्ण कहते हैं कि ऐसा एकीभाव, अनन्य भाव और तत्व को समझकर, जो ज्ञानी मेरे पास आता है, मुझे प्रेम करता है, उसे मैं भी प्रेम करता हूं। तत्व को समझकर! क्योंकि बहुत बार ऐसा हो जाता है कि कुछ लोग बिना तत्व को समझे...।

बिना तत्व को समझे! तत्व का अर्थ है, बिना जीवन के रहस्य को समझे, बिना किसी गहरी अंडरस्टैंडिंग, बिना किसी समझ के, धर्म की यात्रा पर निकल जाते हैं, तब बड़ी कठिनाई होती है। ऐसे अप्रौढ़ चित्त, ऐसे जुवेनाइल, बचकाने चित्त, जिनमें अभी कोई प्रौढ़ता न थी और जो धर्म की यात्रा पर निकल जाते हैं, वे धर्म को तो उपलब्ध होते नहीं, सिर्फ धर्म को ही अप्रौढ़ बनाने में सफल हो पाते हैं।

ऐसा हुआ है चारों तरफ। सारी दुनिया में ऐसा हुआ है। कई बार तो आप जीवन के सत्य को समझकर धर्म की तरफ नहीं जाते; बल्कि धार्मिक बातें आपको प्रलोभनपूर्ण लगती हैं, इसलिए चले जाते हैं। इसका फर्क आप समझ लें। तत्व को समझकर जाने वाले और प्रलोभन से जाने वाले का क्या फर्क है?

मैंने आपसे बात कही कि परमात्मा को पाना परम आनंद है। आपके मन में ग्रीड पकड़ी, लोभ पकड़ा। आपको लगा कि अरे, परमात्मा को पाना परम आनंद है, तो हम भी पा लें! आपने सोचा कि ठीक है। बुद्ध भी कहते हैं, महावीर भी कहते हैं, कृष्ण भी कहते हैं, क्राइस्ट भी, मोहम्मद भी, सब कहते हैं कि उसे पा लेना परम आनंद है। आपके मन में लोभ जगा।

लेकिन आपको पता नहीं कि वे सब कहते हैं कि लोभ जिसके मन में है, वह उसे न पा सकेगा। अब बड़ी कठिनाई हो गई। और आप चले मंदिर की तरफ, मस्जिद की तरफ। आपने सोचा कि चलो आनंद मिलता है, तो हम इसको भी पा लें।

महावीर एक गांव में ठहरे हैं। उस गांव का सम्राट श्रेणिक महावीर से मिलने आया। और उसने महावीर के चरणों पर सिर रखा और उसने कहा कि आपकी कृपा से...।

झूठ बोल रहा था वह यह। महावीर के पास ऐसा झूठ नहीं बोलना चाहिए। क्योंकि वही मैं कह रहा हूं, एकीभाव नहीं है। वह बोला, आपकी कृपा से! हालांकि उसकी आंखें, उसका सिर कह रहा था कि मेरे सामर्थ्य से। लेकिन वह कह रहा था, आपकी कृपा से। फार्मल। महावीर के पास फार्मेलिटी लेकर नहीं जाना चाहिए; औपचारिकता।

महावीर ने कहा, क्षमा करो। तुम क्या कहने जा रहे हो! मैंने तो तुम पर कभी कोई कृपा नहीं की! उसने कहा कि नहीं-नहीं, आपकी बिना कृपा के क्या हो सकता है! यह सब राज्य-वैभव सब आपकी कृपा से मिला है। महावीर ने कहा, मुझे मत घसीटो। क्योंकि तुमने न मालूम कितने लोगों की हत्याएं की हैं, मेरा कोई इससे लेना-देना नहीं है। तुम न मालूम कितने लोगों का लहू पी गए हो। इससे मेरा क्या संबंध है!

नहीं, वह बोला, बिना आपकी कृपा के क्या हो सकता था! सब आपकी कृपा से हुआ है। लेकिन अभी-अभी मुझे पता चला कि यह सब बेकार है, जब तक ध्यान का आनंद न मिल जाए। तो मैं आपसे पूछने आया हूं कि कितना खर्च पड़ेगा? मैं खरीद लूं। ध्यान का आनंद खरीद लेंगे। ऐसी क्या चीज है, जो मैं नहीं खरीद सकता हूं?

महावीर को कैसी मुसीबत हुई होगी, हम समझ सकते हैं। ऐसी मुसीबत महावीर जैसे लोगों को रोज होती है। वह बेचारा कुछ गलत नहीं कह रहा है। वही वेटरनरी डाक्टर की भाषा है। वह सब चीजें खरीदता रहा है। जो भी चीज चाहिए, खरीद लेता है। सोचा कि ध्यान, सामायिक। महावीर का ध्यान के लिए शब्द है, सामायिक। सामायिक कैसे मिल जाए? मैंने बड़ी तारीफ सुनी है कि बड़ा आनंद है। इसको भी खरीद लेंगे!

महावीर ने कहा, ऐसा करो। बड़ा कठिन है मामला। सौदा बहुत मुश्किल है। लेकिन फिर अब तुम कहते हो, खरीद लोगे, तो तुम ऐसा करो कि तुम्हारे गांव में एक मेरा भक्त रहता है। एक बहुत गरीब आदमी का नाम महावीर ने लिया कि वह तुम्हारे गांव में रहता है; बहुत गरीब आदमी है। वह ध्यान को उपलब्ध हो गया है; वह थोड़ा-सा ध्यान तुम्हें बेच देगा। तुम चले जाओ; कीमत पूछ लो।

वह गया कि कोई हर्जा नहीं है। ध्यान क्या, मैं उस पूरे आदमी को ही खरीदकर महल लिए जाता हूं। उसकी क्या बात है, उठवा लेंगे घर पूरे आदमी को ही। उसने उस पूरे आदमी को घर उठवा लिया! आदमी तो आ गया। उसने कहा कि बोल भाई, क्या लेगा तू तेरे ध्यान का? जो तुझे लेना हो, ले जा।

उस आदमी ने कहा कि आप बिलकुल नासमझ हैं। आप कुछ समझे नहीं। ध्यान कहीं खरीदा जा सकता है! और मैं बेचना भी चाहूं, तो कैसे बेचूं! यह तो मेरी भीतरी दशा है।

उसने कहा, यह बातचीत छोड़ो। ऐसी कौन-सी चीज है, जो मैं नहीं खरीद सकता? मैंने तुझे ही उठवा लिया, तो तेरे ध्यान का क्या वश है, जो नहीं आएगा। तेरा ध्यान क्या घर पड़ा रह गया? तू जाकर वापस उठाकर ला। तू जो कहे, मैं देने को तैयार हूं। तू फिक्र मत कर। लाख, दो लाख, दस लाख, करोड़–कितना तुझे चाहिए? तू बोल, और ले ले; और ध्यान दे जा।

उस आदमी ने कहा कि तुम मेरी जान ले लो; ध्यान बेचना मुश्किल है। क्योंकि तुम समझ ही नहीं पा रहे कि ध्यान क्या है। उसने कहा, कुछ भी हो, इससे मुझे मतलब नहीं। लोग कहते हैं कि ध्यान मिलने से बड़ा आनंद मिलता है; हमें आनंद से मतलब है। जाने दे ध्यान; ध्यान से तुझे जो आनंद मिला है, वह कोई और तरकीब से मिल सकता हो, तो मुझे बता दे।

हम में से अधिक लोग धर्म की तरफ लोभ के कारण उत्सुक होते हैं। एक। सुनते हैं खबर समाधि की, कि खिलते हैं फूल परम; सुनते हैं खबर ध्यान की, कि भीतर हो जाता है मौन आत्यंतिक; सुनते हैं, कि मृत्यु भी थक जाती है उसके सामने, जो स्वयं को जान लेता है, हार जाती है। मन में लोभ पकड़ता है, हम भी क्यों न पा लें?

पर ध्यान रखना, लोभी नहीं पा सकेगा। इसलिए कृष्ण कहते हैं, तत्व को समझकर।

परमात्मा में आनंद मिलता है, ऐसा जानकर जो चलेगा, वह लोभ से जा रहा है। संसार में दुख है, ऐसा समझकर जो जा रहा है, वह तत्व को जानकर जा रहा है। इस फर्क को आप समझ लेना।

संसार व्यर्थ है, ऐसा जानकर जो जा रहा है, वह तत्व को जानकर जा रहा है। और जो मान रहा है कि संसार तो बिलकुल ठीक है, परमात्मा को और जोड़ लें इसी में थोड़ा-सा; उसका सुख भी ले लें। यह तो मिल ही रहा है, उसे भी ले लें। वह आदमी सिर्फ प्रलोभन से जा रहा है; तत्व को जानकर नहीं जा रहा है।

दुनिया में अधिक लोग प्रभु के मंदिर की तरफ प्रलोभन से जाते हैं या भय के कारण जाते हैं, जो कि प्रलोभन के सिक्के का दूसरा पहलू है। भय के कारण, या लोभ के कारण।

मौत पास आती है, तो बूढ़ा आदमी घबड़ाने लगता है। वह सोचता है, अब मरे! अब क्या होगा? अब होगा क्या? अब तो यह मौत चली आ रही है। अब कोई बचा नहीं सकेगा। अब कितने ही लोग मुझे वोट दे दें, तो भी मामला हल होगा नहीं। वह वोट पड़ी रह जाएगी, मैं मर जाऊंगा। अब कितनी ही तिजोड़ी मेरी बड़ी हो, अब वह किसी काम की नहीं है; अब मेरी मुट्ठी उसको बांध नहीं पाएगी। अब मैं मरा। अब कोई बचा नहीं सकेगा। अब बेटे, जिनके लिए मैंने जिंदगी गंवाई, अब मुझे बचा न सकेंगे। मित्र, जिनके लिए मैंने सब लगाया, अब मुझे बचा न सकेंगे। समाज, जिससे मैं डरता था, अब मुझे बचा न सकेगा। अब इस भय की थर्राहट की हालत में आदमी सोचता है, चलो, भगवान का सहारा ले लें। अब वही बचा सकेगा।

भयभीत आदमी भगवान की तरफ चला जाता है। इसलिए मंदिरों-मस्जिदों में, गिरजों में बूढ़े, वृद्ध इकट्ठे हो जाते हैं–भय के कारण। भय के कारण। ये वे ही लोग हैं, जो जवान थे, तब नहीं आए। और ये वे ही लोग हैं, जो अपने घर के जवानों को भी अभी कह रहे होंगे कि अभी क्या जरूरत है तुम्हें जाने की। अभी तो जवानी है।

आज एक वृद्ध महिला मेरे पास आई थी। उसकी लड़की ने संन्यास ले लिया, तो वृद्ध महिला बहुत परेशान है। वह कह रही है कि अभी तो इसकी उम्र–अभी तो यह जवान है! मैंने उससे कहा कि यह जवान है, लेकिन तू तो बूढ़ी हो गई! तेरा इरादा कब संन्यास का है? इसका संन्यास रुकवाने आई थी वह कि इसका संन्यास रोको; इसको संन्यास नहीं लेना है। यह तो अभी जवान है। मैंने कहा, तेरा क्या इरादा है? तुझे तो संन्यास ले लेना चाहिए। तू तो बूढ़ी हो गई! उसने कहा, वह तो मैं सोचूंगी। लेकिन इसका तो छुड़वा दो।

तो बूढ़े लोग जवानों को कहते हैं कि तुम तो अभी जवान हो, तुम्हें धर्म से क्या लेना-देना! क्योंकि धर्म को उन्होंने सिर्फ भय की भाषा में समझा है। सिर्फ भय। जब भय पकड़ ले और पैर कंप जाएं, और हाथ-पैर हिलने लगें, और मौत धक्के देने लगे, तब आखिरी वक्त राम-राम कह लेना।

इसलिए तो हम, जब आदमी मर जाता है, तो राम-राम कहकर उसको मरघट तक ले जाते हैं! बेचारा खुद नहीं कह पाया; हम कह रहे हैं! उनको तो मौका नहीं मिला। अब हम तो कम से कम इतना तो उनको साथ दें, कि उनको मरघट तक पहुंचा आएं राम-राम कहकर। जिंदगी उनकी चूक गई; उन्होंने कभी राम-राम न कहा। अब मर गए हैं, तो अब हम उनको राम-राम कहने जा रहे हैं!

मगर एक लिहाज से अच्छा है, क्योंकि आप भी जब मरेंगे, तो दूसरे आपको भी...! एक म्युचुअल कांसपिरेसी चल रही है, पारस्परिक षडयंत्र, कि हम तुम्हें भेज आएंगे, तुम हमें भेज आना। राम-राम कह देना आखिरी वक्त। अगर कहीं कोई परमात्मा होगा, तो सुन लेगा कि बड़ा भक्त मर गया। देखो, राम-राम की आवाज आ रही है! जिंदगीभर जिनके हृदय से राम नहीं निकला, मरी-मराई लाश के चारों तरफ राम-राम कर रहे हैं!

मरते दम तक धर्म का खयाल आना शुरू होता है–भय के कारण, तत्व की समझ से नहीं। क्योंकि तत्व की समझ का फिर जवानी, बुढ़ापे और बचपन से कोई संबंध नहीं है। तत्व की समझ बड़ी और बात है, उसका उम्र से कोई लेना-देना नहीं है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, वे हैं मेरे प्यारे, जो तत्व को समझकर मेरी ओर आते हैं। उन्हें मैं ज्ञानी कहता हूं। भय से, लोभ इत्यादि से जो आ जाते हैं, उनका कुछ मतलब नहीं है। और वे मुझे प्रेम करते हैं, मैं भी उन्हें बहुत प्रेम करता हूं।

इसका क्या मतलब होगा? क्या कृष्ण का प्रेम भी सशर्त है, कंडीशनल है, कि जब आप उनको प्रेम करेंगे, तभी वे आपको प्रेम करेंगे? क्या परमात्मा भी कोई शर्तबंदी करता है कि तुम मेरा नाम भजोगे, तो मैं तुम्हें प्रेम करूंगा? तुम तत्व को समझकर आओगे, तो मैं तुम्हें प्रेम करूंगा? क्या परमात्मा भी इस तरह की शर्त रखता है? तब तो प्रेम बड़ा छोटा हो जाएगा।

नहीं, कृष्ण का यह मतलब नहीं है कि जो मुझे प्रेम करते हैं, मैं उन्हें प्रेम करता हूं। मतलब यह है कि परमात्मा का प्रेम तो सबके ऊपर बरसता है। लेकिन जो परमात्मा को प्रेम नहीं करते, उन्हें उस प्रेम से कभी संबंध नहीं हो पाता, मिलन नहीं हो पाता।

जैसे एक उलटा घड़ा रखा है और बरस रही है वर्षा आकाश से। बादल घनघोर बरस रहे हैं, उलटा घड़ा रखा है। रखा रहे। कोई ऐसा नहीं है कि उलटे घड़े पर बादल नहीं बरस रहे हैं। उस पर भी बरस रहे हैं; लेकिन वह भरेगा नहीं। सीधे घड़े रखे होंगे, वे भर जाएंगे। फिर मेघ कह सकते हैं कि जो सीधे घड़े हैं, उन्हें मैं भर देता हूं। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि उलटे घड़ों पर बरसता नहीं पानी। लेकिन उलटे घड़े खुद ही उलटे बैठे हैं; उसमें कोई क्या कर सकता है! और पक्की जिद्द करके बैठे हैं कि हम तो उलटे ही बैठे रहेंगे; हम कभी सीधे न होंगे!

प्रभु को जो प्रेम करता है, उसे प्रेम मिलता है, उसका कुल मतलब इतना ही है कि उसे ही पता चलता है कि मिल रहा है। जो प्रेम ही नहीं करता, उसे कभी पता नहीं चलता कि मिल रहा है।

इसलिए जब हम कहते हैं, प्रभु की कृपा, तो ऐसा मत सोचना कि किसी पर होती है और किसी पर नहीं होती है। प्रभु की कृपा तो ऐसे ही बरस रही है, जैसे सूरज निकला हो, और सभी घरों पर किरणें बरस रही हैं। लेकिन कुछ लोग अपने दरवाजे बंद किए बैठे हैं। किन्हीं के दरवाजे भी खुले हैं, तो वे इतने होशियार हैं कि आंख बंद किए बैठे हैं! क्या करिएगा? सूरज क्या करे? इनकी आंखों की पलकें खोले? खोले, तो ये नाराज होंगे। पुलिस में रिपोर्ट लिखवाएंगे कि हम सो रहे थे, नाहक सूरज ने हमारी आंखें खोल दीं। क्या करे सूरज, इनके दरवाजे तोड़े? पुलिस में रिपोर्ट लिखवा देंगे कि सूरज चोर हो गया; हमारे दरवाजे खोलकर भीतर घुसने लगा। सूरज बाहर खड़ा रहेगा; जब आप दरवाजा खोलेंगे, आ जाएगा। जब आप आंख खोलेंगे, तो किरण भीतर पहुंच जाएगी।

परमात्मा का प्रेम तो सब पर बरस रहा है समान। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि आपको समान मिलता है। समान आपको मिलता नहीं, क्योंकि आप लेते ही नहीं। बरसता समान है, मिलता अलग-अलग है। मिलता अपनी-अपनी पात्रता से है। मिलता अपनी-अपनी उन्मुखता से है।

अब जो आदमी लोभ के कारण परमात्मा की तरफ गया, उसका घड़ा उलटा रहेगा। वह कितनी ही प्रार्थना करे, कितनी ही प्रार्थना करे, उसे प्रेम परमात्मा का मिलेगा नहीं। जो भय के कारण परमात्मा की तरफ गया, उसका घड़ा उलटा रहेगा। वह कितना ही चीखे-चिल्लाए, उसकी चीख-चिल्लाहट परमात्मा के लिए नहीं है, भय की वजह से है।

लेकिन जो जीवन के तत्व को समझकर गया कि ठीक है। यह जीवन, यह सारा खेल, यह सारा नाटक दो कौड़ी का है, इसका कोई मूल्य नहीं है। अब मैं उसकी तलाश में चलूं, जो इस जीवन के पार है। इस जीवन के किसी प्रलोभन की वजह से नहीं; यह जीवन, टोटल, पूरा का पूरा बेकार हुआ, इसलिए; नाटक हुआ, व्यर्थ हुआ, इसलिए; यह सारा अनुभव सारहीन हुआ, इसलिए अब मैं हटूं और उस तरफ खोजूं। क्या है वहां? कौन है वहां? कौन-सी संपदा है वहां? खोजूं!

इस जिज्ञासा से जो गया ज्ञानी, तत्व को जानकर, एकीभाव को उपलब्ध हुआ, अनन्य होकर मुझे प्रेम करता है, मैं भी उसे प्रेम करता हूं।

ओशो – गीता-दर्शन – भाग 3
मुखौटों से मुक्ति— अध्याय—7 (प्रवचन—7)

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्।
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम्।। 18 ।।
बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः।। 19 ।।
यद्यपि ये सब ही उदार हैं अर्थात श्रद्धासहित मेरे भजन के लिए समय लगाने वाले होने से उत्तम हैं, परंतु ज्ञानी तो साक्षात मेरा स्वरूप ही है, ऐसा मेरा मत है, क्योंकि वह स्थिर बुद्धि ज्ञानी भक्त अति उत्तम गति-स्वरूप मेरे में ही अच्छी प्रकार स्थित है। और जो बहुत जन्मों के अंत के जन्म में तत्वज्ञान को प्राप्त हुआ ज्ञानी, सब कुछ वासुदेव ही है, इस प्रकार मेरे को भजता है, वह महात्मा अति दुर्लभ है।

प्रभु को जो जानता है, वह उस जानने में ही उसके साथ एक हो जाता है। सब दूरी अज्ञान की दूरी है। सब फासले अज्ञान के फासले हैं। परमात्मा को दूर से जानने का कोई भी उपाय नहीं है, परमात्मा होकर ही जाना जा सकता है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, जो मुझे जान लेता है, वह ज्ञानी, वासुदेव ही हो गया, वह भगवान ही हो गया, वह कृष्ण ही हो गया, वह मैं ही हो गया।

लेकिन कैसा ज्ञानी कृष्ण को जानता है? दो बातें कही हैं। कहा है, युक्त आत्मा, जिसकी आत्मा युक्त हो गई, इंटिग्रेटेड हो गई।

हम सबकी आत्मा खंड-खंड है, अयुक्त है, टुकड़े-टुकड़े है। हम एक आदमी नहीं हैं; बहुत आदमी हैं एक साथ। नाम हमारा एक है, इससे भ्रम पैदा होता है। एक नाम के लेबिल के पीछे बहुत निवासी हैं। क्षण-क्षण में हमारे भीतर बदलते रहते हैं लोग। हम एक भीड़ हैं, एक समूह–प्रत्येक आदमी–क्योंकि बहुत खंड हैं हमारे। खंड ही हैं, ऐसा नहीं, विपरीत खंड भी हमारे भीतर हैं। जो हम एक हाथ से करते हैं, उसे ही दूसरे हाथ से मिटा देते हैं।

एक क्षण हम प्रेम से भर जाते हैं, दूसरे क्षण घृणा से भर जाते हैं। वह जो प्रेम में मंदिर बनाया था, घृणा में मिट्टी में मिल जाता है। एक क्षण क्रोध में जलते हैं, और फिर क्षमा से भर जाते हैं। वह जो आग जलाई थी अपने ही प्राणों की, उसे अपने ही प्राणों के पानी से बुझाते हैं। क्षण-क्षण हमारे भीतर बदलता रहता है सब कुछ। हम एक प्रवाह हैं।

युक्त पुरुष इससे विपरीत होता है। युक्त पुरुष का अर्थ है, वह जो भीतर एक ही है। कहीं से चखो उसे, स्वाद उसका एक। कहीं से बजाओ उसे, आवाज उसकी एक। कहीं से खोजो उसे, वही मिलेगा। किसी द्वार से, किसी दरवाजे से, किसी स्थिति में, वही मिलेगा।

यहां जरा-सी धूप बदल जाती है और छाया हो जाती है, तो हम बदल जाते हैं। यहां जरा-सा अंतर पड़ता है परिस्थिति में, और हमारे भीतर का आदमी दूसरा हो जाता है। खीसे में पैसे हों थोड़े, तो हृदय की धड़कन और कुछ होती है। खीसे में पैसे थोड़े कम हो जाएं, हृदय की धड़कन और कुछ हो जाती है। हम हैं, ऐसा कहना ही शायद ठीक नहीं है।

गुरजिएफ के पास कोई जाता था और कहता था कि मुझे आत्मा को खोजना है, तो गुरजिएफ पूछता था, आत्मा तुम्हारे पास है? बड़ा अजीब सवाल पूछता था। पूछता था, डू यू एक्झिस्ट–तुम हो भी? कोई भी कहेगा कि मैं हूं, नहीं तो आता कौन! गुरजिएफ कहता, जो घर से निकला था, वही पहुंचा है मेरे पास कि रास्ते में बदल गया?

अनेकों को उसकी बात समझ में न आती थी। जो भी बात समझने योग्य है, वह बहुत कम लोगों की समझ में आती है। जो नहीं समझने योग्य है, वह सबकी समझ में आ जाती है। सिर्फ नासमझी ही सबकी समझ में आती है।

तो गुरजिएफ कहता था, पहले तुम सोचकर खोजकर आओ कि तुम हो भी! अन्यथा मैं मेहनत करूं और तुम बदल जाओ! ऐसे कैनवास पर चित्र बनाने का तो कोई मतलब नहीं है, कि हम चित्र बना न पाएं और कैनवास बदल जाए! ऐसे पत्थर में तो मूर्ति तोड़ने का कोई प्रयोजन नहीं है, कि हम पत्थर में मूर्ति तोड़ भी न पाएं कि पत्थर बदल जाए।

आदमी के साथ करीब-करीब मेहनत ऐसी ही खराब होती है। जो आदमी के साथ मेहनत करते हैं, वे जानते हैं कि किस बुरी तरह खराब होती है। सुबह जिसके साथ मेहनत की थी, वह सांझ मिलता नहीं खोजे से कि कहां गया। चेहरे हैं।

लेकिन एक मजे की बात है कि हमारे पास एक चेहरा हो, तो भी ठीक। झूठा ही सही; एक हो, तो भी ठीक। झूठे चेहरे हैं, वे भी बहुत हैं। और कितनी कुशलता से हम उन्हें बदलते हैं कि हमें कभी पता नहीं चलता कि हमने चेहरा बदल लिया। क्षणभर में बदल जाता है।

सुना है मैंने कि फकीर नसरुद्दीन के गांव में उस देश का सम्राट आने वाला था। तो गांव में कोई इतना बुद्धिमान आदमी नहीं था, जितना कि नसरुद्दीन। तो लोगों ने कहा कि तुम्हीं गांव की तरफ से उनसे मिल लेना, क्योंकि दरबारी शिष्टता, सदाचार का हमें कुछ पता नहीं। नसरुद्दीन ने कहा, मुझे ही कहां पता है! अधिकारियों ने कहा, घबड़ाओ मत, हम राजा को प्रश्न भी समझा देंगे कि वह तुमसे क्या पूछे और तुम्हें जवाब भी समझा देते हैं कि तुम क्या जवाब दो; फिर कोई दिक्कत न रहेगी। नसरुद्दीन ने कहा कि बिलकुल ठीक है।

सब बना हुआ खेल था। राजा को समझा दिया गया था कि गरीब गांव है, बेपढ़े-लिखे लोग हैं। एक नसरुद्दीन भर है, जो थोड़ा-सा लिख-पढ़ लेता है। तो यही सवाल पूछना, क्योंकि इसी के जवाब उसने तैयार कर रखे हैं। और कोई सवाल मत पूछना।

लेकिन बड़ी गड़बड़ हो गई। सम्राट ने पूछा...नसरुद्दीन को सिखाया था कि तेरी उम्र कितनी है? नसरुद्दीन की जितनी उम्र थी, साठ वर्ष, उसने तय कर रखा था। सम्राट को पूछना था कि तू कितने दिन से धर्म के अध्ययन और साधना में लगा है? तो पंद्रह वर्ष, उसने याद कर रखा था। लेकिन सब गड़बड़ हो गया।

सम्राट ने पूछा, तेरी उम्र कितनी है? नसरुद्दीन ने कहा, पंद्रह वर्ष। थोड़ा सम्राट हैरान हुआ। साठ साल का बूढ़ा था, लेकिन पंद्रह वर्ष कह रहा था। फिर उसने पूछा कि और तुम धर्म की साधना में कितने दिन से लगे हो? नसरुद्दीन ने कहा, साठ वर्ष। सम्राट ने कहा कि तुम पागल तो नहीं हो? नसरुद्दीन ने कहा, वही मैं सोच रहा हूं कि आप पागल तो नहीं हैं! क्योंकि मुझे जिस क्रम में समझाया गया था, मालूम होता है कि तुम्हें किसी और क्रम में समझाया गया है। तुम भी रटे-रटाए सवाल पूछ रहे हो, मैं भी रटे-रटाए जवाब दे रहा हूं। बीच का आदमी गड़बड़ कर गया।

बड़ी मुश्किल हो गई। पूरा गांव इकट्ठा था। दरबारी इकट्ठे थे। अब क्या हो? नसरुद्दीन ने कहा, ऐसा करें, तुम यह राजा होने का जरा नकाब उतार लो, और मैं बुद्धिमान होने का नकाब उतार लूं। फिर हम दोनों बैठकर दिल खोलकर बात करें, तो कुछ मजा आए। यह चेहरा तुम जरा अलग कर दो सम्राट होने का, और मैं भी चेहरा अलग कर दूं बुद्धिमान होने का। इसी में सब गड़बड़ हो गई। ये चेहरे दिक्कत दे रहे हैं।

पता नहीं, वह सम्राट समझा या नहीं। नसरुद्दीन तो मजाक कर रहा था। वह सच में ही बुद्धिमान लोगों में से एक था। नसरुद्दीन ने कहा कि अच्छा न हो कि हम आदमी आदमी की तरह बैठकर बात कर लें! ये चेहरे अलग कर दें। सम्राट को बड़ा कठिन पड़ा होगा। सम्राट जैसा चेहरा उतारना बड़ा मुश्किल होता है। सम्राट का चेहरा उतारना तो दूर है, भिखारी को भी अपना चेहरा उतारना मुश्किल होता है; फिक्स्ड हो जाता है सब; बंध जाता है।

अमेरिका में एक बहुत बड़ा अरबपति था, रथचाइल्ड। एक दिन एक भिखारी भीतर घुस गया उसके मकान के और जोर-शोर से शोरगुल करने लगा कि मुझे कुछ मिलना ही चाहिए। बिना लिए मैं जाऊंगा नहीं। जितना दरबानों ने अलग करने की कोशिश की, उतनी उछलकूद मचा दी। आवाज उसकी इतनी थी कि रथचाइल्ड के कमरे तक पहुंच गई। वह निकलकर बाहर आया। उसने उसे पांच डालर भेंट किए और कहा कि सुन, अगर तूने शोरगुल न मचाया होता, तो मैं तुझे बीस डालर देने वाला था।

मालूम है उस भिखमंगे ने क्या कहा? उसने कहा, महानुभाव, अपनी सलाह अपने पास रखिए। आप बैंकर हो, मैं आपको बैंकिंग की सलाह नहीं देता। मैं जन्मजात भिखारी हूं, कृपा करके भिक्षा के संबंध में मुझे कोई सलाह मत दीजिए।

रथचाइल्ड ने अपनी आत्मकथा में लिखवाया है कि उस दिन मैंने पहली दफा देखा कि भिखारी का भी अपना चेहरा है। वह कहता है, जन्मजात भिखारी हूं! मैं कोई छोटा साधारण भिखारी नहीं हूं ऐसा ऐरा-गैरा, कि अभी-अभी सीख गया हूं। जन्मजात हूं। और तुम बड़े बैंकर हो, मैं तुम्हें सलाह नहीं देता बैंकिंग के बाबत। कृपा करके तुम भी मुझे भीख मांगने के बाबत सलाह मत दो। मैं अपनी कला अच्छी तरह जानता हूं।

रथचाइल्ड ने लिखा है अपनी आत्मकथा में कि उस दिन मैंने उस भिखारी को गौर से देखा और मैंने पाया कि सम्राटों के ही चेहरे नहीं होते; भिखारियों के भी अपने चेहरे हैं।

लेकिन भिखारी भी एक ही चेहरा लेकर नहीं चलता। जब वह अपनी पत्नी के पास पहुंचता है, तो चेहरा बदलता है। जब अपने बेटे के पास जाता है, तो चेहरा बदल लेता है। जब पैसे वाले के पास से निकलता है, तो चेहरा और होता है। जब गरीब के पास से निकलता है, तो चेहरा और होता है। जिससे मिल सकता है, उसके पास चेहरा और होता है। जिससे नहीं मिल सकता है, उसके पास चेहरा और होता है। उसके पास भी एक फ्लेक्सिबल, एक लोचपूर्ण व्यक्तित्व है, जिसमें वह चेहरे अपने बदलता रहता है।

ये चेहरे हमें बदलने इसलिए पड़ते हैं, क्योंकि हमारे भीतर अपना कोई चेहरा नहीं है, कोई ओरिजिनल फेस नहीं है।

कृष्ण कहते हैं, युक्त आत्मा, स्थिर बुद्धि हुई जिसकी, ऐसा व्यक्ति ही मुझे जान पाता है।

परमात्मा के पास झूठे चेहरे लेकर नहीं जाया जा सकता। हां, कोई चाहे तो बिना चेहरे के भला पहुंच जाए; लेकिन झूठे चेहरों के साथ नहीं जा सकता। पर बिना चेहरे के वही जा सकता है, जिसके पास भीतर एक युक्त आत्मा हो। तब शरीर के चेहरों की जरूरत नहीं रह जाती।

लेकिन बड़े मजे की बात है कि हम सब झूठे चेहरे लगाकर जीते हैं। हमें अच्छी तरह पता है कि हम झूठे चेहरे लगाकर जिंदगी में जीते हैं। और हमारे पास कई चेहरे हैं, हमारे पास एक व्यक्तित्व नहीं, एक आत्मा नहीं।

महावीर ने कहा है, मल्टी-साइकिक, बहुचित्तवान है आदमी। बहुत चित्त हैं उसके भीतर। यह मल्टी-साइकिक शब्द तो अभी जुंग ने विकसित किया, लेकिन महावीर ने पच्चीस सौ साल पहले जो शब्द उपयोग किया है, वह ठीक यही है। वह शब्द है, बहुचित्तवान। बहुत चित्त वाला है आदमी।

कृष्ण भी वही कह रहे हैं कि जब वह एक चित्त वाला हो जाए, तभी मुझ तक आ सकता है; उसके पहले मुझे न जान पाएगा।

हम दूसरे को तो धोखा देते हैं, लेकिन बड़ा मजा तो यह है कि हमें कभी यह खयाल नहीं आता है कि दूसरे भी ऐसे ही चेहरे लगाकर हमें धोखे दे रहे हैं। और हम चेहरों के एक बाजार में हैं, जहां आदमी को खोजना बहुत मुश्किल है। जब हम हाथ बढ़ाते हैं, तो हमारा एक चेहरा हाथ बढ़ाता है; दूसरी तरफ से भी जो हाथ आता है, वह भी एक चेहरे का हाथ है। सिर्फ इमेजेज, प्रतिमाएं मिलती हैं; आदमी नहीं मिलते। मुलाकात अभिनय में होती है; मुलाकात प्राणों की नहीं होती। बातचीत दो यंत्रों में होती है–सधे-सधाए, रटे-रटाए जवाब-सवालों में। भीतर की आत्मा का सहज आविर्भाव नहीं होता। लेकिन हम खुद अपने को धोखा देते-देते इतने धोखे में डूब गए होते हैं कि यह खयाल ही नहीं होता कि दूसरे लोग भी ऐसा ही धोखा दे रहे हैं।

सुना है मैंने कि एक गांव में बड़ी बेकारी के दिन थे। अकाल पड़ा था और लोग बहुत मुश्किल में थे। एक सर्कस गुजर रहा था गांव से। स्कूल का एक मास्टर नौकरी से अलग कर दिया गया था। उसने सर्कस वालों से प्रार्थना की कि कोई

काम मुझे दे दो। सर्कस के लोगों ने कहा कि सर्कस का तुम्हें कोई अनुभव नहीं है। उसने कहा, बहुत अनुभव है। स्कूल सिवाय सर्कस के और कुछ भी नहीं है। मुझे जगह दे दो। कोई और जगह तो न थी, लेकिन एक जगह सर्कस वालों ने खोज ली, उसे जगह दे दी गई। और काम यह था कि उसके शरीर पर शेर की खाल चढ़ा दी, पूरे शरीर पर; और उसे एक शेर का काम करना था। एक रस्सी पर उसे चलना था शेर की तरह।

चल जाता, कोई कठिनाई न आती। लेकिन जब वह पहले ही दिन बीच रस्सी पर था, तभी उसे दिखाई पड़ा कि उसके स्कूल के दस-पंद्रह लड़के सर्कस देखने आए हैं और उसे गौर से देख रहे हैं। नर्वस हो गया। मास्टर लड़कों को देखकर एकदम नर्वस हो जाते हैं। घबड़ा गया और गिर पड़ा। गिर पड़ा नीचे, जहां कि चार-आठ दूसरे शेर गुर्रा रहे थे, और चिल्ला रहे थे, और गरज रहे थे, और घूम रहे थे नीचे के कठघरे में। जब शेरों के बीच में घुसा, गिरा, तो घबड़ा गया। भूल गया कि मैं शेर हूं। याद आया कि मास्टर हूं। दोनों हाथ ऊंचे उठाकर चिल्लाया कि मरा, अब बचना मुश्किल है!

जनता उसके उस चमत्कार से उतनी चमत्कृत नहीं हुई थी, रस्सी पर चलने से, जितनी इससे चमत्कृत हुई कि शेर आदमी की तरह बोल रहा है दोनों हाथ उठाकर!

बाकी एक शेर, जो पास ही गुर्रा रहा था, उसने धीरे से कहा कि मास्टर, घबड़ा मत। तू क्या सोचता है, तू ही अकेला बेकार है गांव में? घबड़ा मत। तू अकेला ही थोड़े बेकार है गांव में, और लोग भी बेकार हैं। वे जो चार शेर नीचे घूम रहे थे, वे भी आदमी ही थे!

हम सबकी हालत वैसी ही है। आप ही झूठा चेहरा लगाकर घूम रहे हैं, ऐसा नहीं है। आप जिससे बात कर रहे हैं, वह भी घूम रहा है। आप जिससे मिल रहे हैं, वह भी घूम रहा है। आप जिससे डर रहे हैं, वह भी घूम रहा है। आप जिसको डरा रहे हैं, वह भी घूम रहा है।

आप ही अकेले नहीं हैं, यह पूरा का पूरा समाज, चेहरों का समाज है। इतने चेहरों की जरूरत इसलिए पड़ती है कि हमें अपने पर कोई भरोसा नहीं। हम भीतर हैं ही नहीं। अगर हम इन चेहरों को छोड़ दें, तो हम पैर भी न उठा सकेंगे, एक शब्द न निकाल सकेंगे। क्योंकि भीतर कोई है तो नहीं मजबूती से खड़ा हुआ, कोई क्रिस्टलाइज्ड बीइंग, कोई युक्त आत्मा तो भीतर नहीं है। तो हमें सब पहले से तैयारी करनी पड़ती है।

हमें सब पहले से तैयारी करनी पड़ती है। नाटक में ही रिहर्सल नहीं होता, हमारी पूरी जिंदगी रिहर्सल है। पति घर लौटता है, तो तैयार करके लौटता है कि पत्नी क्या पूछेगी और वह क्या जवाब देगा। पत्नी भी तैयार रखती है कि पति क्या जवाब देगा और किस तरह से उसके जवाबों को गड़बड़ करेगी। सब तैयार है। और रोज यह हो रहा है, और रोज यह होगा।

जिंदगी में भी रिहर्सल! पहले से तैयार करना पड़ता है कि मैं क्या जवाब दूंगा। क्या पूछा जाएगा, फिर मैं क्या कहूंगा। फिर क्या बचाव निकालूंगा। देर तो हो गई है रात घर लौटने में। अब क्या-क्या मुसीबत आने वाली है, वह सब जाहिर है। वह सब तैयार है।

भीतर हमारे पास कोई ऐसी चेतना नहीं है क्या, जो स्पांटेनियस, सहज हो सके! जब सवाल उठे, तब जवाब दे सके! और जब मुसीबत आए, तब हमारे भीतर से उत्तर आ सके! और जब घटना घटे, तब हमारे भीतर से कर्म पैदा हो सके! और जब जैसी जरूरत हो, हमारे प्राण वैसा कर सकें!

लेकिन हमें भरोसा नहीं है कि भीतर कोई है। हमें तैयारी करनी पड़ती है; चित्त में ही तैयारी करनी पड़ती है।

कृष्ण कहते हैं, युक्त आत्मा, थिर हो गई जिसकी चेतना, जिसकी लौ चेतना की ठहर गई, वही केवल मुझे उपलब्ध हो पाता है। जो एक हो गया भीतर, जो यूनि-साइकिक हो गया, मल्टी-साइकिक नहीं रहा; बहुचित्त न रहे, एक चेतना का जन्म हो गया; एक विराट चेतना ने उसे सब ओर से घेर लिया--वैसा व्यक्ति मेरे पास आ पाता है। और वैसे व्यक्ति को कृष्ण ने कहा है ज्ञानी। और वैसे व्यक्ति को कहा है कि ऐसा व्यक्तित्व पाने में अनेक-अनेक जन्म लग जाते हैं अर्जुन!

न मालूम कितने जन्मों की यात्रा के बाद आदमी को यह अनुभव उपलब्ध हो पाता है कि मैं कब तक धोखा देता रहूंगा? मैं आथेंटिक, प्रामाणिक कब बनूंगा? मैं वही कब घोषणा कर दूंगा जगत के सामने, जो मैं हूं? कब तक मैं छिपाऊंगा? कब तक मैं प्रवंचना दूंगा? और मैं किसको धोखा दे रहा हूं? सब धोखा अपने को ही धोखा देना है; सब वंचनाएं आत्मवंचनाएं हैं।

लेकिन अनंत जन्मों के बाद भी याद आ जाए, तो जल्दी याद आ गई। अनंत जन्मों के बाद भी आ जाए, तो जल्दी आ गई याद। क्योंकि अनंत जन्म हम सबके हो चुके हैं। वह याद अब तक आई नहीं है। कहीं से कोई पीका नहीं फूटता भीतर से, कि वह हमें कहे कि उतार फेंको इस सब धोखेधड़ी को, जिसे तुमने जिंदगी बना रखा है। उतार दो इन नकली चेहरों को; अलग कर दो इनको, जो तुमने पहन रखे हैं। हटा दो यह सब जाल अपने आस-पास से, जो बेईमानी का है। बेईमानी का, जिसमें कि हम दूसरों को धोखा दिए जा रहे हैं वह होने का, जो हम नहीं हैं। दूसरे भी हमें दिए चले जा रहे हैं।

धार्मिक आदमी वह है, जो एक छलांग लगाकर इस सब उपद्रव के बाहर हो जाता है और जिंदगी जैसी है, उसकी सहज स्वीकृति की घोषणा कर देता है। उस स्वीकृति के साथ ही भीतर आत्मा युक्त हो जाती है। जिस व्यक्ति ने भी अपने होने को अंगीकार कर लिया, जैसा है स्वीकार कर लिया; जैसा है, बुरा-भला, स्वीकार कर लिया।

इसका यह मतलब नहीं है कि बुरा आदमी अपने को स्वीकार कर लेगा, तो बुरा ही रह जाएगा। यह बड़ी अदभुत घटना घटती है। जैसे ही कोई व्यक्ति, जैसा है, अपने को स्वीकार कर लेता है, तत्क्षण उसके जीवन में वह क्रांति घटित हो जाती है, जिसमें सब बुराइयां जल जाती हैं।

बुराइयां बचती हैं चेहरों की आड़ में, नग्नता में कोई बुराई नहीं बच सकती। जब कोई आदमी प्रकट अपने को, सहज जैसा है, जाहिर कर देता है सब भय छोड़कर...। क्योंकि सब भय ही तो है कि हम चेहरे लगाए फिरते हैं। डर ही तो है कि कोई क्या कहेगा, तो हम लगाए फिरते हैं।

संन्यासी मैं उसी को कहता हूं, जो इस बात की घोषणा कर दे जीवन के प्रति कि अब मैं धोखा नहीं दूंगा अपने चेहरे से; मास्क, कोई मुखौटा नहीं लगाऊंगा। जैसा हूं, हूं; उसकी खबर कर दूंगा। मैं जैसा हूं, वैसा होने की तैयारी करता हूं। ऐसा व्यक्ति एक दिन युक्त आत्मा को उपलब्ध हो जाता है।

युक्त आत्मा परमात्मा के साथ एक हो जाती है। यह दूसरी बात इसमें समझने जैसी है। जो अपने साथ एक हुआ, वह सर्व के साथ एक हो जाता है। जिसने इस भीतर के एक के साथ एकता बांधी, उसकी बाहर की, विराट यह जो ऊर्जा का विस्तार है, इससे भी एकता सध जाती है। जो अपने भीतर टूटा है, वही परमात्मा से टूटा रहता है।

इसलिए भक्त भगवान को जब जानता है, तो भक्त नहीं रहता, भगवान ही हो जाता है। कोई संधि नहीं बचती बीच में, जरा-सा कोई सेतु नहीं बचता। सब टूट जाता है। कोई फासला नहीं रह जाता। फासला है भी नहीं। हमने फासला बनाया है, इसलिए दिखाई पड़ता है। झूठा फासला है। हमारा बनाया हुआ फासला है।

कृष्ण कहते हैं, वह वासुदेव ही हो जाता है।

बड़े हिम्मत के लोग थे। आदमी को भगवान बनाने की इतनी सहज बात! आदमी प्रभु को भजे और प्रभु ही हो जाए! जो जानते थे, वही कह सकते हैं ऐसा। हमारा मन मानने को राजी नहीं होता। नहीं होता इसीलिए कि हमने सिवाय अपनी क्षुद्रता के और कुछ भी नहीं देखा है। हमारे भीतर वह जो विराट का बीज छिपा है, वह छिपा ही पड़ा है। तो जब भी हम सोचते हैं कि आदमी, और भगवान हो जाएगा, तो हमें भरोसा नहीं आता। क्योंकि हम अपने भीतर जिस आदमी को जानते हैं, वह शैतान तो हो सकता है, भगवान नहीं हो सकता।

हम अपने को अच्छी तरह जानते हैं। हमें पक्की तरह पता है कि अगर कोई कहे कि आदमी शैतान है, तो हमारी समझ में आता है। लेकिन कोई कहे, आदमी भगवान है, तो समझ में बिलकुल नहीं आता। क्योंकि हमारे पास जो

नापने का आयोजन है, वह अपने से ही तो नापने का आयोजन है। हम अपने से ही तो नाप सकते हैं। और हम जब अपनी तरफ देखते हैं, तो सिवाय शैतान के कुछ भी नहीं पाते।

लेकिन मैं आपसे कहता हूं–और सारे धर्मों का यही कहना है–कि वह जो आपको अपने भीतर शैतानियत दिखाई पड़ती है, वह आप नहीं हैं। वह शैतानियत केवल इसीलिए है कि जो आप हैं, उसका आपको पता नहीं है। जिस क्षण आपको अपने असली होने का पता चलेगा, उसी दिन आप पाएंगे कि शैतानियत कहां खो गई! कभी थी भी या नहीं, या कि मैंने कोई सपना देखा था!

बुद्ध को जब ज्ञान हुआ है, और कोई उनसे पूछता है कि अब आप क्या कहते हैं कि इतने दिनों तक आप अज्ञान में कैसे भटके? तो बुद्ध कहते हैं, आज तय करना मुझे मुश्किल है कि वह जो अनंत जन्मों का भटकाव था, वह असली में घटा या मैंने कोई लंबा सपना देखा! कोई लंबा सपना! क्योंकि आज मैं तय ही नहीं कर पाता कि वह घट सकता है। वह असलियत में घट कैसे सकता है? क्योंकि आज मैंने जिसे अपने भीतर जाना है, उसे देखकर अब मैं मान नहीं सकता कि वह कभी भी घट सकता है।

जैसे ही हम उस भीतर के विराट को जानते हैं, वैसे ही सब क्षुद्रताएं उसमें खोकर ऐसे ही शुद्ध हो जाती हैं, जैसे कितनी ही गंदी नदी सागर में आकर गिर जाए और शुद्ध हो जाए। सागर चीख-पुकार नहीं करता कि गंदी नदी मुझमें मत डालो, गंदा हो जाऊंगा। और सागर में गिरते ही गंदगी कहां खो जाती, नदी कहां खो जाती, कुछ पता नहीं चलता। विराट ऊर्जा में जब भी हमारे क्षुद्र मन की बीमारियां गिरती हैं, तो ऐसे ही खो जाती हैं, जैसे सागर में नदियां खो जाती हैं।

बड़ी शक्ति छोटी शक्ति को पवित्र करने की सामर्थ्य रखती है। लेकिन हमें बड़े का कोई पता ही नहीं है। हम तो छोटे में ही जीते हैं। हम बड़ी छोटी पूंजी से काम चलाते हैं। सच बात यह है कि जितनी जीवन ऊर्जा से शरीर चलता है, हम उतने को ही अपनी आत्मा समझते हैं। और शरीर को चलाने के लिए तो जीवन ऊर्जा का अत्यल्प, छोटा-सा अंश काफी है। शरीर को चलाने के लिए तो सुई काफी है, तलवार की कोई जरूरत नहीं पड़ती। और शरीर जितनी जीवन ऊर्जा से चलता है, उसके साथ ही हम तादात्म्य कर लेते हैं कि यह मेरी आत्मा है। फिर शैतान पैदा हो जाता है।

क्षुद्र के साथ संबंध शैतान को पैदा कर देता है; विराट के साथ संबंध भगवान को पैदा कर देता है। संबंध पर निर्भर करता है कि आप कौन हैं। अगर आपने क्षुद्र से संबंध बांधा, तो शैतान। अगर विराट से संबंध बांधा, तो भगवान। आप वही हो जाते हैं, जिससे आप संबंध बांधते हैं; वही हो जाते हैं, जिसके साथ जुड़ जाते हैं।

कृष्ण कहते हैं, जो मुझे जान लेता है, वह वासुदेव ही हो जाता है। वह मैं ही बन जाता है। जो ब्रह्म को जान लेता है, वह ब्रह्म ही हो जाता है।

यह जानना भी बहुत अदभुत है, जिसमें जानने से आदमी एक हो जाता है उससे, जो ज्ञेय है।

हमने बहुत चीजें जानी हैं। आपने गणित जाना है, लेकिन आप गणित नहीं हो गए। आपने भूगोल पढ़ी है, लेकिन आप भूगोल नहीं हो गए। आप हिमालय को देखकर जान आएंगे, लेकिन हिमालय नहीं हो जाएंगे। अगर कोई आकर कहे कि मैंने हिमालय को देखा और मैं हिमालय हो गया, तो आप उसे पागलखाने में बंद कर देंगे।

हम जिंदगी में जो भी जानते हैं, उसमें जानना दूर रहता है; हम कभी जानने वाली चीज के साथ एक नहीं हो पाते। इसलिए हमें कृष्ण के इस वचन को समझने में बड़ी कठिनाई पड़ेगी। क्योंकि हमारे अनुभव में यह कहीं भी नहीं आता कि जो भी हम जानें, उसके साथ एक हो जाएं। हमारा सब जानना, द्वैत का जानना है। हम दूर ही खड़े रहते हैं।

इसलिए अगर कृष्ण से पूछें, तो कृष्ण कहेंगे, जिसे तुम जानना कह रहे हो, वह जानना नहीं है, केवल परिचय है। वह नोइंग नहीं है, सिर्फ एक्वेनटेंस है। हमारा सब जानना, मात्र परिचय है– ऊपरी, बाहरी।

जैसे किसी के घर के बाहर से हम उसका घर घूमकर देख आएं और सोचें कि हमने उसके घर को जान लिया। और उसके भीतर हमारा कोई प्रवेश नहीं हुआ। जैसे हम सागर के किनारे खड़े होकर सोचें कि हमने सागर को जान लिया। और सागर के भीतर हमारा कोई प्रवेश नहीं हुआ। यह जानना जानना नहीं है, यह एक्केनटेंस है, सिर्फ परिचय मात्र है--थोथा, ऊपरी, बाह्य।

ज्ञान हमारी जिंदगी में कोई है नहीं । और अगर आपकी जिंदगी में कोई ज्ञान है, तो आप कृष्ण की बात समझ पाएंगे। तो मैं दोत्तीन आपसे बात कहूं, शायद किसी की जिंदगी में वैसा ज्ञान हो, तो उसकी उसको झलक मिल सकती है।

वानगाग, एक बहुत बड़ा चित्रकार, आरलीज में एक खेत में खड़े होकर चित्र बना रहा है। कैनवास पर अपना ब्रुश लेकर काम में लगा है। दोपहर है, सूरज ऊपर सिर पर जल रहा है। वह भरी दोपहर का चित्र बना रहा है। उसकी जिंदगी में एक लालसा थी कि मैं सूर्य के जितने चित्र बना सकूं, बनाऊं। उसने जितने सूर्य के चित्र बनाए, किसी और आदमी ने नहीं बनाए।

कोई किसान गुजरता है और वानगाग से पूछता है, तुम कौन हो? वानगाग कहता है, मैं? मैं सूर्य हूं। वह सूर्य बना रहा है। किसान अपना सिर पीटकर चला जाता है। सोचता है कि दिमाग खराब होगा। और ऐसा किसान ही सोचता है, ऐसा नहीं। सालभर तक वानगाग सूर्य के चित्र बनाता रहा। और फिर उसे पागलखाने में लोगों ने रख दिया। क्योंकि वह सूर्य के साथ आत्मसात हो गया। लोग उसकी चिकित्सा में लग गए। मित्र चिंतित हो गए। एक साल उसे पागलखाने में रखा कि उसका इलाज करें।

काश, उसके मित्रों को कृष्ण की इस बात का पता होता या वानगाग को पता होता, तो यह दुर्घटना बच सकती थी। निश्चित ही, पागल हो गया; कहता है, मैं सूर्य हूं! लेकिन अगर सालभर वानगाग की तरह किसी ने सूर्य को देखा हो, जाना हो, पहचाना हो, सूर्य की किरणों में उतरा हो, सूर्य की किरणों में नाचा हो, सूर्य की किरणों को पीया हो, तो कुछ आश्चर्य नहीं है कि इतना तादात्म्य बन जाए कि वानगाग को लगे कि मैं सूर्य हूं।

अगर आपने कभी किसी को प्रेम किया है, तो किन्हीं-किन्हीं क्षणों में आपको लगता है कि आप वही हो गए, जिसे आपने प्रेम किया है। और अगर आपको ऐसा नहीं लगा, तो आपने कभी प्रेम नहीं किया है। किन्हीं क्षणों में आपको लगता है कि आप वही हो गए, जिसे आपने प्रेम किया है। और अगर ऐसा न लगा हो, तो आप प्रेम के नाम पर परिचय को ही जान रहे हैं। अभी प्रेम की नोइंग, प्रेम का ज्ञान अभी घटित नहीं हो पाया।

यह जो हमारी जानने की दुनिया है, वहां परिचय ही जानना समझा जाता है। कृष्ण तो उस बात को उठा रहे हैं, जहां होना ही ज्ञान है; टु बी इज़ टु नो। उसके अतिरिक्त कोई ज्ञान नहीं है।

मैं एक कहानी निरंतर कहता रहा हूं। मैं कहता रहा हूं कि जापान का एक चित्रकार बांसों का एक झुरमुट बना रहा है, वंशीवट बना रहा है; एक झेन फकीर। लेकिन उसका गुरु कभी-कभी पास से निकलता है और कहता है कि क्या बेकार! और वह बेचारा अपने बनाए हुए चित्रों को फेंक देता है। फिर एक दिन वह गुरु के पास जाता है कि मैं कितना ही सुंदर बनाता हूं, लेकिन तुम हो कि कह ही देते हो कि बेकार! और मुझे फाड़ना पड़ता है। मैं क्या करूं?

उसके गुरु ने कहा, पहले तू बांस हो जा, तब तू बांस का चित्र बना पाएगा। उसने कहा कि यह कैसे हो सकता है कि मैं बांस हो जाऊं? उसके गुरु ने कहा, तू जा। आदमी की दुनिया को छोड़ दे; बांसों की दुनिया में चला जा। उन्हीं के पास बैठना, उन्हीं के पास सोना; उनसे बात करना चीत करना, उन्हें प्रेम करना; उनको आत्मसात करना, इंबाइब करना, उनको पी जाना, उनको खून और हृदय में घुल जाने देना। उसने कहा कि मैं तो बातचीत करूंगा, लेकिन बांस? उसने कहा, तू फिक्र तो मत कर। आदमी भर बोले, वृक्ष तो बोलने को सदा तैयार हैं। लेकिन इतने सज्जन हैं कि अपनी तरफ से मौन नहीं तोड?ते। तू जा।

गया। एक वर्ष बीता। दो वर्ष बीते। तीन वर्ष बीते। गुरु ने खबर भेजी कि जाकर देखो, उसका क्या हुआ? ऐसा लगता है कि वह बांस हो गया होगा। आश्रम के अंतेवासी खोज करने गए। बांसों की एक झुरमुट में वह खड़ा था। हवाएं बहती थीं। बांस डोलते थे। वह भी डोलता था। इतना सरल उसका चेहरा हो गया था, जैसे बांस ही हो। उसके डोलने

में वही लोच थी, जो बांसों में है। जैसे हवा का तेज झोंका आता और बांस झुक जाते, ऐसे ही वह भी झुक जाता। कोई रेसिस्टेंस, कोई विरोध, कोई अकड़, जो आदमी की जिंदगी का हिस्सा है, नहीं रह गई थी। बांस जमीन पर गिर जाते, जोर की आंधी आती, तो वह भी जमीन पर गिर जाता। आकाश से बादल बरसते और बांस आनंदित होकर पानी को लेते, तो वह भी आनंदित होकर पानी को लेता।

लोगों ने उसे पकड़ा और कहा, वापस चलो। गुरु ने स्मरण किया है। अब तुम वह बांस के चित्र कब बनाओगे?

उसने कहा, लेकिन अब चित्र बनाने की जरूरत भी न रही। अब तो मैं खुद ही बांस हो गया हूं। फिर उसे लाए और गुरु ने उससे कहा कि अब तू आंख बंद करके भी लकीर खींच, तो बांस बन जाएंगे। उसने आंख बंद करके लकीरें खींचीं और बांस बनते चले गए। और गुरु ने कहा कि अब आंख खोल और देख। तूने पहले जो बनाए थे, बड़ी मेहनत थी उनमें, लेकिन झूठे थे वे, क्योंकि तेरा कोई जानना नहीं था। अब तुझसे बांस ऐसे बन गए हैं, जैसे बांस की जड़ से बांस निकलते हैं, ऐसे ही अब तुझसे बांस निकल रहे हैं।

एक ज्ञान है, जहां हम एक होकर ही जान पाते हैं।

यह मैंने आपको उदाहरण के लिए कहा। यह उदाहरण भी बिलकुल सही नहीं है। क्योंकि जिसकी बात कृष्ण कर रहे हैं, उसके लिए कोई उदाहरण काम नहीं देगा। वह अपना उदाहरण खुद ही है। और कोई चीज का उदाहरण काम नहीं करेगा। लेकिन यह खयाल में अगर आपको आ जाए कि एक ऐसा जानना भी है, जहां होना और जानना एक हो जाते हैं, तो ही आप ब्रह्मतत्व को समझने में समर्थ हो पाएंगे।

कृष्ण कहते हैं, फिर वह ज्ञानी, वह मुझे भजने वाला, वह युक्त चित्त हुआ, वह स्थिर बुद्धि हुआ भक्त, वासुदेव हो जाता है। वह भक्त नहीं रहता, भगवान हो जाता है।

और एक क्षण को भी आपको अपने भगवान होने का स्मरण आ जाए, तो आपकी सारी जिंदगी, अनंत जिंदगियां स्वप्नवत हो जाएंगी।

इसे आप व्यवस्था भी दे सकते हैं। अभी आप जिस जिंदगी में जीते हैं, अगर उसे आप स्वप्नवत मानकर जीने लगें, तो दूसरे छोर से यात्रा हो सकती है। या तो परमात्मा के साथ एक होने के अनुभव की यात्रा पर निकलें, तो यह जिंदगी स्वप्नवत हो जाएगी। या इस जिंदगी को स्वप्नवत मानकर जीना शुरू कर दें, तो आप अचानक पाएंगे कि आप परमात्मा के साथ एक हो गए हैं।

लेकिन इसे आप सिर्फ बुद्धि से समझने चलेंगे, तो समझ तो जाएंगे, लेकिन वह समझ नासमझी से ज्यादा न होगी। समझ तो जाएंगे, लेकिन एक न हो पाएंगे। और जब तक एक न हो जाएं, तब तक मत मानना कि वह समझ है।

मैंने पहले दिन आपको श्वेतकेतु की कथा कही, कि पिता ने कहा कि तू उसको जानकर लौट, जिसे जानने से सब जान लिया जाता है। श्वेतकेतु वापस चला गया। वर्षों के बाद वह जानकर लौटा। अब वह बिलकुल दूसरा आदमी होकर आ रहा था। पिता ने अपने झोपड़े की खिड़की से झांककर देखा, श्वेतकेतु चला आ रहा है।

पिता ने अपनी पत्नी को कहा, उस बेटे की मां को कहा श्वेतकेतु की, कि अब मैं भाग जाता हूं पीछे के दरवाजे से, क्योंकि श्वेतकेतु ब्रह्म को जानकर लौट रहा है। पत्नी ने कहा कि तुम क्यों भागते हो? तुम्हीं ने तो उसे भेजा था जानने को कि उसे जानकर आ, जिसे जान लेने से सब जान लिया जाता है। अब वह आ रहा है।

पहली बार जब आया था, तो अकड़ से भरा था। शास्त्रों का दंभ था। अस्मिता थी, अहंकार था। अकड़ रही होगी। नशा है शास्त्रों का भी। जानकारी का भी नशा है। और जब नशा पकड़ जाता है, तो बड़ी दिक्कतें देता है। देख लिया था दूर से, अकड़कर आ रहा है।

अब तो वह ऐसे आ रहा था, जैसे हवा का एक झोंका हो। चुपचाप आ जाए घर के भीतर और किसी को पता न चले। पैरों के पदचाप भी न हों, ऐसा चला आता था। जैसे एक छोटा-सा सफेद बादल का टुकड़ा हो, तैर जाए चुपचाप, किसी को पता न चले। या जैसे कि कभी आकाश में कोई चील पर तौलकर पड़ी रह जाती है; हिलती भी नहीं, उड़ती है, उड़ती नहीं, पंख नहीं हिलाती; तिर जाती है। ऐसा चला आता था, शांत। उसके पैरों में चाप नहीं रह गई, क्योंकि जब अहंकार नहीं रह जाता, तो पैर चाप खो देते हैं।

पिता ने कहा कि मैं भाग जाता हूं पीछे के दरवाजे से, तू तेरे बेटे को सम्हाल। तो उसने कहा कि आप क्यों भाग जाते हैं? आपने ही तो भेजा था। उसके पिता ने कहा–अदभुत लोग थे, इसलिए कहता हूं–उसके पिता ने कहा कि नहीं, अब मुझे पीछे से चले जाना चाहिए। क्योंकि मैंने अभी ब्रह्म को नहीं जाना, और श्वेतकेतु को आकर मेरे पैर पड़ने पड़ें, तो यह उचित न होगा। मैं भाग जाऊं पीछे के दरवाजे से, तू सम्हाल। अब तो मैं जब तक न जान लूं, तब तक श्वेतकेतु के सामने आना उचित नहीं है, क्योंकि वह बेटा होने की वजह से पैर में झुकेगा। अब तो वह ब्रह्म हो गया, क्योंकि ब्रह्म को जानकर लौट रहा है।

पिता भाग गया। जब तक मैं न जान लूं, तब तक अब बेटे के सामने खड़े होने का कोई मुंह भी तो नहीं रहा।

ऐसे पिता थे, तो दूसरे ही ढंग के बेटे भी दुनिया में पैदा होते थे। आज सभी पिता शिकायत कर रहे हैं बेटों की, बिना इस बात की फिक्र किए कि पिता कैसे हैं। यह खयाल पिता को, कि उसे पैर में झुकना पड़ेगा, अब तो वह ब्रह्म होकर लौट रहा है, अनुचित हो जाएगा। या तो मैं उसके पैर पडूं, तो वह पड़ने न देगा; और या वह मेरे पैर पड़े, जो कि उचित नहीं है। अब मैं भाग जाऊं। अब तो मैं तभी उसके सामने आऊं, जब मैं भी जान लूं।

वह जो ज्ञान की किरण है, जब उतरती है, तो भीतर ज्ञानी नहीं बचता, ज्ञान ही बचता है। वह जब परमात्मा का साक्षात्कार होता है, तो साक्षात्कार करने वाला नहीं बचता, परमात्मा ही बचता है। मिट जाता है वह, जो खोजने निकला था। वही बचता है, जिसे खोजा है।

लेकिन शास्त्र, जानकारी, परिचय, इनसे कुछ भी नहीं मिटता; बल्कि आप और घने हो जाते हैं, और मजबूत हो जाते हैं।

सुना है मैंने कि एक रात एक घर में कुछ मित्र बैठकर शराब पीते रहे। और कुछ शराब फर्श पर पड़ी छूट गई। रात एक चूहा बाहर आया; शराब की सुगंध उसको पकड़ी। थोड़ा उसने शराब को चखकर देखा। फिर रस आया। फिर और चखा। थोड़ी देर में नशे से भर गया। दोनों पिछले पैरों पर खड़ा हो गया और चिल्लाकर उसने कहा कि लाओ उस बिल्ली की बच्ची को, कहां है?

चूहा! लेकिन शराब! कई दिन से दिल में रहा होगा कि एक दफा बिल्ली की बच्ची को मजा दिखाया जाए। आज मौका आ गया। आज चूहे ने अपने को समझा होगा कि न मालूम वह क्या है! वह नशा है।

मैंने सुना है कि ख्रुश्चेव को किसी ने कुछ कोई कीमती कपड़ा भेंट किया था; जब प्रधान मंत्री था ख्रुश्चेव। उसने मास्को में बड़े-बड़े दर्जियों को बुला भेजा। उन्होंने कहा कि नहीं, पूरा सूट न बन सकेगा। या तो पैंट बनवा लो, या कोट बनवा लो, लेकिन पूरा सूट नहीं बनता। पर जिसने भेजा था, सोच-समझकर भेजा था। ख्रुश्चेव ने उसे सम्हालकर रख लिया। कीमती कपड़ा था, सूट बने तो ही मतलब का था, नहीं तो बेजोड़ हो जाए।

फिर ख्रुश्चेव इंगलैंड घूमने आया था, तो कपड़ा साथ ले आया। और लंदन के एक दर्जी को उसने बुलाकर कहा कि तुम कपड़ा बनवा दो। उसने कहा कि तैयार हो जाएगा आठ दिन बाद पूरा सूट। ख्रुश्चेव ने कहा, लेकिन आश्चर्य! मास्को में कोई भी दर्जी पूरा सूट बनाने को तैयार न हुआ। कहते थे, या तो पैंट बनेगा या कोट। तुम कैसे बना सकोगे? उस दर्जी ने कहा, मास्को में आप जितने बड़े आदमी हैं, उतने बड़े आदमी आप लंदन में नहीं हैं। साइज! मास्को में आपकी साइज बहुत ज्यादा है। उधर पैंट भी बन जाता, तो बहुत मुश्किल है। यहां तो बन जाएगा। और आप चाहो, तो एकाध-दो और आपके मित्रों का भी बनवा दूं।

वह जो हमारे भीतर नशा है, बहुत तरह का है। पद का भी होता है, ज्ञान का भी होता है, त्याग का भी होता है। सब शराब बन जाती है, भीतर आदमी अकड़कर खड़ा हो जाता है। वह अकड़ अगर है, तो परमात्मा से मिलन न होगा। और परमात्मा से मिलन हुआ, तो वह अकड़ तो बह जाती है। उस अकड़ की जगह, परमात्मा ही शेष रह जाता है। लहरें खो जाती हैं और सागर ही बचता है।

प्रश्न:
भगवान श्री, पिछले श्लोक में कृष्ण चार प्रकार के भक्तों की बात कहते हैं। अर्थार्थी–सांसारिक पदार्थों के लिए भजने वाला। आर्त–संकट निवारण के लिए भजने वाला। जिज्ञासु और ज्ञानी भक्त। इनके अर्थ संक्षिप्त में कहें। और पहले दो लोगों को भक्त कैसे कहा, इस पर भी कुछ कहें।
कृष्ण चार विभाजन करते हैं भक्तों के।
अर्थार्थी–जो अर्थ के लिए, सांसारिक वस्तुओं के लिए प्रार्थना में रत होते हैं। अधिक लोग। अधिक लोग लोभ से, कुछ पाने के लिए प्रार्थना में रत होते हैं।

फिर आर्त–दुख से, पीड़ा से, भय से, कठिनाइयों से परेशान होकर अधिक लोग परमात्मा की प्रार्थना में रत होते हैं।

तीसरे जिज्ञासु–जो जानना चाहते हैं; कुतूहल है जिन्हें; उत्सुकता है, क्यूरिआसिटी है। जैसे कि दार्शनिक, सारी दुनिया के दार्शनिक, पता लगाना चाहते हैं कि क्या है? अल्टिमेट काज क्या है दुनिया का? यह दुनिया कहां से आई, कहां जा रही है? क्यों चल रही है, क्यों नहीं चल रही है? प्रश्न जिनके मन में भारी हैं, लेकिन जिज्ञासा मात्र है। स्वयं को बदलने का सवाल नहीं है। जानने भर का सवाल है।

और चौथे ज्ञानी–जो सिर्फ जानने के लिए नहीं, बल्कि होने के लिए आतुर हैं। परमात्मा को जानने की जिनकी उत्सुकता सिर्फ कुतूहल नहीं है। ऐसा कुतूहल नहीं, जैसा बच्चों में होता है, कि दरवाजा लगा है, तो उसे खोलकर देख लें कि उस तरफ क्या है! कोई और प्रयोजन नहीं है। बस, दरवाजा लगा है, तो मन होता है कि खोलकर देख लें कि उस तरफ क्या है! कीड़ा चला जा रहा है, तो टांग तोड़कर भीतर देख लें कि कौन-सी चीज चला रही है! बच्चों जैसा कुतूहल, तो जिज्ञासु है।

लेकिन ज्ञानी का अर्थ है, जो सिर्फ मात्र कुतूहल से नहीं, बल्कि जीवन को आमूल रूपांतरित करने की प्रेरणा से भरा है। जिसके लिए जानना कुतूहल नहीं है, जीवन-मरण का सवाल है। न तो धन के लिए, न किसी दुख के कारण, न किसी कुतूहल से, बल्कि जीवन के सत्य को जानने की जिसके प्राणों की आंतरिक पुकार है, प्यास है। जिसके बिना नहीं जी सकेगा। जान लेगा, तो ही जी सकेगा। ऐसे चार भक्त कृष्ण ने कहे।

मन में सवाल उठ सकता है कि पहले दो तरह के या पहले तीन तरह के लोगों को क्यों भक्त कहा! भक्त तो आखिरी ही होना चाहिए, चौथा ही।

नहीं; तीनों को भी भक्त सिर्फ शब्द के कारण कहा। वे भी भक्ति करते हैं। भक्त नहीं हैं, यह तो कृष्ण जाहिर करते हैं, लेकिन वे भी भक्ति करते हैं।

महावीर ने भी इसी तरह ध्यान करने वालों के चार वर्ग किए। उनमें जो आदमी आर्त ध्यान कर रहा है...। जब आप क्रोध में होते हैं, तब आपका ध्यान एकाग्र हो जाता है। उसको भी कहा, वह भी ध्यानी है, आर्तध्यानी। क्योंकि क्रोध में मन एकाग्र हो जाता है। लोभ में मन एकाग्र हो जाता है। कामवासना में मन एकाग्र हो जाता है। तो उसको कहा, वह भी ध्यानी है; कामवासना का ध्यान कर रहा है। लेकिन अंतिम ध्यान, शुक्ल ध्यान ही असली ध्यान है; जब कि बिना प्रयोजन के, बिना कारण के, बिना कुछ पाने की आकांक्षा के, कोई ध्यान करता है।

इसलिए कृष्ण ने चार भक्तों की बात कही।

याद मुझे आता है, एक गांव में बड़ी तकलीफ है। भूख है, बीमारी है, परेशानी है। लोगों के पास दवा नहीं, खाना नहीं, कपड़े नहीं। गांव के चर्च का जो पादरी है, उसने कभी परमात्मा से कोई ऐसी प्रार्थना नहीं की, जिसमें कुछ मांगा हो।

वह सत्तर साल का बूढ़ा है। गांवभर की तकलीफ; और चर्च में बड़ी भीड़ होती है। फटे-चीथड़े पहनकर, भूखे बच्चे और भूखे बूढ़े इकट्ठे होते हैं। और वे रोते हैं। उनके आंसू देखकर एक रात वह रातभर नहीं सोया। और उसने परमात्मा से प्रार्थना की, मैंने कभी तुझसे कुछ मांगा नहीं। एक बात मांगता हूं, वह भी अपने लिए नहीं; मेरे गांव के लोगों की हालत सुधार दे।

स्वभावतः, चूंकि उसने कभी कुछ नहीं मांगा था, इसलिए उसकी प्रार्थना में बड़ा बल था। और स्वभावतः, क्योंकि उसने अपने लिए प्रार्थना नहीं की थी, इसलिए भी बड़ा बल था।

कहानी कहती है कि परमात्मा ने उसकी प्रार्थना सुन ली। और सुबह जब नगर के लोग उठे, तो चमत्कृत रह गए। जहां झोपड़े थे, वहां महल हो गए। जहां बीमारियां थीं, वहां स्वास्थ्य आ गया। वृक्ष फलों से लद गए। फसलें खड़ी हो गईं। सारा गांव धनधान्य से परिपूर्ण हो गया।

यह तो चमत्कार हुआ; पूरे गांव ने देखा। इससे भी बड़ा चमत्कार पादरी ने देखा, कि चर्च में सदा भीड़ होती थी, वह बिलकुल बंद हो गई; कोई चर्च में नहीं आता। पादरी दिनभर बैठा रहता है बाहर, कोई चर्च में नहीं आता। कभी कोई नमस्कार नहीं करता। कभी कोई निमंत्रण नहीं भेजता। प्रार्थना के लिए कोई आता नहीं। चर्च गिरने लगा। ईंटें खिसकने लगीं। पलस्तर टूटने लगा। एक साल, दो साल; लोग गांव के भूल गए कि चर्च भी है।

दो साल बाद उस बूढ़े फकीर ने एक रात फिर परमात्मा से प्रार्थना की कि हे प्रभु, एक प्रार्थना और पूरी कर दे। परमात्मा ने कहा कि अब तेरी क्या कमी रह गई! और तूने जो चाहा था, सब कर दिया। उसने कहा, अब एक ही प्रार्थना और है कि मेरे गांव के लोगों को वैसा ही बना दे, जैसे वे पहले थे। उन्होंने कहा, तू यह क्या कह रहा है!

उसने कहा कि मैं तो सोचता था कि वे चर्च में परमात्मा की प्रार्थना के लिए आते हैं, वह मेरा गलत खयाल सिद्ध हुआ। कोई अर्थ के कारण आता था। कोई दुख के कारण आता था। कोई लोभ के कारण, कोई भय के कारण। अब उनका लोभ भी पूरा हो गया; उनके भय भी दूर हो गए; उनके दुख भी दूर हो गए। तब मैंने यह न सोचा था कि परमात्मा को वे इतनी सरलता से भूल जाएंगे।

तो तीन तरह के लोग हैं। अर्थार्थी को अर्थ मिल जाए, धन मिल जाए, भूल जाएगा। दुखी को, कातर को, आर्त को, दुख दूर हो जाए, भूल जाएगा। जिज्ञासु को उसके प्रश्न का उत्तर मिल जाए, समाप्त हो जाएगा। असली भक्त तो चौथा ही है। कुछ भी मिल जाए, वह तृप्त नहीं होगा। जब तक कि वह स्वयं परमात्मा ही न हो जाए, इसके पहले कोई तृप्ति नहीं है।

लेकिन उन तीन को भक्त केवल शब्द की वजह से कहा। और उनकी गिनती करा देनी उचित है, क्योंकि वही तीन तरह के भक्त हैं जमीन पर; चौथी तरह का तो कभी-कभी, शायद ही कभी, चौथी तरह का आदमी पैदा होता है। अगर चौथे की ही बात करनी हो, तो बिलकुल बेकार हो जाए, क्योंकि असली भीड़ तो इन तीन की है। ये नियम हैं; वह चौथा तो अपवाद है। इसलिए गिनती कर लेनी उचित समझी कि इनकी गिनती कर ली जाए। यद्यपि पीछे कह दिया जाएगा कि ये तीनों सिर्फ धोखे के भक्त हैं; दिखाई ही पड़ते हैं, हैं नहीं।

और कई बार बिलकुल उलटी घटना घटती है। वह चौथा जो है, शायद दिखाई न पड़े, और हो। और ये तीन दिखाई पड़ें, और हों न। क्योंकि वह चौथा क्यों दिखाई पड?ेगा! वह कोई सड़क पर खड़े होकर चिल्ला नहीं देगा। वह किसी मंदिर में हाथ जोड़कर खड़ा होगा, जरूरी नहीं है। हो भी सकता है, न भी खड़ा हो। क्योंकि उसके तो प्राणों में रम जाएगी बात; उसके श्वास-श्वास में समा जाएगी बात।

एक मुसलमान फकीर हुआ है। सत्तर साल तक मस्जिद जाता रहा। एक दिन न चूका। बीमार हो, परेशान हो, बरसा होती हो, धूप जलती हो, पांच नमाज पूरी मस्जिद में करता रहा। एक दिन अचानक सुबह की नमाज में नहीं आया; मस्जिद के लोगों ने समझा कि शायद मर गया। इसके सिवाय कोई सोचने का कारण ही न था। क्योंकि किसी भी हालत में वह आया था। इन पचास वर्षों में जितने लोग उसे जानते थे, वह नियमित आया था। गांव में कुछ भी हुआ हो, वह पांच बार मस्जिद में आया था; आज नहीं आया।

सारी मस्जिद नमाज के बाद भागी हुई फकीर के घर पहुंची। वह अपने दरवाजे पर बैठकर खंजड़ी बजा रहा था! उन्होंने कहा कि क्या दिमाग खराब हो गया या मरते वक्त नास्तिक हो गए! क्या कर रहे हो यह? नमाज चूक गए! सत्तर साल का बंधा हुआ क्रम तोड़ दिया? आज मस्जिद क्यों न आए?

उस फकीर ने कहा कि जब तक नमाज करनी न आती थी, तब तक मस्जिद में आता था। अब नमाज करनी आ गई। अब यहीं बैठे हो गई। अब कहीं जाने की कोई जरूरत नहीं। सच तो यह है, उस फकीर ने कहा कि अब करने की भी कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि अब करने वाला भी कहां बचा; नमाज ही बची। भीतर प्रार्थना ही रह गई है; अब प्रार्थना करने वाला भी नहीं है।

तो बहुत संभावना तो यह है कि वे तीन ही तरह के भक्त आपको दिखाई पड़ेंगे; चौथा तो शायद दिखाई नहीं पड़ेगा। लेकिन वह चौथा ही है। वे तीन तो सिर्फ नाम मात्र को, फार नेम्स सेक, भक्त हैं। कृष्ण ने उनको गिना दिया कि कहीं वे नाराज न हो जाएं! क्योंकि बड़ी भीड़ उन्हीं की है। वह एक तो अपवाद है; उसे पीछे से गिना दिया है।

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः।
तं तं नियमास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया।। 20 ।।
और हे अर्जुन, जो विषयासक्त पुरुष हैं, वे तो अपने स्वभाव से प्रेरे हुए तथा उन-उन भोगों की कामना द्वारा ज्ञान से भ्रष्ट हुए, उस-उस नियम को धारण करके अन्य देवताओं को भजते हैं अर्थात पूजते हैं।

यह भी कहा कृष्ण ने कि वे जो कामासक्त हैं, विषयासक्त हैं, भोगों की आकांक्षाओं से भरे हैं, भोग से सम्मोहित हैं, वे ज्ञान से च्युत होकर मेरा स्मरण नहीं करते, अन्य-अन्य देवताओं का स्मरण करते हैं।

इसमें दो बातें हैं।

एक तो यह कि जो व्यक्ति भी कामासक्त हुआ, विषयासक्त हुआ, वह ज्ञान से च्युत होता है। वह जो भीतर ज्ञान की धारा है, जैसे ही जरा-सा भी विषय की तरफ मन दौड़ा कि वह धारा पतित होती है, स्खलित होती है। एक क्षण को भी मन किसी विषय के प्रति प्रेरित हुआ, कि इसे पा लूं, यह मेरा हो जाए, इसे भोग लूं; जैसे ही भोग का कोई खयाल आया कि वह भीतर की जो चेतन-धारा है, वह जो करंट है चेतना की, वह तत्काल डांवाडोल होकर अधोगति की यात्रा करने लगती है। हर विषयासक्ति चेतना की धारा को पतित करती है।

एक बात तो यह इसमें खयाल ले लेने जैसी है।

जरा-सा, जरा-सा भी खयाल! रास्ते पर गुजरते हैं, और दुकान पर दिख गई कोई चीज, और खयाल आया–मिल जाए, मेरी हो जाए, मैं मालिक हो जाऊं। जरा-सी झलक, एक जरा-सी किरण वासना की, और आप जरा रुककर खड़े होकर वहीं देखना कि आपके भीतर अज्ञान घना हो गया और ज्ञान फीका हो गया। इसे आप अनुभव करेंगे, तो खयाल में आएगा। जरा-सी वासना, और आप अचानक पाएंगे कि मूर्च्छा घिर गई, बेहोशी आ गई, अज्ञान भर गया, और ज्ञान क्षणभर को जैसे बिलकुल खो गया।

लेकिन हम तो चौबीस घंटे विषय की कामना से भरे हुए हैं। शायद इसीलिए हमें पता भी नहीं चलता कि हमारी ज्ञानधारा पतित होती है। क्योंकि पतित होने का पता तो उन्हें चले, जो ज्ञानधारा में थोड़े-बहुत कभी भी होते हों, तो पतित होने का पता चले। जिनके पास धन है, उन्हें दिवालिया होने का पता चलता है। भिखारियों को तो दिवालिया होने का पता नहीं चलता। जो कभी थोड़ा ऊपर जीते हैं, उन्हें नीचे आने का पता चलता है। लेकिन जो नीचे ही जीते हैं, घाटियों को जिन्होंने अपनी जिंदगी बना लिया, शिखरों की तरफ जो कभी उठकर भी नहीं देखते, उनको तो फिर पतन का भी पता नहीं चलता। अंधेरा ही जिनका घर है, उन्हें कैसे पता चलेगा कि उजेला थोड़ा फीका हो गया, कि दीए की लौ थोड़ी कम हो गई।

लेकिन अगर फिर भी थोड़ा स्मरणपूर्वक खोज करें, तो जब भी मन को कोई वासना तीव्रता से पकड़े, तब आप जरा अपने भीतर देखना कि आपके ज्ञान की जो क्वालिटी है, आपके ज्ञान का जो गुण है, क्या वह बदला? क्या वह निम्न हुआ? क्या वह नीचे गिरा?

इसलिए हर वासना, चाहे तृप्त ही क्यों न हो जाए, एक सूक्ष्म विषाद में छोड़ जाती है। क्योंकि वह आपको पतित कर जाती है। हर वासना, चाहे मिल ही क्यों न जाए, मिल जाते ही आपके मुंह में एक कड़वा स्वाद छूट जाता है। वह कड़वा स्वाद इस बात का होता है कि भीतर आपकी चेतना-धारा पतित हुई। आपने जो पाया, वह तो ना-कुछ; लेकिन जो गंवाया, वह बहुत कुछ; एट ए वेरी ग्रेट कास्ट। वह जो कृष्ण कह रहे हैं, वह यह कह रहे हैं कि तुम पाओगे क्या?

एक आदमी सड़क पर चला जा रहा है, और देखता है कि एक अच्छा कपड़ा पहने हुए कोई गुजरा; वे कपड़े मुझे चाहिए! कपड़े की मांग, बड़ी छोटी-सी मांग है। लेकिन उसे पता नहीं कि इस मांग ने उसकी चेतना को कितना नीचे गिरा दिया, तत्काल! जैसे टेंपरेचर नीचे गिर गया हो थर्मामीटर में; उसके भीतर ज्ञान की धारा नीचे गिर गई।

इसलिए वासना से भरे हुए व्यक्ति अक्सर छोटे बच्चों, नासमझों जैसा व्यवहार करने लगते हैं। कभी आपने खयाल किया कि जब आप वासना में होते हैं, तो आप जो व्यवहार करते हैं, वह करीब-करीब स्टुपिडिटी का होता है; करीब-करीब मूढ़ता का होता है!

अगर हम दो प्रेमियों को आपस में बातचीत करते देखें, जो वासनातुर हैं, तो उनकी बातचीत हमें कैसी मालूम पड़ेगी! उनका एक-दूसरे से व्यवहार देखें, तो वह कैसा मालूम पड़ेगा! स्टुपिड, एकदम मूर्खतापूर्ण। लेकिन उन्हें नहीं मालूम पड़ रहा है। वे तो बड़े स्वर्ग में जी रहे हैं! वे भी अगर लौटकर देखें, तो उन्हें भी मूढ़ता दिखाई पड़ेगी। असल में जैसे ही हम कामातुर और वासना से भरते हैं, किसी भी विषय की आसक्ति से, वैसे ही हमारे भीतर की चेतना-धारा नीचे गिर जाती है।

सुना है मैंने, एक फकीर, नाम था उसका फरीद, शेख फरीद। कोई लोग उसके पास आते। समझो, कोई आदमी उससे मिलने आया। वह आकर बैठा नहीं कि फरीद जाएगा उसके पास, उसका सिर हिला देगा जोर से। कई दफे तो लोग घबड़ा जाते। और वह आदमी कहता कि आप यह क्या कर रहे हैं? तो फरीद हंसने लगता। कभी बैठा रहता पास में, डंडा उठाकर उसके पेट में इशारा कर देता। वह आदमी चौंक जाता। वह कहता, आप यह क्या कर रहे हैं! वह हंसने लगता।

बहुत बार लोगों ने पूछा कि आप यह करते क्या हो? तो फरीद बोला कि एक दफा मैं यात्रा पर गया था। बहुत-से खच्चर साथ थे। बड़ा सामान था। बहुत बड़ा कारवां था। वह जो खच्चरों का मालिक था, बड़ा होशियार था। जब कभी कोई खच्चर अड़ जाता और बढ़ने से इनकार कर देता...।

और खच्चर अड़ जाए, तो बढ़ाना बहुत मुश्किल है। बढ़ता रहे, उसकी कृपा। अड़ जाए, तो फिर बढ़ाना बहुत मुश्किल। क्योंकि न उन्हें बेइज्जती का कोई डर, क्योंकि वे खच्चर हैं। उन्हें कोई अड़चन नहीं है। उन्हें आप गालियां दो, उन्हें कोई मतलब नहीं।

फरीद ने कहा, लेकिन वह बड़ा कुशल मालिक था। कभी कोई खच्चर अड़ जाए, तो एक सेकेंड न लगता था चलाने में। तो मैंने उससे पूछा कि तेरी तरकीब क्या है? तो उसने मुझे बताया कि वह थोड़ी-सी मिट्टी उठाकर खच्चर के मुंह में डाल देता है। खच्चर उस मिट्टी को थूक देता है और चल पड़ता है! तो फरीद ने पूछा, मैं समझा नहीं कि मिट्टी उसके मुंह में डालने और खच्चर के चलने का संबंध क्या है?

तो उस आदमी ने कहा कि मैं ज्यादा तो नहीं जानता, मैं इतना ही समझता हूं कि मुंह में मिट्टी डालने से उसके भीतर की जो विचारों की धारा है, वह टूट जाती है; वह जो अंडर करंट है! खच्चर सोच रहा है, खड़े रहेंगे! अब मुंह में मिट्टी डाल दी। इतनी बुद्धि तो नहीं है कि इन दोनों को फिर से जोड़ सके। मुंह में मिट्टी डाल दी, तो वे भूल गए जाने-आने की बात। मुंह की मिट्टी साफ करने में लग गए, तब तक उसने हांक दिया; वह चल पड़ा। उसने कहा, जहां तक मैं समझता हूं...। ज्यादा मैं नहीं जानता, क्योंकि खच्चर के भीतर क्या होता है, पता नहीं। अनुमान मेरा यह है कि उसकी

विचारधारा खंडित हो जाती है, गड़बड़ हो जाती है। बस, उसी में वह चक्कर में आ जाता है; चल पड़ता है। बाकी यह दवा मेरी कारगर है।

लोग कहते, आपने हमें खच्चर समझा है क्या? फरीद कहता कि बिलकुल खच्चर समझा है। अभी तुझे मैंने देखा। तू भीतर आया, तब मैंने देखा कि तेरे भीतर क्या चल रहा था।

कठिन नहीं है देखना कि दूसरे के भीतर क्या चल रहा है। शिष्टतावश अनेक लोग, जो जानते भी हैं कि दूसरे के भीतर क्या चल रहा है, कहते नहीं हैं। लेकिन दूसरे के भीतर क्या चल रहा है, यह जानना बड़ी ही सरल बात है। जब आप भीतर आते हैं, तो आपके भीतर क्या चल रहा है, उसके साथ आपके चारों तरफ रंग, और आपके चारों तरफ गंध, और आपके चारों तरफ विचार का एक वातावरण भीतर प्रवेश करता है।

तो फरीद कहता, जैसे ही मैं देखता हूं, इसके भीतर कोई वासना चल रही है, उचककर मैं उसकी गर्दन को जोर से हिला देता हूं। वही खच्चर वाला काम कि शायद करंट...! और अक्सर मेरा अनुभव है कि करंट टूट जाती है। वह चौंककर पूछता है, क्या कर रहे हैं? कम से कम वहां से चौंक जाता है; दूसरी यात्रा पर ले जाया जा सकता है।

बहुत-से धर्म की जो विधियां हैं, वे सारी विधियां ऐसी हैं कि किसी तरह आपकी जो वासना की तरफ दौड़ती हुई स्थाई हो गई धारा है, वह तोड़ी जा सके।

आप मंदिर जाते हैं। आपने घंटा लटका हुआ देखा है मंदिर के सामने। कभी खयाल नहीं किया होगा कि घंटा किसके लिए बजाया जाता है। आप सोचते होंगे, भगवान के लिए; तो आप गलती में हैं। वह आपके खच्चर के लिए है। वह जो घंटनाद है, भगवान से उसका कोई लेना-देना नहीं है। वह आपकी खोपड़ी में जो चल रहा है, जोर का घंटा बजेगा, मिट्टी थूककर आप मंदिर के भीतर चले जाएंगे।

वह अंतर-धारा जो चल रही है, वह एक झटके में टूट जाए। टूटती है, अगर समझ हो, तो बराबर टूट जाती है।

कहते हैं, मंदिर स्नान करके चले जाओ; ऐसे ही मत चले जाना। वह अंतर-धारा तोड़ने के लिए जो भी हो सकता है, कोशिश की जाती है। बाहर ही जूते निकाल दो; वह अंतर-धारा तोड़ने के लिए। आपके जितने एसोसिएशन हैं, वह तोड़ने की कोशिश की जाती है। जाकर मंदिर में लेट जाओ चरणों में परमात्मा के साष्टांग, सब अंग जमीन को छूने लगें; सिर जमीन पर पटक दो। वह जो अकड़ा हुआ सिर है, चौबीस घंटे अकड़ा रहता है। शायद...। वही खच्चर वाला काम किया जा रहा है। आपके भीतर वह जो अंडर करंट है, शायद...।

लेकिन कई बड़े कुशल खच्चर हैं; उन खच्चरों का मुझे पता नहीं। कितना ही घंटा बजाओ, उनके भीतर कुछ भी नहीं बजता। कुछ बजता ही नहीं!

लेकिन मनुष्य को सहायता पहुंचाने के लिए जिनकी आतुरता रही है, उन्होंने बहुत-सी व्यवस्थाएं हैं।

कृष्ण कह रहे हैं, एक बात तो यह कि च्युत हो जाता है वासना की धारा में दौड़ता हुआ चित्त ज्ञान से।

ज्ञान स्वभाव है।

इसे ऐसा समझें, तो ठीक होगा, हम आमतौर से कहते हैं कि वासना को छोड़ दो, तो ज्ञान मिल जाएगा। कहना चाहिए, वासना को पकड़ा है, इसलिए ज्ञान खो गया है। ज्यादा एक्जेक्ट और सही जो कहना होगा। यह कहना उतना ठीक नहीं है कि वासना को छोड़ दो, तो ज्ञान मिल जाएगा। इसमें ऐसा लगता है कि वासना हमारा स्वभाव है, छोड़ेंगे, तो ज्ञान, कोई उपलब्धि हो जाएगी। असलियत उलटी है। ज्ञान हमारा स्वभाव है, वासना को पकड़कर हमने उसे खोया है। वासना हट जाए, वह हमें फिर मिल जाएगा।

और इसीलिए वासना कभी तृप्त नहीं होगी, क्योंकि वासना हमारा स्वभाव नहीं है, हमारा पतन है। हम कितने ही दौड़ते रहें, पतन से हम कभी राजी न हो पाएंगे, तृप्त न हो पाएंगे। पतन विषाद ही बनेगा, पतन हमें पीड़ा ही देगा, संताप ही देगा, नर्क ही देगा। और एक न एक दिन नर्क की पीड़ा से हमें लौट आना पड़ेगा। और उस शिखर की तरफ देखना पड़ेगा, जो हमारे प्राणों का आंतरिक शिखर है, कैलाश।

कैलाश हिमालय में नहीं है। जाते हैं लोग; सोचते हैं, वहां होगा। कैलाश हृदय के उस शिखर का नाम है, ज्ञान के उस शिखर का नाम है, जहां से कभी भगवान च्युत नहीं होता। आपके भीतर का भगवान भी कभी च्युत नहीं होता जहां से।

जिस दिन उस शिखर पर हम पहुंच जाते हैं भीतर के–सब घाटियों को छोड़कर, घाटियों की वासनाओं को छोड़कर–उस दिन ऐसा नहीं होता कि हमें कुछ नया मिल जाता है। ऐसा ही होता है कि जो हमारा सदा था, उसका आविष्कार, उसका उदघाटन हो जाता है। हम जानते हैं, हम कौन थे। और हम जानते हैं कि हम किस तरह च्युत होते रहे, किस तरह भटकते रहे। किस कीमत पर हमने अपने को गंवाया और क्षुद्र चीजों को इकट्ठा किया। कंकड़-पत्थर बीने और आत्मा बेची।

तो एक बात तो कृष्ण यह कहते हैं। दूसरी बात यह कहते हैं कि वे जो और अर्थार्थी, और आर्त, और जिज्ञासु, उस तरह के जो लोग हैं, वे मेरी नहीं, और देवताओं की पूजा में संलग्न होते हैं। क्यों?

ठीक परमात्मा की प्रार्थना में वे लोग संलग्न नहीं होते, क्योंकि परमात्मा की प्रार्थना की शर्त ही वे लोग पूरी नहीं करते। शर्त ही यह है कि सब वासनाएं छोड़कर आओ। ब्रह्म को पाने की शर्त तो यही है कि सब वासनाएं छोड़कर आओ, तब प्रार्थना पूरी होगी। वे वहां कैसे जाएंगे?

तो वे छोटे-मोटे अपने देवी-देवता निर्मित कर लेते हैं, जो उनसे शर्त नहीं बांधते। बल्कि शर्त ऐसी बांधते हैं, जो सस्ती होती हैं; पूरी कर देते हैं। कोई देवता मांगता है कि नारियल चढ़ा दो। कोई देवता मांगता है कि फूल-पत्ती रख दो। कोई देवता मांगता है कि ऐसा कर दो, बलि चढ़ा दो, या यज्ञ कर दो, या हवन कर दो। सस्ती मांग वाले भी देवता हैं। सस्ती दुकानें भी हैं।

तो कृष्ण कहते हैं, फिर उस तरह के लोग मेरी तरफ नहीं आते, क्योंकि मेरी शर्त उनसे पूरी नहीं होती। वे खुद ही अपने देवता गढ़ लेते हैं।

यह बहुत मजे की बात है। हमने बहुत देवता हमारे गढ़े हुए हैं। अपनी जरूरतों के अनुसार हमने उन्हें गढ़ा है। जिस चीज की जरूरत होती है, हम गढ़ लेते हैं।

सारा आविष्कार तो जरूरत से होता है न! देवताओं का आविष्कार भी जरूरत से होता है। आवश्यकता कोई वैज्ञानिक खोजों की ही जननी नहीं है, देवताओं की भी जननी है। इसलिए तो इतने देवता! हिंदुस्तान में तैंतीस करोड़ आदमी थे, तो तैंतीस करोड़ देवता। अब आदमी तो थोड़े ज्यादा बढ़ गए हैं, देवता भी हमें बढ़ाने चाहिए। नहीं तो बहुत मुश्किल पड़ जाएगी; कुछ लोग बिना देवताओं के पड़ जाएंगे।

हरेक अपना देवता खड़ा कर लेता है, जो उसकी जरूरत है, उसके मुताबिक। और फिर उस देवता से प्रार्थना करने लगता है।

कृष्ण कहते हैं, वे दूसरे देवताओं के पास चले जाते हैं।

परमात्मा तो एक है और हम उसे गढ़ नहीं सकते।

मोहम्मद ने अगर काबा की तीन सौ पैंसठ मूर्तियां हटवाईं, तो सिर्फ इसलिए कि वे देवताओं की मूर्तियां थीं। मोहम्मद कोई परमात्मा की प्रतिमा को मनुष्य के हृदय से नहीं हटाना चाहते थे। लेकिन बड़ी गलत-समझी पैदा हो गई।

मोहम्मद कोई परमात्मा की प्रतिमा को नहीं हटाना चाहते थे। परमात्मा की प्रतिमा मनुष्य के हृदय में स्थापित हो, इसलिए देवताओं की जो तथाकथित प्रतिमाएं थीं काबा के मंदिर में–हर दिन के लिए अलग देवता था, तीन सौ पैंसठ देवता थे एक-एक दिन के लिए, हर दिन अलग देवता पर पूजा होती थी–मोहम्मद ने हटवा दिया, फिंकवा दिया, कि हटा दो इन्हें।

क्योंकि इन देवताओं की वजह से जो लोग आते हैं, वे कृष्ण के तीन वर्ग पहले जो हैं, वही लोग होंगे–आर्त, अर्थार्थी, जिज्ञासु–वही आएंगे। वह जो चौथा है, वह तो उस परम एक की तरफ ही जाता है। लेकिन उस एक की तरफ जाने की शर्त पूरी करनी पड़ती है। वह शर्त महंगी है, कठिन है, दुर्धर्ष है, दुस्तर है। क्योंकि स्वयं को ही दांव पर लगाना पड़ता है, नारियल को नहीं।

हालांकि आपने कभी खयाल किया हो या न किया हो, आदमी बड़ा होशियार है। नारियल, आपने कभी खयाल किया, आदमी की खोपड़ी की शक्ल की चीज है। आंख भी होती है, नाक भी होती है, खोपड़ी भी होती है! जोर से पटको, तो खोपड़ी की तरह फूटता भी है। आपने कभी खयाल किया कि नारियल किन लोगों ने खोजा? आदमी की खोपड़ी की शक्ल में खोजा गया है।

अपने को चढ़ाना पड़ता है परमात्मा के दरवाजे पर; अपनी गर्दन काटनी पड़ती है। प्रतीकात्मक अर्थों में, सिंबालिकली, अपनी ही गर्दन काटकर चढ़ानी पड़ती है। अपने को नहीं काटेगा, वह क्या चढ़ाएगा! वह क्या परमात्मा को पाएगा!

पर होशियार है आदमी; उसने सोचा, गर्दन वगैरह तो बहुत महंगी पड़ती है। पांच आने में नारियल मिलता है; बिलकुल आदमी की खोपड़ी जैसा लगता है। आंख भी हैं; सब हिसाब-किताब पूरा है। फिर असली भी खरीदने की जरूरत नहीं है, सड़ा-सड़ाया भी मिल जाता है।

हर मंदिर के सामने दुकान होती है। और करीब-करीब मैंने सुना है कि मंदिर के पास जो दुकान होती है, जो नारियल उन्होंने पहली दफे खरीदे थे, उनसे ही काम चलता चला जाता है। क्योंकि अंदर जाकर चढ़ जाते हैं, पुजारी रात को बेच जाता है। सुबह फिर मंदिर में चढ़ने लगते हैं, रात फिर लौट आते हैं। इसलिए दुनियाभर में नारियल के दाम बढ़ जाएं, मंदिर की दुकान वाला नारियल पुराने दाम से भी चलता है; कोई हर्जा नहीं! उसके भीतर कुछ बचा भी है, यह संदिग्ध है। सब सड़ चुका होगा कभी का।

लेकिन आदमी कितना कुशल है! उसने नारियल खोजा; उसने सिंदूर खोजा। सिंदूर–खून। खून अपने प्राणों का जो लगाए; वह प्रतीक है कि अपने खून को जो चढ़ा दे। तो उसने देखा, खून से मिलती-जुलती चीज बाजार में कोई मिलती है? मिलता है। सिंदूर मिल गया। उसने सिंदूर लगा दिया। नारियल चढ़ा दिया। दो-चार-आठ आने में निपटाकर वह अपने घर वापस आया।

निश्चित, यह पूजा परमात्मा तक नहीं पहुंचती। यह पूजा सिर्फ हमारी वासनाओं की सेवा है। और यह आपको कहूं कि इसमें कभी-कभी परिणाम आते हैं, इसलिए और कठिनाई है। ऐसा नहीं है कि यह चूंकि बिलकुल थोथी है, इसमें कभी परिणाम नहीं आते। इसमें परिणाम आते हैं। उसी से तो झंझट है। अगर परिणाम बिलकुल न आते होते, तो आदमी कभी का ऊब गया होता। परिणाम आते हैं।

परिणाम इसलिए आते हैं कि जब भी आप किसी देवता की पूजा शुरू करते हैं, या कोई देवता निर्मित कर लेते हैं...। अक्सर देवता इस तरह निर्मित होते हैं, कोई आदमी मरा, कोई संत मरा, कोई फकीर मरा, कोई महात्मा मरा; वेदी बन गई; मूर्ति बन गई। कुछ आस-पास पूजा-प्रार्थना शुरू हो गई। देवता निर्मित हो गया।

कभी जब ऐसा कोई देवता निर्मित हो जाता है, तो परिणाम भी आते हैं। क्योंकि बहुत-से अच्छे लोग, जिनकी आत्माएं आस-पास भटकने लगती हैं, अशरीरी हो जाती हैं, आपके द्वारा की गई प्रार्थनाओं में सहायता पहुंचा सकते हैं। वह सहायता उनकी दया से निकलती है। लेकिन आपको मिल जाती है सहायता, तो आप सोचते हैं कि देवता ने सहायता की, तो प्रार्थना करता चला जाऊं, करता चला जाऊं।

आपके हर देवता के आस-पास ऐसी आत्माएं मौजूद हैं, जो आपको सहायता कर सकती हैं। भले लोगों की आत्माएं हैं।

देखें, एक आदमी परेशान आया है, उसकी लड़की की शादी नहीं हो रही है। कोई मूर्ति सहायता नहीं करेगी, कोई नारियल सहायता नहीं करेगा। लेकिन उस मूर्ति और उस मंदिर के वातावरण में निवास करने वाली कोई भली आत्मा सहायता कर सकती है। और वह सहायता आपको मिल जाए, तो आपका तो गणित पूरा हो गया कि मेरी मांग पूरी हुई, मेरी प्रार्थना पूरी हुई, देवता सच्चा है। अब तो इसको कभी छोड़ना नहीं है। फिर आप उसको पकड़े चले जाते हैं।

तो देवता के पीछे से घटनाएं घटती हैं, इसमें कोई शक नहीं है। लेकिन उसके घटने का कारण बहुत दूसरा है। वह दया है किन्हीं शुभ आत्माओं की।

लेकिन कृष्ण जिस परम उपलब्धि की बात कर रहे हैं, उसके लिए तो देवताओं के पास जाने से नहीं होगा। क्योंकि कोई कितनी ही शुभ आत्मा क्यों न हो, किसी को परमात्मा नहीं दिला सकती।

हां, धन दिला सकती है। वह कोई बड़ी कठिन बात नहीं है। नौकरी दिला सकती है। किसी की शादी करवा सकती है। किसी की बीमारी ठीक करवा सकती है। वह कोई कठिन बात नहीं है। जो आदमी कर सकता है, वही अच्छी आत्मा भी कर सकती है, सरलता से।

लेकिन परमात्मा से कोई अच्छी आत्मा आपको मिलवा नहीं सकती। परमात्मा से मिलने तो आपको ही जाना पड़ेगा। और चौथे तरह के ज्ञानी होकर जाना पड़ेगा, तो ही आप पहुंच पाएंगे।

वासनाओं से हटे चित्त, आसक्तियों से टूटे चित्त, ज्ञान में थिर हो, समर्पित एकीभाव से प्रभु की तरफ भजन करे, दौड़े, गति करे, तो एक दिन भक्त भगवान हो जाता है।

सब भक्त भगवान हैं। उन्हें पता हो, न पता हो। फर्क पता होने का और न पता होने का है। लेकिन कोई भक्त भगवान से वंचित नहीं है। प्रत्येक भक्त भगवान है।

आज इतना ही।

ओशो – गीता-दर्शन – भाग 3
श्रद्धा का सेतु— अध्याय—7 (प्रवचन—8)

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम्।। 21 ।।
स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते।
लभते च ततः कामान्मयैव विहितान्हि तान्।। 22 ।।
जो-जो सकामी भक्त जिस-जिस देवता के स्वरूप को श्रद्धा से पूजना चाहता है, उस-उस भक्त की मैं उस ही देवता के प्रति श्रद्धा को स्थिर करता हूं। तथा वह पुरुष उस श्रद्धा से युक्त हुआ उस देवता के पूजन की चेष्टा करता है और उस देवता से मेरे द्वारा ही विधान किए हुए उन इच्छित भोगों को निःसंदेह प्राप्त होता है।

प्रभु की खोज में किस नाम से यात्रा पर निकला कोई, यह महत्वपूर्ण नहीं है; और किस मंदिर से प्रवेश किया उसने, यह भी महत्वपूर्ण नहीं है। किस शास्त्र को माना, यह भी महत्वपूर्ण नहीं है। महत्वपूर्ण सिर्फ इतना है कि उसका भाव

श्रद्धा का था। वह राम को भजता है, कि कृष्ण को भजता है, कि जीसस को भजता है, इससे बहुत फर्क नहीं पड़ता। वह भजता है, इससे फर्क पड़ता है। किस बहाने से वह प्रभु और अपने बीच सेतु निर्मित करता है, वे बहाने बेकार हैं। असली बात यही है कि वह प्रभु-मिलन के लिए आतुर है; वह श्रद्धा ही सार्थक है।

इसे ऐसा समझें कि यदि परमात्मा का सवाल भी न हो, और कोई व्यक्ति परम श्रद्धा से आपूरित हो; किसी के प्रति भी नहीं, सिर्फ श्रद्धा का उसके हृदय में आविर्भाव होता हो, श्रद्धा उसके हृदय से विकीर्णित होती हो; किसी के चरणों में भी नहीं, लेकिन उसके भीतर से श्रद्धा का झरना बहता हो, तो भी वह परमात्मा को उपलब्ध हो जाएगा। नास्तिक भी पहुंच सकता है वहां, अगर उसके हृदय से श्रद्धा के फूल झरते हैं। और आस्तिक भी वहां नहीं पहुंच पाएगा, अगर उसके जीवन में श्रद्धा का झरना नहीं है।

तो श्रद्धा को थोड़ा इस सूत्र में ठीक से समझ लेना जरूरी है।

श्रद्धा से क्या अर्थ है? श्रद्धा से अर्थ, विश्वास नहीं है, बिलीफ नहीं है।

यह बहुत मजे की बात है कि जो लोग भी विश्वास करते हैं, वे अविश्वासी होते हैं। उनके भीतर अविश्वास छिपा होता है। उसी अविश्वास को दबाने के लिए वे विश्वास करते हैं। भीतर अविश्वास होता है, उसे दबाने के लिए, उसे झुठलाने के लिए, भुलाने के लिए, मिटाने के लिए, वे विश्वास करते हैं। लेकिन भीतर का अविश्वास और गहरे उतर जाता है, मिटता नहीं है।

विश्वासी कभी भी अविश्वास को नहीं मिटा पाता। क्योंकि विश्वास होता ही किसी अविश्वास के खिलाफ है। विश्वास की जरूरत ही इसलिए पड़ती है कि भीतर अविश्वास है।

श्रद्धा बड़ी और बात है। श्रद्धा विश्वास नहीं है, अविश्वास का अभाव है।

इस बात को ठीक से समझ लें।

श्रद्धा विश्वास नहीं है, अविश्वास का अभाव है। जिसके हृदय में अविश्वास नहीं है, वह विश्वास भी नहीं करता, क्योंकि विश्वास किसलिए करेगा! एक आदमी जब कहता है कि मैं ईश्वर में विश्वास करता हूं, तब वह जितना जोर लगाकर कहता है कि मैं विश्वास करता हूं, जानना कि उतना ही ताकतवर अविश्वास भीतर बैठा है। वह उसी अविश्वास को इतना जोर लगाकर दबाता है। अन्यथा अविश्वास न हो, तो विश्वास करने का कोई कारण नहीं रह जाता।

आप कभी भी ऐसा नहीं कहते कि मैं सूरज में विश्वास करता हूं। लेकिन आप कहते हैं, मैं ईश्वर में विश्वास करता हूं। आप कभी नहीं कहते कि यह आकाश, जो चारों तरफ है मेरे, इसमें मैं विश्वास करता हूं। लेकिन आप कहते हैं, मैं ईश्वर में विश्वास करता हूं। और अगर कोई आदमी आकर कहे कि मैं सूरज में विश्वास करता हूं, तो क्या उसका विश्वास इस बात की खबर न होगा कि वह आदमी अंधा है! सिर्फ अंधे ही सूरज में विश्वास कर सकते हैं। जिनके पास आंख है, उनकी सूरज में श्रद्धा होती है। श्रद्धा का अर्थ है, अविश्वास नहीं होता।

आप सूरज में विश्वास नहीं करते हैं, आप जानते हैं कि सूरज है। संदेह ही नहीं किया कभी, तो विश्वास करने का कोई सवाल नहीं है। बीमार ही नहीं हुए कभी, तो किसी दवा लेने की कोई जरूरत नहीं है।

विश्वास जो है, एंटीडोट है डाउट का। वह जो संदेह भीतर बैठा है, उसको दबाने का इंतजाम है विश्वास। इसलिए आदमी कहता है, मैं ईश्वर में विश्वास करता हूं। लेकिन कभी नहीं कहता कि मैं पदार्थ में विश्वास करता हूं। पदार्थ में कोई अविश्वास ही नहीं है, इसलिए विश्वास की कोई जरूरत नहीं पड़ती है। और अगर कोई कहता हो, तो उसे शक होगा कि वह आदमी अंधा है। आंख वाला आदमी सूरज में विश्वास नहीं करता, श्रद्धा करता है।

इस फर्क को आप ठीक से समझ लें।

श्रद्धा का अर्थ है, अविश्वास उठता ही नहीं। विश्वास का अर्थ है, अविश्वास मौजूद है। किसी भय के कारण, किसी लोभ के कारण, वह जो अविश्वास मौजूद है, उसे हम दबा लेना चाहते हैं, छिपा लेना चाहते हैं, झुठला देना चाहते हैं, भुला देना चाहते हैं।

धर्म की यात्रा पर विश्वास से काम नहीं चलता। विश्वास सब्स्टीटयूट है श्रद्धा का; लेकिन इमिटेशन, नकली; उससे काम नहीं चलता। इसीलिए तो दुनिया में इतने विश्वासी लोग हैं, फिर भी धर्म कहीं दिखाई नहीं पड़ता। विश्वासियों की कोई कमी है? सच पूछा जाए, तो अधिकतम लोग विश्वासी हैं। वे जो अविश्वास करते हुए मालूम पड़ते हैं, वे भी विश्वासी हैं। सिर्फ उनके विश्वास नकारात्मक हैं।

पृथ्वी विश्वासियों से भरी है, लेकिन धर्म की कोई रोशनी नहीं दिखाई पड़ती। मंदिर, मस्जिद और चर्चों में विश्वासी प्रार्थना कर रहे हैं, लेकिन प्रार्थना का आनंद कहीं विकीर्णित होता नहीं दिखाई पड़ता। वह हरियाली जो प्रार्थना से हमारे हृदय पर छा जानी चाहिए, नहीं छाती दिखाई पड़ती। हम रूखे के रूखे, सूखे के सूखे, मरुस्थल रह जाते हैं। कहते हैं कि प्रार्थना कर आए, लेकिन मरुस्थल का मरुस्थल रह जाता है, कोई वर्षा नहीं होती उस पर।

विश्वास धोखा है श्रद्धा का, लेकिन धोखे से कुछ काम नहीं चलेगा।

एक व्यक्ति संध्या अपने घर लौटा है। उसकी पत्नी का जन्मदिन है। आते ही उसने कहा कि देखती हो, हीरे की अंगूठी लाया हूं तुम्हारे लिए। पत्नी ने कहा, हीरे पर इतना खर्च क्यों किया? इतने दिन से हम सोचते थे, अच्छा होता कि तुम एक कार ही खरीद लाते और मुझे भेंट कर देते। उस आदमी ने आंख बंद कर ली और फिर सिर ठोंका, और उसने कहा कि क्या करूं, इमिटेशन कार मिलती नहीं; नकली कार मिलती नहीं। नकली हीरा मिल जाता है। नकली कार मिलती होती, तो वह ले आता।

श्रद्धा की जगह जिसने भी विश्वास को पकड़ा है, वह नकली हीरे को पकड़े हुए है। असली हीरे का उसे पता ही नहीं है। इसलिए विश्वासी बहुत डरता है कि कोई उसके विश्वास का खंडन न कर दे; कोई विपरीत तर्क न दे दे; कोई उलटी बात न कह दे; कहीं विश्वास डगमगा न जाए।

ध्यान रहे, विश्वास डगमगाता ही रहेगा, क्योंकि विश्वास की कोई जड़ ही नहीं है। श्रद्धा नहीं डगमगाती। इसलिए श्रद्धा से ज्यादा अभय, फियरलेस, इस जगत में कोई भी चीज नहीं है। खुद भगवान भी आकर किसी श्रद्धावान हृदय को कहे कि भगवान नहीं है, तो वह कहेगा कि रास्ते से हटो! लेकिन आपके विश्वास को तो एक छोटा-सा बच्चा डिगा सकता है। एक छोटा-सा बच्चा तर्क उठा दे, और आपके विश्वास मिट्टी में लोट जाते हैं।

इसलिए कोई आदमी अपने विश्वासों की चर्चा नहीं करना चाहता। क्योंकि विश्वास की चर्चा करनी खतरनाक है। उसके नीचे कोई जड़ नहीं है। ऊपर-ऊपर है सब। जरा में गिर जाएगा।

कृष्ण कहते हैं, श्रद्धा जो करता है। फिर वे कहते हैं कि वह श्रद्धा चाहे किसी कामना से प्रेरित होकर किसी देवता में ही क्यों न करता हो। और यहां एक बहुत कीमती बात वे कहते हैं! कहते हैं, किसी कामना से प्रेरित होकर ही, अर्थार्थी, किसी वासना से प्रेरित होकर ही किसी देवता में श्रद्धा क्यों न करता हो, मैं उसकी श्रद्धा नहीं मिटाता। मैं उसकी श्रद्धा को परिपुष्ट और मजबूत करता हूं।

दो रास्ते संभव हैं।

कृष्ण भलीभांति जानते हैं कि देवता की श्रद्धा मुक्ति तक, सत्य तक, परम सत्य तक नहीं ले जाएगी। यह भी भलीभांति जानते हैं कि कामना से प्रेरित होकर जो आदमी श्रद्धा कर रहा है, उसकी श्रद्धा बड़ी सांसारिक है। उसके लगाव में परमात्मा की तरफ बहाव कम है, संसार में ही बहने के लिए परमात्मा की सहायता की अपेक्षा ज्यादा है। यह भलीभांति जानते हैं।

दो रास्ते हैं। या तो कृष्ण कह सकते हैं कि छोड़ो कामवासना, छोड़ो वासनाएं, हटाओ वासनाओं को, और छोड़ो देवताओं को, क्योंकि देवताओं से परम मुक्ति नहीं होगी। आओ मेरे पास, सब वासनाओं को छोड़कर, परम ऊर्जा के पास। वही मुक्ति है, वही स्वातंत्र्य है, वही अमृत है। एक रास्ता तो यह है।

लेकिन कृष्ण भलीभांति जानते हैं कि ऐसा कहकर इस बात की तो सौ में एक ही संभावना है कि कोई देवताओं को और वासनाओं को छोड़कर कृष्ण के पास आए। सौ में निन्यानबे संभावना यह है कि कृष्ण के पास तो आए ही नहीं, देवता के पास भी जाना बंद कर दे। इसकी संभावना सौ में निन्यानबे है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, मैं उसके ही देवता में उसकी श्रद्धा को स्थापित करता हूं। क्योंकि श्रद्धा आज देवता में स्थापित हो जाए, तो कल एक कदम आगे उसे और बढ़ाया जा सकता है। कृष्ण कहते हैं, वह कामवासना से भरे व्यक्ति को भी मैं एकदम से नहीं कहता कि तेरी कामवासना गलत है। मैं कहता हूं कि ठीक है। मेरी शक्ति तेरी वासनाओं की पूर्ति में भी सहयोगी बनेगी।

इतने भरोसे के साथ उसकी कामवासना में भी सहायता देने की जो बात है, वह सोचने जैसी है, उसमें कुछ राज है। उसमें राज यह है कि तू अपनी कामवासना पूरी कर ले। पूरी करके तू पाएगा कि कुछ पूरा नहीं हुआ। तू अपनी वासनाओं को पूरा कर ले। पूरा करके तू पाएगा कि तूने व्यर्थ की मांग की। पूरा करके तू पाएगा कि परमात्मा की जो शक्ति तेरी वासनाओं की पूर्ति के लिए मिली, उस शक्ति से तो स्वयं तू परमात्मा हो सकता था। तूने उसे व्यर्थ गंवाया है।

इस भरोसे के साथ, कृष्ण कहते हैं, मैं उसकी श्रद्धा को मजबूत करता हूं उसी देवता में, जिसकी तरफ उसका लगाव है। और उसी वासना के लिए कहता हूं कि ठीक। चलो, यही सही। शायद परमात्मा की शक्ति मिलनी शुरू हो। आपने भला किसी और चीज के लिए मांगी हो, लेकिन जब वह मिलेगी और उसके आनंद की चारों तरफ वर्षा होने लगेगी, तो वह घटना भी घट सकती है कि जिसके लिए आपने मांगा था, वह आप ही भूल जाएं, और जो बरस रहा है, वही स्मरण में रह जाए, और उसी तरफ यात्रा शुरू हो जाए।

दो रास्ते हैं। एक रास्ता तो यह है कि पहले आपसे गलत छुड़ाया जाए और तब आपको सही दिया जाए। दूसरा रास्ता यह है कि आपको सही दिया जाए, ताकि गलत आपसे छूटे। कृष्ण सही को देने के लिए अति आतुर हैं। क्योंकि वे जानते हैं कि सही मिलना शुरू हो, तो गलत छूटना शुरू होता है।

और गलत छुड़वाना बहुत मुश्किल है, क्योंकि जिनके हाथ में सही नहीं है, वे गलत के सहारे जीते हैं। अगर हम उनसे उनका गलत छुड़वाना शुरू करें, तो इसकी बहुत कम संभावना है कि वे गलत को छोड़ें और सही की यात्रा पर निकलें। इस बात की ही संभावना ज्यादा है कि वे हमारी बात सुनना बंद कर दें, और अपने गलत को पकड़े रहें। या यह भी डर है कि वे गलत को भी छोड़ दें, और सही की यात्रा पर भी न निकलें। तब एक त्रिशंकु की हालत में, बीच में, अधर में लटक जाएं। जैसा कि आज करीब-करीब पश्चिम में हुआ है।

इन पिछले तीन सौ वर्षों में पश्चिम के विचारकों ने क्या गलत है, इस पर इतनी चर्चा की कि गलत तो छूट गया; क्या सही है, उसका कुछ पता नहीं रहा। पश्चिम में तीन सौ साल के अच्छे लोगों का परिणाम यह हुआ है कि आज पश्चिम का मन, एंटी आल एंड प्रो नथिंग, हर चीज के खिलाफ और किसी चीज के पक्ष में नहीं रह गया है।

जो लोग कृष्णमूर्ति को सुनते रहे हैं, उनकी स्थिति भी ऐसी ही बन जाती है--एंटी आल, प्रो नथिंग। हर चीज के विरोध में, हर चीज के निषेध में। यह भी गलत, यह भी गलत, यह भी गलत; और सही क्या है, उसकी कोई किरण उतरती नहीं। तब व्यक्ति बीच में अटका रह जाता है।

कृष्ण की पद्धति बिलकुल दूसरी है। वे कहते हैं कि तुम गलत हो, गलत होओगे ही। क्योंकि जब तक परमात्मा न मिले, तब तक सही हो भी कैसे पाओगे? तुम कंकड़-पत्थर पकड़े हो, स्वाभाविक है। क्योंकि जब तक हीरे न मिलें, कंकड़-पत्थर छोड़ोगे कैसे? तुम मिट्टी के घर बना रहे हो, स्वाभाविक है। क्योंकि जब तक तुम्हें अमृत का घर न मिल जाए, तुम और करोगे क्या?

कृष्ण की करुणा अपरिसीम है। वे कहते हैं कि ठीक है, तुम बच्चे हो, इसलिए सीप और पत्थर इकट्ठे कर रहे हो। ठीक है। मैं तुमसे सीप नहीं छीनता; मैं तुम्हें प्रौढ़ करने की कोशिश करूंगा, ताकि एक दिन तुम्हारे हाथ से सीपें छूट जाएं, और तुम हीरों की खदान को खोदने में लग जाओ।

ध्यान रहे, कृष्ण की विधि पाजिटिव है, विधायक है। इधर इन तीन सौ वर्षों में सारी दुनिया की बुद्धि नकारात्मक ढंग से सोचने की आदी बनी है। और हमें ऐसा लगता है कि हम अंधेरे को मिटा दें, तो प्रकाश आ जाएगा। जब कि बात उलटी है। प्रकाश आ जाए, तो अंधेरा मिटता है।

एक आदमी अंधेरे में बैठकर अब दीया जलाने की कोशिश कर रहा है; अंधेरे में ही करेगा, क्योंकि दीया अभी जला नहीं। और अंधेरे में जो कोशिश होंगी, भूल-चूक से भरी होंगी, यह निश्चित है। कभी बाती ठीक जगह न लगेगी, कभी तेल ढुल जाएगा, कभी माचिस ढूंढ़ने निकलेगा और नहीं मिलेगी, क्योंकि अंधेरा है, दीया जला हुआ नहीं है।

अंधेरे में भूल-चूक बिलकुल स्वाभाविक है। अगर हम भूल-चूक पर बहुत नाराज हो जाएं और उस आदमी से कहें कि बंद करो। पहले अंधेरे को मिटा लो, फिर दीए को जलाना; तब भूल-चूक बिलकुल नहीं होगी।

होगी तो नहीं बिलकुल भूल-चूक, लेकिन अंधेरे को मिटाया नहीं जा सकता, और दीए को जलाया नहीं जा सकता। अंधेरे में टटोलकर, भूल-चूक करते हुए ही दीया जलता है। यद्यपि दीया जल जाए, तो भूल-चूक बंद हो जाती है।

जीवन को पाजिटिवली, जीवन को विधायक दृष्टि से देखने का रुख यह है। इसलिए कृष्ण गलत को भी समर्थन दे रहे हैं। भलीभांति जानते हुए कि वासनाओं से भरा हुआ चित्त गलत है। यह भी जानते हुए कि देवताओं की शरण में गया चित्त वासनाओं की पूर्ति के लिए ही जाता है। यह भी जानते हुए कि जो आदमी देवताओं के चरणों में बैठ रहा है, उस आदमी की अभी परम खोज शुरू नहीं हुई। और यह भी जानते हुए कि वह जो मांगने आया है, वह बहुत बच्चों जैसी चीज है; देने योग्य भी नहीं है। लेकिन कृष्ण कहते हैं, वह हम तुझे देंगे। तेरे ही देवता में तेरी प्रतिष्ठा कर देंगे। तेरा और लगाव बढ़ाएंगे तेरे ही देवता में। तेरे देवता में भी मेरी शक्ति प्रवाहित होकर, तेरे देवता से ही तुझे मिल जाएगी, ताकि तू अपनी श्रद्धा में दृढ़ हो जाए।

और आदमी एक-एक कदम अगर श्रद्धा में दृढ़ होता जाए, तो एक दिन वह अनिर्वचनीय घटना भी घटती है, वह विस्फोट भी, जब श्रद्धा पूर्ण होती है, जब कोई संदेह की रेखा भी नहीं रह जाती भीतर। उस निस्संदिग्ध श्रद्धा में परम की यात्रा अपने आप हो जाती है।

इस कमजोर आदमी को देखकर दिया गया यह वक्तव्य है।

कृष्णमूर्ति जैसे व्यक्ति कमजोर आदमी की जरा भी फिक्र करते हुए मालूम नहीं पड़ते हैं। उनके वक्तव्य उनके लिए हैं, जो कभी भूल नहीं करते। लेकिन जो कभी भूल नहीं करते, उनके लिए किसी के वक्तव्य की कोई भी जरूरत नहीं है। वे जो भूल करते हैं, वे जो अंधेरे में खड़े हैं, उनके लिए वे वक्तव्य खतरनाक हैं। खतरनाक इसलिए हैं कि उस तरह की बातें उन्हें बौद्धिक रूप से स्मरण हो जाएंगी। वे रट लेंगे उन बातों को। वे कहेंगे कि दीए को जलाया नहीं जा सकता, जब तक अंधेरा है। क्योंकि अंधेरे में जो भी दीया जलाया जाएगा, वह गलत होगा।

कृष्णमूर्ति कहते हैं, यू कैन नाट टेक एनी स्टेप इन कनफ्यूजन, बिकाज ए स्टेप टेकेन इन कनफ्यूजन मस्ट बी कनफ्यूज्ड। कनफ्यूजन में आप कोई कदम नहीं उठा सकते, भ्रमित दशा में, क्योंकि भ्रमित दशा में उठाया गया कोई भी कदम और भ्रम में ही ले जाएगा। वही बात, अंधेरे में आप दीया नहीं जला सकते, क्योंकि अंधेरे में जो आप दीया जलाएंगे, अंधेरे में भूल-चूक हो ही जाएगी।

लेकिन सब दीए अंधेरे में जलाए जाते हैं; और दुनिया में सब कदम कनफ्यूजन में ही उठाए जाते हैं।

(अब वर्षा की कुछ बूंदें प्रवचन स्थल पर गिरने लग गई हैं। भगवान श्री बोलना जारी रखते हैं।)

घबड़ाएं न। थोड़ा पानी गिरेगा, तो इतने घबड़ा न जाएं। कृष्ण की बात सुनने आए हों, तो थोड़ा-सा इतना परेशान न हों कि दो-चार बूंदें आपके कपड़े पर गिरेंगी, तो आप मिट जाएंगे, कि मर जाएंगे, कि समाप्त हो जाएंगे। दो-चार बूंदें गिरती हैं, उन्हें गिर जाने दें। इतने कमजोर लोगों को गीता सुनने नहीं आना चाहिए।

वे कृष्ण समझा रहे हैं कि आग से जलती नहीं आत्मा। आपकी तरफ देखेंगे, तो उनको बड़ी निराशा होगी कि पानी से गल जाती है! अभी कोई दो-चार बूंद! अभी कोई पानी भी नहीं आ गया। अभी सिर्फ आसार हैं पानी के। बादल थोड़ी आवाज दे रहे हैं, आपको देखने के लिए कि आदमी किस तरह के इकट्ठे हैं यहां!

तो अपनी जगह बैठे रहें। कोई भी आदमी उठे, तो पास के लोग उसे पकड़कर नीचे बिठाल दें। क्योंकि नाहक इतने लोग उसको देखेंगे कि इतना कमजोर आदमी है। उस पर थोड़ी दया करें, उसे पकड़कर वहीं के वहीं बिठा दें। कुछ कहने की जरूरत नहीं; उसे चुपचाप बिठा दें।

पानी गिरेगा, कृष्ण की बात का पता चल जाएगा, कि आत्मा गलती है कि नहीं गलती है। नहीं गले, तो समझना कि कृष्ण ठीक कहते हैं। और गल जाए, तो समझना कि कृष्ण गलत कहते हैं। तो आज प्रयोग करके ही चलेंगे। पानी को गिरने दें। देखें कि गलते हैं कि नहीं गलते हैं।

बच्चों जैसे काम न करें। और बच्चों जैसे काम करने हों, तो जगत में जो थोड़े-से बुद्धिमान हुए हैं, उन लोगों की बातें सुनने नहीं आना चाहिए।

कृष्ण की करुणा उन लोगों पर है, जो हर तरह से भूल से भरे हैं; हर तरह से जिनसे गलत ही होने का डर है; जिनसे सही न हो पाएगा। कहते हैं, तुम्हारी गलती को भी मैं स्वीकार कर लूंगा। तुम भूल से जाओगे मंदिर में, वह भी मैं मान लूंगा। तुम नासमझी से प्रार्थना करोगे, वह भी मैं स्वीकार कर लूंगा।

बिठा दें; जो भी आपके पास भागता हो, उसे पास के लोग पकड़कर बिठा दें। और आप घबड़ाएं नहीं। मैं यहां मंच पर बैठा हुआ हूं, तो यहां पानी नहीं गिर रहा है। बाथरूम में जाकर खड़ा हो जाऊंगा कपड़े पहने आधा घंटा, आपकी तरफ से। तो उसको झेल लूंगा। आप परेशान न हों। एक पांच मिनट में पानी चला जाएगा और आनंद दे जाएगा।

तो दूसरा सूत्र पढ़ो, हूं।

प्रश्नः
भगवान श्री, पिछले श्लोक में कृष्ण कहते हैं कि व्यक्ति वासनाओं की पूर्ति के लिए जिन देवताओं को पूजते हैं, वे देवता मेरे द्वारा विधान किए हुए फलों को प्रदान करते हैं। मेरे द्वारा विधान किए हुए फलों को, कृपया इसका अर्थ स्पष्ट करें।
इस जगत में कुछ भी ऐसा नहीं होता है, जो परमात्मा के विधान से विपरीत हो। ऐसा कुछ भी नहीं होता है, जो उसके नियम के बाहर हो। ऐसा कुछ भी हो नहीं सकता है, जो उसकी शक्ति से ही, उसकी ऊर्जा से ही संचालित न होता हो।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, जो भी देवता मनुष्यों की वासनाओं से भरी चित्त दशा में भी, उनकी प्रार्थनाओं को पूरा करते हैं, वे भी मेरे ही द्वारा किए हुए विधान के माध्यम से! मैं ही, मेरी शक्ति ही, उस सारे विधान के पीछे सक्रिय होती है।

ओशो – गीता-दर्शन – भाग 3
कामना और प्रार्थना— अध्याय—7 (प्रवचन—9)

अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम्।
देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि।।23।।
परंतु उन अल्पबुद्धि वालों का वह फल नाशवान है तथा वे देवताओं को पूजने वाले देवताओं को प्राप्त होते हैं और मेरे भक्त मेरे को ही प्राप्त होते हैं।

कामनाओं से प्रेरित होकर की गई प्रार्थनाएं जरूर ही फल लाती हैं। लेकिन वे फल क्षणिक ही होने वाले हैं; वे फल थोड़ी देर ही टिकने वाले हैं। कोई भी सुख सदा नहीं टिक सकता, न ही कोई दुख सदा टिकता है। सुख और दुख लहर की तरह आते हैं और चले जाते हैं।

देवताओं की पूजा से जो मिल सकता है, वह क्षणिक सुख का आभास ही हो सकता है। वासनाओं के मार्ग से कुछ और ज्यादा पाने का उपाय ही नहीं है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, लेकिन जो मेरे निकट आता है–और उनके निकट आने की शर्त है, वासनाओं को छोड़कर, विषयासक्ति को छोड़कर–वह उसे पाता है, जो नष्ट नहीं होता, जो खोता नहीं, जो शाश्वत है। इसलिए उन्होंने दो बातें इस सूत्र में कही हैं। अल्पबुद्धि वाले लोग!

अल्पबुद्धि वाले लोग कौन हैं? अल्पबुद्धि वाले लोग वे हैं, जो कि अपने ही हाथों, बहुत बड़े मूल्य पर बहुत छोटी चीज खरीदने को राजी हो जाते हैं। बहुत बड़े मूल्य पर बहुत छोटी चीज खरीदने को राजी हो जाते हैं। प्रार्थना से तो मिल सकता है परम सत्य, लेकिन वे मांग लेते हैं कुछ क्षुद्र वस्तुएं। प्रार्थना से मिल सकता है परम जीवन, लेकिन वे मांग लेते हैं शरीर की कुछ जरूरतें।

निश्चित ही, अल्पबुद्धि हैं इस कारण। और इसलिए भी अल्पबुद्धि हैं कि जो भी वे मांगते हैं, वह मिल भी जाए, तो भी मांग का कोई अंत नहीं होता। जो वे पाना चाहते हैं, पा लें, तब भी वे उतने ही अतृप्त, उतने ही दीन और उतने ही अधूरे होते हैं, जितना मिलने के पहले थे।

मांगना ही हो, तो उसे मांग लेना चाहिए, जिसे मांगकर फिर और कोई मांग शेष न रह जाए। पाना ही हो, तो उसे पा लेना चाहिए, जिसे पाकर तृप्ति हो जाती है, और पाने की दौड़ समाप्त हो जाती है। लेकिन अल्पबुद्धि लोग दूर तक नहीं देख पाते। विस्तीर्ण, जीवन के पूरे पहलू को नहीं समझ पाते। क्षणिक उनकी बुद्धि होती है। अभी जो लगता है जरूरी, वह मांग लेते हैं।

बुद्धिमान वही है, जो जीवन की परम आवश्यकता को मांगता है।

सुनी है हम सबने कथा, बहुत प्यारी और मधुर है। नचिकेता अपने पिता के पास बैठा है। पिता ने किया है बड़ा यज्ञ। ब्राह्मणों को दान कर रहे हैं वे। पिता ने नचिकेता से कहा है, मैं अपना सब दान कर दूंगा। छोटा बच्चा है, और छोटे बच्चों से कभी-कभी जो सवाल उठते हैं, वे बड़े गहरे और आत्यंतिक होते हैं। वह बैठा हुआ है पास में, जब ब्राह्मणों को दान दिया जा रहा है। और नचिकेता का पिता पुरानी बूढ़ी गाएं दे रहा है, जिनसे दूध मिलने को नहीं। इस तरह की चीजें दे रहा है, जिनकी अब कोई जरूरत नहीं रही। तो नचिकेता बार-बार पूछता है कि मैं भी तो आपका हूं न, तो मुझे कब दान देंगे? मुझे किसे दान देंगे? क्योंकि कहा आपने कि मैं अपना सब कुछ दे डालूंगा। मैं भी तुम्हारा बेटा हूं न!

पिता को क्रोध आ जाता है। वह क्रोध में कहता है कि तुझे भी दे दूंगा; घबड़ा मत। लेकिन तुझे मृत्यु को, यम को दे दूंगा।

नचिकेता, मानकर कि यम को दान कर दिया गया, यम के द्वार पर पहुंच जाता है। लेकिन यम घर के बाहर है। तो वह तीन दिन भूखा बैठा रहता है, फिर यम आते हैं। उसका तीन दिन भूखा बैठा रहना, उस छोटे-से बच्चे का, और इतनी सरलता से मृत्यु के द्वार पर स्वयं आ जाना! क्योंकि यम का अनुभव तो यही है कि वह जिसके द्वार पर जाता है, वही घर छोड़कर भागता है। यम के द्वार पर आने वाला यह पहला ही व्यक्ति है, जो खुद खोजबीन करके आया। और फिर यह देखकर कि यम घर पर नहीं है, भूखा-प्यासा बैठा है। तो यम कहते हैं कि तू कुछ मांग ले, तू वरदान ले ले। मैं तुझ पर प्रसन्न हुआ हूं। मैं तुझे हाथी-घोड़े, धन-दौलत, सुंदर स्त्रियां, राज्य–सब तुझे दूंगा।

नचिकेता कहता है, लेकिन जो धन आप देंगे, उससे मुझे तृप्ति मिल पाएगी, ऐसी, जो कभी नष्ट न हो? वह यम उदास होकर कहता है, ऐसी तो कोई तृप्ति धन से कभी नहीं मिलती, जो समाप्त न हो। वे जो स्त्रियां आप मुझे देंगे, उनका सौंदर्य सदा ठहरेगा? यम कहता है कि कुछ भी इस जगत में सदा ठहरने वाला नहीं है। वह जो आप मुझे लंबी उम्र देंगे, क्या उसके बाद फिर आप मुझे लेने न आएंगे? तो यम कहता है, यह तो असंभव है। कितनी ही हो लंबी उम्र, अंत में तो मैं आऊंगा ही। वह जो बड़ा राज्य आप मुझे देंगे, क्या उसे पाकर मैं वह पा लूंगा, ऋषियों ने जो कहा है कि जिसे पा लेने से सब पा लिया जाता है? यम कहता है, उससे तो कुछ भी नहीं मिलेगा, क्योंकि बड़े-बड़े सम्राट वह सब पा चुके हैं और फिर भी दीन-हीन मरे हैं। तो नचिकेता कहता है, ये चीजें फिर मैं न लूंगा। मुझे तो इतना ही बता दें कि मृत्यु का राज क्या है, ताकि मैं अमृत को जान सकूं।

नचिकेता को बहुत समझाता है यम। यम बहुत बुद्धिमान है। मृत्यु से ज्यादा बुद्धिमान शायद ही कोई हो। अनंत उसका अनुभव है जीवन का। हर आदमी की नासमझी का भी मृत्यु को जितना पता है, उतना किसी और को नहीं होगा। क्योंकि जिंदगीभर दौड़-धूप करके हम जो इकट्ठा करते हैं, मृत्यु उसे बिखेर जाती है। और एक बार नहीं, हजार बार हमारा इकट्ठा किया हुआ मौत बिखेर देती है। हम फिर दुबारा मौका पाकर, फिर वही इकट्ठा करना शुरू कर देते हैं।

आदमी की नासमझी का जितना पता मौत को होगा, उतना किसी और को नहीं है। इतने लोगों की नासमझी से गुजरकर मौत समझदार हो गई हो, तो आश्चर्य नहीं। लेकिन यह बच्चा बहुत अडिग है। वह कहता है कि मुझे तो वही बता दें, जिससे अमृत को जान लूं। मृत्यु को समझा दें मुझे। और आप तो मृत्यु को जानते ही हैं, आप मृत्यु के देव हैं। आप नहीं बताएंगे, तो मुझे कौन बताएगा!

बुद्धिमान होगा नचिकेता, कृष्ण के अर्थों में। हम बुद्धिमान नहीं हो सकते; हम अल्पबुद्धि हैं। खयाल रखें, कृष्ण कह रहे हैं, अल्पबुद्धि; बुद्धिहीन भी नहीं कह रहे हैं। बुद्धिहीन भी नहीं कह रहे हैं, अल्पबुद्धि।

अगर मनुष्य बिलकुल बुद्धिहीन हो, तब तो कोई संभावना नहीं रह जाती। बुद्धि तो है; बहुत छोटी है। बड़ी हो सकती है, विकसित हो सकती है। जो बीज की तरह है, वह वृक्ष की तरह हो सकती है। जो आज बहुत छोटी है, वह कल विराट बन सकती है।

कहते हैं, अल्पबुद्धि है आदमी। दुख तो नहीं चाहता आदमी, नहीं तो बुद्धिहीन होता। सुख चाहता है, लेकिन अल्पबुद्धि है। क्योंकि ऐसा सुख चाहता है, जो अंत में दुख ही लाता है, और कुछ लाता नहीं।

अल्पबुद्धि कहना प्रयोजन से है। और अगर इस बात को हम ठीक से समझें, तो हम सभी अल्पबुद्धि मालूम पड़ेंगे। हमने जो भी चाहा, जो भी मांगा, जो भी खोजा, जीवन के मंदिर में हमने जो भी प्रार्थनाएं की हैं, वे हमारी सब ऐसी प्रार्थनाएं हैं, जैसे कोई रेत पर मकान बनाए; ताश के पत्तों का घर बनाए; कागज की नावें बनाएं, और सोचे कि सागर में यात्रा पर निकल जाएगा। कागज की नाव पर कोई बैठकर सागर की यात्रा पर जा रहा हो, तो हम उसे क्या कहेंगे?

कृष्ण वही हमसे कह रहे हैं। हम सब कागज की नावों पर जीवन में यात्रा करते हैं। हमारी नावें सपनों से ज्यादा नहीं। और हमारे भवन ताश के पत्तों के घर हैं। और सब, रेत पर हमारे हस्ताक्षर हैं। हवा के झोंके आएंगे और सब बुझ जाएगा, और सब मिट जाएगा।

अल्पबुद्धि हैं हम। पर बुद्धि हम में है, अल्प ही सही। बीज ही सही, पोटेंशियलिटी ही सही। हम इतना तो तय है कि सुख चाहते हैं। हां, इतना तय नहीं है कि सुख क्या है, वह हम नहीं समझ पाए हैं।

सुख चाहते हैं, यह तय है। सुख चाहकर भी दुख पाते हैं, यह हमारा अनुभव है। लेकिन सुख की चाह हमारे भीतर है, वह बुद्धिमानी की सूचक है। लेकिन अत्यल्प बुद्धि की सूचक है। क्योंकि फिर जो हम करते हैं, उससे दुख हाथ में आता है। शायद हम ठीक से नहीं देख पाते कि सुख क्या है और दुख क्या है।

यह बहुत मजे की बात है। जो व्यक्ति भी थोड़ी दूर तक सोचेगा, वह हमेशा ऐसे सुख को चुन लेगा, जो बाद में दुख बन जाए। और जो व्यक्ति दूर तक सोचेगा, वह ऐसे दुख को चुनेगा, जो बाद में सुख बन जाए।

भोग और तपश्चर्या का इतना ही फर्क है। भोगी, आज जो सुख मालूम पड़ता है, उसे चुन लेता है; कल वह दुख हो जाता है। तपस्वी, आज जो दुख मालूम पड़ता है, उसे चुनता है, लेकिन कल वह सुख हो जाता है।

और यह बड़े मजे की बात है, जो दुख को चुन सकता है आज, वह कल सुख का मालिक हो सकता है। और जो सुख को ही चुन सकता है आज, कल वह सिवाय दुख के गङ्ढों के और किन्हीं चीजों को उपलब्ध नहीं होगा। सुख पर जिसकी नजर है, वह दुख में पड़ जाएगा। उसकी नजर बहुत ओछी है, बहुत पास ही वह देखता है। इतने पास देखता है कि आगे के रास्ते का कुछ पता नहीं चलता। दूर-दृष्टि चाहिए; दूर तक देखने की सामर्थ्य चाहिए। और अगर हम जरा भी दूर देख पाएं, तो हम जिन्हें सुख मानकर चलते हैं, उनकी खोज में हम अपने जीवन को नष्ट नहीं करेंगे।

सुना है मैंने कि एक अमेरिकी फिल्म निर्माता नई अभिनेत्री की तलाश में था। अपने एक कवि मित्र को पकड़ लाया, जिसकी सौंदर्य के संबंध में बड़ी सुरुचि थी, जो सौंदर्य का पारखी था, और जिसने सुंदरतम स्त्री को खोजकर विवाह किया था। सौंदर्य पर उसने कविताएं लिखी थीं और सौंदर्य पर शास्त्र लिखे थे। एस्थेटिक्स पर उसकी बड़ी प्रसिद्ध किताबें थीं। उस फिल्म निर्माता ने सोचा कि इस मित्र कवि को ले चलूं; वह एक नई अभिनेत्री की तलाश में था।

एक विश्व सौंदर्य प्रतियोगिता हो रही थी, जहां दुनियाभर से कोई तीन दर्जन सुंदर युवतियां पुरस्कार लेने आई थीं। तो उसने कहा अपने मित्र को कि तुम बैठकर एक-एक स्त्री को ठीक से देखते जाना और जो स्त्री तुम्हें ठीक जंच जाए, मुझे इशारा कर देना, तो मैं उसे अपनी नई फिल्म के लिए प्रमुख पात्र बना लूं।

लेकिन फिल्म निर्माता बड़ी मुश्किल में पड़ गया। पहली ही सुंदर युवती आई; सभी स्त्रियां एक से एक ज्यादा सुंदर थीं; एक-एक राष्ट्र से चुनकर भेजी गई थीं। पहली स्त्री सामने आई--बगल में कवि बैठा था--अर्धनग्न, करीब-करीब नग्न। कवि ने उसे देखा और कहा, फूः। वह बहुत हैरान हुआ; निर्माता बहुत हैरान हुआ। उसने इतनी सुंदर स्त्री देखी नहीं थी। पर कवि ने कहा, फूः। वह स्त्री चली गई, दूसरी स्त्री आई। और भी सुंदर थी। पर कवि ने कहा, फूः। वे तीन दर्जन स्त्रियां सामने से जो गुजरती गईं और वह एक ही काम करता रहा, फूः! फूः!

वह चित्र निर्माता तो बहुत घबड़ा गया। और जब तीनों दर्जन स्त्रियां निकल गईं, तो उसने पूछा, आश्चर्य, मैं तो तुम्हें लाकर बड़ी मुश्किल में पड़ गया। कोई भी स्त्री पसंद नहीं पड़ी! जो भी स्त्री तुमने देखी, कहा, फूः। तो क्या मतलब है तुम्हारा? क्या चाहते हो तुम? क्या मापदंड है तुम्हारा?

उस कवि ने कहा, यू हैव मिसअंडरस्टुड मी सर; आप मुझे गलत समझे। आई वाज़ नाट सेइंग फूः-फूः टु दीज गर्ल्स। आई वाज़ सेइंग फूः टु माई वाइफ। यह मैं इन लड़कियों के लिए फूः-फूः नहीं कह रहा था; यह तो मैं अपनी पत्नी के लिए फूः-फूः कर रहा था।

पर उसने कहा कि पत्नी का इससे क्या संबंध? तो उसने कहा, जब मैंने पत्नी को पहली दफा देखा था, तो वह भी ऐसी ही अतीव सुंदरी मालूम पड़ी थी। फिर जैसे-जैसे पास आई, सब फूः-फूः सिद्ध हो गया। तो मैं जानता हूं कि यह सब जो रूपरेखा दिखाई पड़ रही है, यह पीछे फूः-फूः सिद्ध हो जाने वाला है। अब इस जगत में दुबारा शरीर की रेखाएं मुझे आकर्षित न कर पाएंगी। अब दुबारा शरीर का अनुपात मेरे लिए सौंदर्य न बन सकेगा। एक ही अनुभव ने मुझे बहुत कुछ कह दिया है।

निश्चित ही, यह कवि सौंदर्य का पारखी रहा हो या न रहा हो, अल्पबुद्धि नहीं था। अल्पबुद्धि होता, तो सोचता कि एक पत्नी सुंदर दिखाई पड़ी, फिर सुंदर नहीं सिद्ध हुई, तो जरूरी तो नहीं है कि दूसरी स्त्री सुंदर दिखाई पड़े और सुंदर सिद्ध न हो। दूसरी स्त्री सुंदर सिद्ध हो सकती है। यही हमारा तर्क है।

अल्पबुद्धि का तर्क यही है कि कोई फिक्र नहीं, एक मकान सुख न दे पाया, तो दूसरा देगा। कोई फिक्र नहीं, एक पद पर शांति न मिली, तो और दूसरे पद पर मिलेगी। कोई फिक्र नहीं, छोटी तिजोड़ी भर गई पूरी, फिर भी मन न भरा; शायद बड़ी तिजोड़ी भर जाए, तो मन भर जाए।

अल्पबुद्धि का तर्क है कि वह एक अनुभव को जीवन की चिरस्थायी निधि नहीं बना पाता। वह अपने को धोखा दिए चला जाता है। वह कहता है, नहीं, कोई बात नहीं; यह अनुभव गलत हुआ, दूसरा अनुभव ठीक होगा, तीसरा अनुभव ठीक होगा, चौथा अनुभव ठीक होगा।

लेकिन इस जगत में एक अनुभव, उससे मिलते-जुलते सारे अनुभव की खबर दे जाता है। पर उसके लिए बहुत दूर तक देखने वाली दृष्टि, मेधा चाहिए। अल्पबुद्धि नहीं, गहरी दृष्टि चाहिए, महाबुद्धि चाहिए। तब एक अनुभव समस्त अनुभवों के लिए मार्ग बन जाता है, द्वार बन जाता है।

लेकिन बहुत कठिन है। अगर आपके हाथ में एक रुपया आया और आपके हाथ में कुछ न आया, तो आप यह मानने को कभी राजी न होंगे कि दूसरा आएगा और कुछ न आएगा, तीसरा आएगा और कुछ न आएगा। आपका मन धोखा दिए चला जाएगा। वह कहेगा, एक से नहीं मिला; तो वह कहेगा, दूसरा पाने की शीघ्रता करो। दूसरे से नहीं मिला, तो तीसरा पाने की शीघ्रता करो। बस, मन इतना ही कहेगा, और तेजी से दौड़ो, और तेजी से दौड़ो; कभी तो वह दिन आ जाएगा, जब उतने रुपए हाथ में होंगे, जब तृप्ति हो जाए।

लेकिन कभी लौटकर इतिहास में भी तो लोगों से पूछें कि वह तृप्ति कभी आई?

अशोक युद्ध पर गया था। अल्पबुद्धि आदमी नहीं था। कलिंग के युद्ध पर लड़ा। एक लाख आदमी मारे गए। अशोक के पहले भी सम्राट लड़े हैं, बाद में भी लड़ते रहे हैं, सदा लड़ते रहेंगे। लेकिन जो अशोक को दिखाई पड़ा, वह पहले के सम्राटों को भी कभी दिखाई नहीं पड़ा, बाद के सम्राटों को भी कभी दिखाई नहीं पड़ा।

अशोक कलिंग के युद्ध से वापस लौटा, जीतकर लौटा था, लेकिन उदास लौटा।

जीतकर दुनिया में बहुत कम लोग हैं, जो उदास लौटते हैं। जीतकर तो आदमी प्रसन्न होकर लौटता है, अल्पबुद्धि का लक्षण है वह। जब कोई जीतकर प्रसन्न होकर लौटे, तो समझना कि वह अल्पबुद्धि है। और जब कोई हारकर प्रसन्न लौट आए, तो समझना कि वह अल्पबुद्धि नहीं है। जीतकर कोई उदास लौटे, तो समझना कि वह अल्पबुद्धि नहीं है। और जीतकर कोई हंसता हुआ लौटे, तो समझना कि वह अल्पबुद्धि है।

अशोक उदास लौट आया। उसे नाम ही उसके माता-पिता ने अशोक इसलिए दिया था कि वह कभी उदास नहीं होता था; सदा प्रफुल्लित था, चियरफुल था। उसे नाम ही इसलिए दिया था कि वह सदा आनंदित और प्रफुल्लित रहता था। लेकिन इतने बड़े राज्य को जीतकर लौटा है, कलिंग की विजय करके लौटा है, और उदास लौटा आया है! चिंता फैल गई है। उसके मित्रों ने पूछा, इतने उदास हो जीतकर! हार जाते तो क्या होता? स्वभावतः, अल्पबुद्धि के लिए यह सवाल उठा होगा। जीतकर इतने उदास हो, हार जाते तो क्या होता!

अशोक ने कहा, युद्ध अब असंभव है, एक अनुभव काफी सिद्ध हुआ। अब नहीं युद्ध कर सकूंगा, अब नहीं जीतने जा सकूंगा। क्योंकि कितनी कामना की थी कि कलिंग को जीत लूंगा, तो इतना आनंद मिलेगा। लेकिन कलिंग हाथ में आ गया, आनंद तो हाथ में नहीं आया। हालांकि मेरा मन फिर धोखा दे रहा है कि अभी और भी जीतने को जगह पड़ी है, उनको भी जीत लो। लेकिन इस मन की अब दुबारा नहीं मानूंगा। मानकर देख लिया एक बार; एक लाख आदमियों की लाशें बिछा दीं। सिर्फ खून बहा; हाथ में खून के दाग लगे। करुण चीत्कारें सुनाई पड़ीं; रोना; और न मालूम कितने घरों के दीए बुझ गए। और इस मन ने मुझे कहा था, आनंद मिलेगा; वह मैं भीतर खोज रहा हूं, वह मुझे कहीं मिला

नहीं। लाखों लोग मर गए, लाखों परिवार उजड़ गए, और जिस सुख के लिए इस मन ने मुझे कहा था, उसकी रेखा भी मुझे दिखाई नहीं पड़ती। युद्ध समाप्त हो गया; मेरे लिए अब कोई युद्ध नहीं है।

और उसी दिन से अशोक ने भिक्षु की तरह रहना शुरू कर दिया। उसने कहा कि जब युद्ध मेरे लिए नहीं है, तो अब सम्राट होने का कोई अर्थ नहीं रहा। वह तो युद्ध के साथ जुड़ा हुआ भाव था--सम्राट होने का।

एच.जी.वेल्स ने विश्व इतिहास में लिखा है कि दुनिया में बहुत सम्राट हुए, लेकिन अशोक जैसा चमकता हुआ तारा विश्व के इतिहास में दूसरा नहीं है। कारण है उसका। महाबुद्धि है। और उसके महाबुद्धि होने की बात क्या है? राज क्या है? राज यह है कि युद्ध के एक अनुभव ने उसे मन का पूरा रहस्य समझा दिया।

आपने कितनी बार क्रोध किया है, लेकिन क्रोध का रहस्य आप समझ पाए? कितनी बार कामवासना में उतरे हैं, कामवासना का रहस्य समझ पाए? कितनी बार प्रेम किया है, प्रेम का रहस्य समझ पाए? कितनी बार घृणा की है, घृणा का रहस्य समझ पाए?

नहीं, रोज वही करते रहे हैं, लेकिन हाथ में कोई भी निष्पत्ति, कोई भी कनक्लूजन नहीं है। हाथ खाली का खाली है, और कल आप फिर बच्चे जैसा ही व्यवहार करेंगे। अल्पबुद्धि है चित्त।

कृष्ण कहते हैं, अल्पबुद्धि लोग सुख की मांग करते हैं देवताओं से। देवताओं से ही की जा सकती है मांग सुख की। सुख भी उन्हें मिल जाते हैं, लेकिन क्षणभंगुर सिद्ध होते हैं। हां, जो मेरे पास आता है, परम ऊर्जा के द्वार पर जो आता है, वह अनंत आनंद का मालिक हो जाता है।

अगर प्रभु के द्वार पर ही जाना हो, तो क्षुद्र वासना लेकर मत जाना। वासना पूरी भी हो जाए, तो भी कुछ हाथ नहीं लगने वाला है। प्रभु के द्वार पर तो खाली होकर जाना, बिना कोई वासना लिए। प्रभु से तो यही कहते जाना कि जो तूने दिया है, वह जरूरत से ज्यादा है।

सुना है मैंने कि एक भिखारी एक वृद्ध महिला के सामने हाथ फैलाकर भीख मांग रहा है। लंगड़ा है, घसिट रहा है। उस वृद्ध महिला को बहुत दया आ गई है और उसने कहा कि दुख होता है तुम्हें देखकर; पीड़ा होती है तुम्हें देखकर। परमात्मा न करे, कोई लंगड़ा हो। लेकिन फिर भी मैं तुमसे कहती हूं कि लंगड़े ही हो न, परमात्मा को धन्यवाद दो, क्योंकि अंधे होते तो और मुसीबत होती।

उस आदमी ने कहा कि आप ठीक कहती हैं। जब मैं अंधा होता हूं, तो लोग नकली सिक्का मेरे हाथ में पकड़ा देते हैं!

लंगड़ा होना भी उसके लिए एक काम था, अंधा होना भी एक काम था। उसने कहा, आप बिलकुल ठीक कहती हैं। अंधे होने में बड़ी मुसीबत होती है, लोग नकली सिक्के पकड़ा देते हैं। इसीलिए तो मैंने अंधा होना बिलकुल बंद कर दिया। अब मैं लंगड़े होने से ही काम चलाता हूं।

उस वृद्ध स्त्री को खयाल भी न रहा होगा, कल्पना भी न रही होगी। उसने तो कहा था इस खयाल से कि वह आदमी शायद अपने लंगड़ेपन में भी प्रभु को धन्यवाद दे पाए। लंगड़ा भी प्रभु को धन्यवाद दे सकता है। काश, जो उसे मिला है, वह दिखाई पड़ जाए।

लेकिन हम सब उस भिखारी जैसे ही हैं। जो हमें मिला है, उसके लिए हम धन्यवाद नहीं दे पाते। जो नहीं मिला है, उसकी शिकायत कर पाते हैं। उस आदमी ने कहा कि ठीक कहती है तू; क्योंकि जब मैं अंधा होता हूं, तो लोग नकली सिक्के हाथ में रख देते हैं!

नकली भी कोई हाथ में रखता है, इसका भी धन्यवाद हो सकता है। पर उसके लिए बड़ी दूर-दृष्टि, उसके लिए बड़ी महाबुद्धि चाहिए। इतना भी क्या कम है कि किसी ने नकली सिक्का भी आपके हाथ में रखा! यह भी कहां जरूरी था?

इसकी भी शिकायत करने कहां जा सकते हैं? उसने हाथ पर खाली हाथ भी रखा, तो भी क्या कम है! क्योंकि वह न रखता तो कोई सवाल तो न था।

लेकिन जिंदगी हमारी ऐसी ही है। जो हमें मिला है, उसका हमें कोई भी स्मरण नहीं है। जो हमें नहीं मिला है, उसका हमें बहुत तीव्र बोध है। वह कांटे की तरह छाती में चुभता रहता है। धार्मिक आदमी ऐसी प्रार्थना करने नहीं जाता मंदिर में, जिसमें कुछ मांगता हो। इस बात का धन्यवाद देने जाता है कि जो तूने दिया है, वह मेरी सामर्थ्य से भी ज्यादा है।

और जो उसने दिया है, उसका हमने उपयोग क्या किया है? कभी आपने सोचा? आपको आंखें दी हैं, आंखों से आपने ऐसा क्या देखा है, जो आप न देखते तो कुछ हर्जा हो जाता? कभी इस पर सोचा है! परमात्मा ने आपको आंखें दी हैं। आपने इन आंखों से ऐसा क्या देखा है, जो न देखते तो कुछ हर्जा हो जाता? शायद ही आपको याद आए। उसने आपको कान दिए हैं। ऐसा क्या सुना है, जो न सुनते तो कोई हर्जा हो जाता? उसने आपको हाथ दिए हैं। ऐसा आपने क्या स्पर्श किया है, जो स्पर्श न किया होता तो कुछ आप खो देते? उसने आपको पैर दिए हैं। आपने ऐसी कौन सी तीर्थयात्रा की है, जो कि अगर पैर न होते और आप न कर पाते, तो प्राणों में कसक रह जाती?

नहीं, पैर किसी तीर्थ तक नहीं पहुंचे, आंखें किसी दृश्य को नहीं देख पाईं, कान ने कोई अमृत नहीं सुना। और ऐसा नहीं है कि अमृत चारों तरफ मौजूद नहीं है, और ऐसा भी नहीं है कि तीर्थ बहुत दूर है, और ऐसा भी नहीं है कि वह दृश्य दिखाई न पड़ जाए, जिसे देख लेने पर आंखें सार्थक हो जाती हैं; वह भी निकट है।

पर जो हमें मिला है, हम उसकी तरफ ध्यान ही नहीं देते, उपयोग की तो बात दूर है। उपयोग का तो कोई सवाल नहीं है। हम उस पर ध्यान ही नहीं देते। हम उसे मांगते चले जाते हैं, जो नहीं मिला है। हमारी सारी प्रार्थनाएं, जो नहीं मिला है, उसकी मांग है। पूरी हो जाएंगी वे मांग, कृष्ण कहते हैं, लेकिन फिर भी वह अल्पबुद्धि है आदमी, क्योंकि थोड़ी ही देर में वह फिर पाएगा कि वे सब सुख जो पाए थे, खो गए।

प्रार्थना तो वही सार्थक है, जो वहां पहुंचा दे, जिसे मिलने पर फिर खोना नहीं है; जिसके मिलन में फिर विछोह नहीं है। पर वह देवताओं की पूजा से नहीं, वह तो परम सत्ता की तरफ समर्पण से संभव है।

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम्।। 24 ।।
नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः।
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम्।। 25 ।।
बुद्धिहीन पुरुष मेरे अनुत्तम अर्थात जिससे उत्तम और कुछ भी नहीं है, ऐसे अविनाशी परम भाव को अर्थात अजन्मा अविनाशी हुआ भी अपनी माया से प्रकट होता हूं, ऐसे प्रभाव को तत्व से न जानते हुए मन-इंद्रियों से परे मुझ सच्चिदानंदघन परमात्मा को मनुष्य की भांति जन्म कर व्यक्तिभाव को प्राप्त हुआ मानते हैं।

तथा अपनी योगमाया से छिपा हुआ मैं सबके प्रत्यक्ष नहीं होता हूं। इसलिए ये अज्ञानी मनुष्य मुझ जन्मरहित अविनाशी परमात्मा को तत्व से नहीं जानते हैं।

दो बातें इस सूत्र में कृष्ण कह रहे हैं। एक, साकार शरीर में मैं खड़ा हूं, आकार लिया है। जो नहीं जानते हैं, वे सोचते हैं, मेरा आकार ही मैं हूं। वे मेरे भीतर छिपे निराकार को नहीं देख पाते हैं। रूप लिया है मैंने। जिनके पास देखने की आंखें नहीं हैं, सोचने के लिए मेधा नहीं है, वे मेरे रूप को ही देख पाते हैं। उस अरूप को, जो भीतर छिपा है, उससे अपरिचित रह जाते हैं। मेरा वह सच्चिदानंद रूप है जो, मेरा वह जो सच्चिदानंद स्वभाव है, वह उनकी आंखों से ओझल रह जाता है।

इसे थोड़ा समझ लेना जरूरी है।

पहली बात, परमात्मा जब भी प्रकट होगा, तब रूप में प्रकट होगा, आकार में प्रकट होगा। प्रकट होने का अर्थ है, रूपायित होना, टु बी इन दि फार्म। प्रकट होने का अर्थ ही होता है, रूप लेना। प्रकट होने का अर्थ ही होता है, आकार लेना। प्रकट होने का अर्थ होता है, सीमा में खड़े होना। प्रकट होने का अर्थ है, पृथ्वी पर, शरीर में, देह में अभिव्यक्त होना। लेकिन हमें बड़ी कठिनाई होती है।

यह बल्ब है बिजली का, जलता है। बिजली प्रकट नहीं हो सकती है बिना इस बल्ब के। बल्ब का तो रूप होगा, आकार होगा; बिजली का कोई रूप और आकार नहीं है। वह आदमी नासमझ है, जो बल्ब को बिजली समझ ले। लेकिन वह नासमझ भी तर्क दे सकता है। वह डंडा उठाकर टयूब के ऊपर पटक दे, तो टयूब फूट जाए और बिजली बंद हो जाए। तो वह कहे कि देखो, मैंने कहा था न कि यह बल्ब ही बिजली है। मारा डंडा, टूट गया बल्ब; नहीं बची बिजली।

फिर भी हम जानते हैं कि बल्ब बिजली नहीं है। बल्ब पूरी तरह बना रहे और बिजली जा सकती है; और बल्ब पूरी तरह मिट जाए, तो भी बिजली रहती है। बल्ब केवल अभिव्यक्त होने की व्यवस्था है, मैनिफेस्टेशन है। जब भी किसी शक्ति को प्रकट होना हो, तो रूप और आकार के अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं है।

कृष्ण कहते हैं, जो नासमझ हैं, वे मेरी देह को ही समझ लेते हैं कि यह मैं हूं।

इन नासमझों में दो तरह के लोग हैं। एक तो वे नासमझ, जो कृष्ण को प्रेम करने लगेंगे, लेकिन वे कृष्ण की देह को ही प्रेम करते चले जाएंगे। वे कृष्ण को, वह जो अरूपी भीतर छिपा है, उसको नहीं देख पाएंगे। और एक वे नासमझ, जो दुश्मन हो जाएंगे। वे कहते रहेंगे कि यह आदमी तो शरीरधारी है, यह भगवान कैसे हो सकता है? यह आदमी उठता है, बैठता है, सोता है, भूख लगती है, खाना खाता है। यह भगवान कैसे हो सकता है?

उन दोनों की बुद्धि में बहुत भेद नहीं है। जो कृष्ण को प्रेम करेंगे, वे इस शरीर को ही भगवान मान लेंगे। फिर वे कृष्ण की मूर्ति बना लेंगे, फिर वे उस कृष्ण की मूर्ति को सुबह दातुन कराएंगे, पानी पिलाएंगे, स्नान करवाएंगे, फिर वे उस कृष्ण की मूर्ति को शयन करवाएंगे; दोपहर को द्वार बंद करके बिस्तर पर लिटाएंगे; फिर उस मूर्ति को कपड़े पहनाएंगे।

फिर यह सब चलेगा। इस बात को भूल जाएंगे कि जिस कृष्ण का हमने आविर्भाव देखा था, वह यह मूर्ति नहीं है। वह आविर्भाव तो अमूर्त का था; इस मूर्ति से हुआ था, इस रूप में हुआ था। इस मूर्ति का उपयोग किया जा सकता है। इस मूर्ति के प्रति श्रद्धा भी प्रकट की जा सकती है। लेकिन इसी मूर्ति के आस-पास जो घूमने लगे, और अमूर्त को भूल जाए, वह नासमझ है।

एक तो नासमझी यह है, जो प्रेमी कर लेता है। दूसरी नासमझी यह है कि लोग पूछेंगे कि भगवान कैसे हैं! धूप पड़ती है, तो पसीना आता है; दौड़ें, तो सांस चढ़ जाती है; थक जाते हैं, तो इन्हें भी नींद आती है। हम आदमियों जैसे ही हैं। इसलिए हम कैसे स्वीकार करें कि ये भगवान हैं? वह एक दूसरा वर्ग है जो कहेगा, हम स्वीकार नहीं कर सकते। उसकी भी नासमझी वही है, जो उस भक्त की है, जो आकार में देख रहा है। वह भी आकार में देख रहा है।

कृष्ण कहते हैं, निराकार को जो देख पाए, वही बुद्धिमान है। असल में बुद्धि की परीक्षा ही यही है कि वह निराकार को देख पाए। आकार को तो निर्बुद्धि भी देख पाता है। आकार को देखने में कोई बुद्धिमत्ता नहीं है। आकार तो सभी को दिखाई पड़ता है। वह जो नहीं दिखाई पड़ता है, वह जो पीछे छिपा खड़ा है, उसे जो देख पाए, उसे जो पहचान पाए, वही बुद्धिमान है। लेकिन कृष्ण में ही कोई निराकार को देख लेगा, यह संभव नहीं है, जब तक वह सब जगह निराकार को देखना शुरू न कर दे।

जब आप एक वृक्ष को देखते हैं, तो आपको आकार ही दिखाई पड़ता है। आपको वह जीवन ऊर्जा, जो वृक्ष के भीतर बहती है और आकार लेती है, वह आपको दिखाई नहीं पड़ती। जब एक फूल खिलता है, तो आकार ही दिखाई पड़ता है। उस फूल के भीतर जो ऊर्जा खिलती है और पंखुड़ियों में फैलती है, और जिस शक्ति के कारण पंखुड़ियां बंद थीं और खुल जाती हैं, उस शक्ति को आप नहीं देख पाते। जब एक बीज टूटता है, तो आप बीज को देखते हैं; लेकिन जो

उसके भीतर भरा था और टूटना चाहता था, और तोड़ दिया बीज को और बाहर आया, वह आपको नहीं दिखाई पड़ता।

हम देखते ही आकार को हैं सब तरफ। जब हम सब तरफ आकार को देखते हैं, तो यह संभव नहीं है कि विशेष रूप से कृष्ण या क्राइस्ट या मोहम्मद के संबंध में हम आकार को न देखें और निराकार को देख लें। आकार को देखने की हमारी जड़बद्ध आदत है। हम जो चौबीस घंटे देखते हैं, वही हम कृष्ण में भी देख पाएंगे। हम दूसरी बात न देख पाएंगे।

सुना है मैंने, एक जहाज पर, पानी के जहाज पर बहुत-से यात्री हैं और एक जादूगर भी है। और एक तोता भी है एक आदमी के पास। वह जादूगर समय काटने के लिए जहाज के यात्रियों को बिठाकर कुछ ट्रिक्स, कुछ अपना काम दिखाता है, कुछ हाथ की सफाइयां दिखाता है। लेकिन वह तोता भी उसी जादूगर के गांव का है और जादूगर के घर के सामने का ही है। जब भी वह जादूगर कुछ दिखाता है, तो वह तोता जोर से चिल्लाता है, फोनी फोनी; सब झूठ है, सब झूठ है; सब तरकीब है, सब हाथ की सफाई है। जब भी जादूगर कभी कुछ दिखाता है, वह तोता जरूर चिल्लाता है कि सब हाथ की सफाई है, सब धोखा है। सावधान!

फिर जहाज डूब जाता है। एक बड़ा तूफान आया और जहाज डूब गया। संयोग की बात, एक लकड़ी के पटिए को जादूगर पकड़कर अपने को बचाने की कोशिश करता है। वह तोता भी उसी लकड़ी के पटिए पर आकर बैठ गया है। अब वे दोनों ही समुद्र में चलते हैं। दो दिन तक जादूगर भी गुस्से में उससे नहीं बोला, क्योंकि वह उससे दुश्मनी कर रहा था रोज। और तोता भी दो दिन तक नहीं बोला। क्योंकि उसकी भी हिम्मत न पड़ी कहने की। लेकिन दो दिन बाद उसने कहा जादूगर से, अच्छी बात है। माना कि तुम बड़े बुद्धिमान हो। लेकिन जरा यह तो बताओ कि उस जहाज का तुमने क्या किया?

वह समझा कि कोई ट्रिक की है; इसी की शरारत है। उस तोते ने समझा कि इसी की कोई शरारत है, हरकत है। लेकिन दो दिन तक उसने देखा कि ऐसी कैसी ट्रिक कि दो दिन हो गए, अभी तक वह जहाज नहीं लौटा! उसने कहा कि माना कि तुम बड़े बुद्धिमान हो, लेकिन कृपा करके अब इतना तो बता दो कि उस जहाज का क्या किया?

चौबीस घंटे, वर्षों से वह तोता जादूगर के घर के सामने उसके हाथ की सफाइयां देख रहा था। उसके सोचने का एक ढंग बना। फिर जहाज पर भी वह हाथ की सफाइयां देख रहा था। उसके सोचने का एक ढंग निश्चित हो गया था। वह यह सोच ही नहीं पाया तोता कि जहाज डूब गया। उसने समझा कि इसी की शरारत है। इसी ने कोई ट्रिक, कोई हाथ की सफाई दिखलाई है। इसलिए दो दिन तक वह चुप रहा कि कब तक यह हाथ की सफाई दिखलाता रहेगा। आखिर थोड़ी-बहुत देर में जहाज प्रकट होगा, तब मैं चिल्लाऊंगा, फोनी! फोनी! सब झूठा है। लेकिन वह मौका आया नहीं दो दिन में।

हम सब के भी मन की आदतें हैं, सोचने के ढंग हैं। बंध जाते हैं। जब पत्थर में नहीं दिखता कुछ, तो मूर्ति में नहीं दिखेगा। पत्थर में दिखे, तो मूर्ति में भी दिख जाएगा। कोई कहता हो कि पत्थर में तो मुझे पत्थर ही दिखता है और मूर्ति में भगवान दिखते हैं, तो झूठ कहता है। कोई अगर कहता हो कि मेरे बेटे में तो मुझे शरीर ही दिखता है, मेरी पत्नी में मुझे शरीर दिखता है, मेरे पिता में मुझे शरीर दिखता है और राम में मुझे भगवान दिखते हैं, तो गलत कहता है। यह नहीं हो सकता। यह संभव नहीं है। क्योंकि एक बार राम के शरीर में अगर निराकार दिखाई पड़ जाए, तो सभी शरीरों में दिखाई पड़ना शुरू हो जाएगा।

दिखाई पड़ जाए, तो बात खुल गई। वह हमारा पुराना तर्क टूट गया। वह हमारे पुराने देखने का ढांचा, व्यवस्था मिट गई। अब हमने नए ढंग से चीजों को देखा। अब हमें आकार दिखाई पड़ेगा, लेकिन आकार के पीछे निराकार सदा ही छिपा हुआ मालूम पड़ेगा। उसका एहसास होगा, उसकी एक छाया हर आकार का पीछा करेगी।

किसी व्यक्ति को हम गले मिलाएं, हड्डियां ही गले मिलेंगी, लेकिन फिर हम भीतर से जानेंगे कि कुछ और निराकार भी मिल रहा है। तब वह आत्मा का मिलन बन जाएगा।

कृष्ण कहते हैं, बुद्धिहीन जो हैं, वे मेरे शरीर को ही देख पाते, रूप को ही देख पाते, आकार को ही देख पाते। वे मेरी निराकार विभूति का अनुभव नहीं कर पाते। और उस निराकार में ही मैं छिपा हूं; वही मैं हूं।

अब यह कठिनाई है। अभिव्यक्त होने की कठिनाइयां हैं। सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि अभिव्यक्त होते ही आकार लेना पड़ेगा। आकार के बिना कोई अभिव्यक्ति संभव नहीं है।

अगर मुझे बोलना है, तो शब्द का उपयोग करना पड़ेगा। लेकिन शब्द का उपयोग करते ही डर यह है कि अर्थ आपके पास पहुंचे ही नहीं, सिर्फ शब्द पहुंच जाए। जैसा कि रोज होता है; शब्द ही पहुंच जाते हैं, अर्थ नहीं पहुंचता। अर्थ तो पीछे पड़ा रह जाता है। अर्थ निराकार है; शब्द साकार है।

जब मैं एक शब्द बोलता हूं, आपके पास शब्द जाकर आपकी मेमोरी में, आपकी स्मृति के बैंक में जमा हो जाता है। आप समझे कि समझ गए; शब्द पास आ गया; अब आप उसका उपयोग कर सकते हैं। कोई चाहे तो आप बता सकते हैं कि मैं क्या-क्या बोला।

आप बता भी दें कि मैं क्या-क्या बोला, तब भी जरूरी नहीं है कि आप वह समझ गए हों, जो मैंने बोला है। क्योंकि वह अर्थ है, वह पीछे छिपा पड़ा है। उस अर्थ को जानने के लिए निराकार की पकड़ चाहिए।

अब बोलना है, तो शब्द का उपयोग करना पड़ेगा; और जो बोलना है, वह निःशब्द है। कठिनाई है, अड़चन है, मुसीबत है। लेकिन ऐसा तथ्य है; जीवन का ऐसा तथ्य है। यहां सभी चीजें जब भी प्रकट होंगी, रूप लेंगी। रूप लेते ही रूप दिखाई पड़ेगा, अरूप छिप जाएगा। वह अरूप नहीं दिखाई पड़े, तो हमारे जीवन में भागवत चैतन्य का कोई संस्पर्श नहीं हो पाता है।

कृष्ण कहते हैं, मुझ सच्चिदानंद को जानना हो, तो रूप से आंखें उठानी पड़ें, आकार से ऊपर उठना पड़े, शरीर के पार झांकने की कोशिश करनी पड़े। यह कहीं से भी शुरू की जा सकती है। जरूरी नहीं है कि कोई कृष्ण के पास ही जाए, क्योंकि अब कैसे जाएंगे कृष्ण के पास! कहीं से भी शुरू कर सकते हैं। एक गेस्टाल्ट है मस्तिष्क में। हम जिस ढंग की देखने की आदत से बंध गए हैं, उसी तरह देखे चले जाते हैं। हमें दूसरी चीज दिखाई नहीं पड़ती।

हम सब कंडीशंड हैं। एक मजबूत यंत्र की तरह हमारा मन काम करता है। कृष्ण इस यंत्र को तोड़ने के लिए कह रहे हैं। वे कह रहे हैं कि कोई भी प्रेमी, कोई भी भक्त, जो मुझे जानना चाहता हो, उसे मेरे सच्चिदानंद रूप की, अरूप की, निराकार की दिशा में खोज करनी चाहिए। मेरे रूप पर मत रुक जाना। मेरे शब्द पर मत रुक जाना। मेरे शरीर पर मत ठहर जाना। थोड़ा हटना, ट्रांसेंड करना, पार, थोड़े ऊपर उठकर जाने की कोशिश करना।

बुद्ध मर रहे हैं; आखिरी क्षण है। कोई उनसे पूछता है कि आप मरने के बाद कहां जाएंगे? तो बुद्ध कहते हैं, तो फिर तुम मुझे समझ नहीं पाए। क्योंकि मैं जीते जी ही कहीं नहीं गया। निश्चित ही, कठिनाई हो गई होगी पूछने वाले को। उसने कहा, कैसी आप बात करते हैं! कई गांव तो मैं आपके पीछे गया हूं! कई यात्राओं पर तो मैं सम्मिलित रहा हूं। बुद्ध ने कहा, तू भला गया हो, लेकिन मैं तुझसे कहता हूं कि मैं अपने जीवन में कहीं नहीं गया। यात्रा मैंने कभी की ही नहीं।

मजाक समझी होगी, कि बुद्ध मजाक कर रहे हैं। उनके चेहरे की तरफ देखा होगा। लेकिन वे मजाक नहीं कर रहे हैं। बुद्ध ने कहा, मैं हंसता नहीं। मजाक नहीं करता। मैं अपने जीवन में कहीं गया नहीं। और जो गया, वह मैं नहीं हूं। यह शरीर चलता था; तूने इसी को देखा है। इसके भीतर एक अचल भी बैठा हुआ है; जो बिलकुल नहीं चलता, वह तूने नहीं देखा है।

जापान में एक फकीर हुआ, रिंझाई। उसने एक दिन सुबह--बुद्ध का भक्त है, रोज बुद्ध की प्रार्थना करता है, पूजा करता है, फूल चढ़ाता है, मूर्ति के सामने सिर टेकता है--एक दिन सुबह अपने भिक्षुओं को इकट्ठा करके कहा कि मैं तुमसे कहता हूं कि यह बुद्ध नाम का आदमी कभी हुआ ही नहीं। चौंके वे। समझे कि कुछ मस्तिष्क में खराबी तो नहीं

आ गई! तीस साल से देखते हैं इस आदमी को बुद्ध के चरणों में सिर रखते; आज अचानक इसको क्या हो गया! उन्होंने कहा, क्या कहते हैं आप?

रिंझाई ने कहा, बुद्ध नाम का आदमी न कभी हुआ, न इस जमीन पर कभी चला, न कभी बोला। ये सब शास्त्र झूठे हैं। उन्होंने कहा, हमें थोड़ा समझाएं, अन्यथा हम मुश्किल में पड़ गए हैं। रिंझाई ने कहा कि मैं तुमसे कहता हूं, मैं भी कभी नहीं हुआ। मैं भी कभी नहीं बोला। मैं भी कभी नहीं चला। ये सब बातें झूठी हैं। तब उन्हें थोड़ा-सा भरोसा आया कि वह आदमी क्या कह रहा है। तो उन्होंने पूछा कि आप कहना क्या चाहते हैं?

रिंझाई ने कहा कि आज मुझे पता चला कि चलना केवल शरीर का है, बोलना केवल शरीर का है। भूख, प्यास, नींद शरीर की है। वह जो भीतर है, उसे कभी भूख नहीं लगती, नींद नहीं आती। वह कभी चलता नहीं, बैठता नहीं, उठता नहीं। वह कभी जन्म नहीं लेता, वह कभी मरता नहीं। वह इन सारी घटनाओं के पार है। ये सारी घटनाएं आकार के भीतर हैं और वह निराकार है।

दूसरे दिन सुबह वह फिर बुद्ध के चरणों में सिर रखे पड़ा था। तो उन भिक्षुओं ने पूछा कि अब आप यह क्या कर रहे हैं? जो कभी हुआ ही नहीं, उसके चरणों में सिर क्यों रखे हुए हैं? रिंझाई ने कहा कि कहां का सिर? कौन रखे हुए है? वह भी नहीं हुआ कभी, जो सामने है; और यह जो सामने पड़ा हुआ है, यह भी कभी नहीं हुआ।

अरूप की खोज करनी पड़ेगी। और सबसे सरल है कि अपने भीतर शुरू करें। दूसरे के पास जाकर अरूप को खोजना बहुत कठिन होगा। अपने भीतर आसानी से खोज हो सकती है। कभी आंख बंद करके भीतर देखने की कोशिश किया करें कि क्या मैं शरीर के रूप में बंधा हूं? कभी आंख बंद करके कोशिश करें कि मेरी सीमा क्या है? और आप बहुत हैरान हो जाएंगे। अगर आप तीन महीने एक छोटा-सा प्रयोग करें, तो यह सूत्र आपको खुल जाएगा। तीन महीने आधा घंटा रोज आंख बंद करके यही केवल सोचें कि मेरी सीमा कहां है?

आज सोचेंगे तो आपको शरीर ही अपनी सीमा मालूम पड़ेगी। लेकिन पंद्रह दिन से ज्यादा नहीं लगेगा कि आपको एक अदभुत अनुभव होना शुरू हो जाएगा। कभी शरीर बहुत बड़ा होता हुआ मालूम पड़ेगा, कभी बहुत छोटा होता हुआ मालूम पड़ेगा, सिर्फ पंद्रह दिन के भीतर। कभी लगेगा, शरीर पहाड़ जैसा हो गया और सीमा बड़ी हो गई। और कभी लगेगा, शरीर चींटी जैसा हो गया, सीमा बड़ी छोटी हो गई। घबड़ा मत जाना, क्योंकि बहुत घबड़ाहट का अनुभव होता है।

जब पहली दफा सीमा का भाव टूटता है, तो फ्लक्चुएशन होता है। कभी लगता है, बहुत बड़ा हो गया; कभी लगता है, बिलकुल छोटा हो गया। अगर आप पीछे पड़े ही रहे, तो एक महीना पूरा होते-होते अचानक कभी-कभी ऐसे क्षण आ जाएंगे, जब लगेगा कि शरीर है ही नहीं--न छोटा, न बड़ा। और तब आपको पहली दफा पता चलेगा कि मेरी कोई सीमा नहीं। मैं हूं, और सीमा कोई भी नहीं है। अपने ही भीतर अगर तीन महीने इस प्रयोग को करें, तो आप असीम की और निराकार की छोटी-सी झलक को पा लेंगे।

और जिस दिन आप अपने भीतर जान लेंगे, उस दिन आप दूसरे के भीतर भी जान लेंगे। क्योंकि हम दूसरे के भीतर जो भी जानते हैं, वह अनुमान है, इनफरेंस है। ज्ञान तो अपने भीतर होता है, दूसरे की तरफ तो अनुमान होता है।

आपको पता है कि जब आप क्रोध में होते हैं, तो आंखें लाल हो जाती हैं, मुट्ठी भिंच जाती है। तो दूसरा आदमी अगर क्रोध में न भी हो--जैसा कि फिल्म का एक्टर या नाटक का पात्र क्रोध में नहीं होता--आंखें लाल कर लेता है, मुट्ठी भींच लेता है; आप समझ जाते हैं कि यह क्रोध में है। भीतर क्रोध बिलकुल नहीं होता।

क्योंकि आपको पता है कि जब आप मुट्ठी बांधते हैं और आंखें मींचते हैं, और दांत दबाते हैं, और लहू उतर आता है, चेहरा लाल हो जाता है, तब आप जानते हैं कि आप क्रोध में हैं। फिल्म का अभिनेता या नाटक का पात्र वही करके दिखला रहा है; आप समझ जाते हैं कि वह क्रोध में है। क्रोध आपका अनुमान है। वह है नहीं क्रोध में। लेकिन जो-जो घटना क्रोध में घटती है, वह घट रही है; आप अनुमान कर लेते हैं।

दूसरे के बाबत हम अनुमान करते हैं। ज्ञान तो अपने ही बाबत होता है।

अपने भीतर निराकार की थोड़ी-सी खोज हो...। कई तरह से हो सकती है। जैसे मैंने कहा कि शरीर की सीमा का चिंतन करें, मनन करें, मेडिटेट आन इट; ध्यान करें। तीन महीने में आपकी सीमा खो जाएगी और आपके असीम का अनुभव हो जाएगा।

अगर इसमें कठिनाई मालूम पड़े, तो शरीर की उम्र, अपनी उम्र का भीतर अनुभव करें कि मेरी उम्र कितनी है? तो अभी आज आप बैठेंगे, तो पता लगेगा कि चालीस साल है, तो चालीस साल है। लेकिन यह असली पता नहीं है। यह तो सिर्फ आदत है रोज की कि आप चालीस साल के हैं। पंद्रह दिन बैठकर देखने पर आप डांवाडोल होने लगेंगे। कभी लगेगा कि छोटा बच्चा हो गया, और कभी लगेगा कि बिलकुल बूढ़ा हो गया, यह फ्लक्चुएशन शुरू हो जाएगा।

एक महीना पूरा होते-होते आपके भीतर यह सफाई हो जाएगी कि न मैं बच्चा हूं, न मैं बूढ़ा हूं, न मैं जवान हूं। तीन महीने प्रयोग करने पर आप पाएंगे कि आप अजन्मा हैं; आपका कभी कोई जन्म नहीं हुआ। और आप अमृत हैं; आपकी कोई मृत्यु नहीं हो सकती।

कहीं से भी शुरू करें, किसी भी आकार से शुरू करें, और धीरे-धीरे आप निराकार में उतर जाएंगे। ध्यान का अर्थ है, आकार से निराकार की तरफ यात्रा।

कृष्ण वही कह रहे हैं। ज्ञान का अर्थ है, आकार से निराकार की तरफ यात्रा।

जो बुद्धिहीन है, वह आकार में अटक जाता है। जो बुद्धिमान है, वह निराकार में डुबकी लगा लेता है। और एक बार निराकार की झलक मिल जाए, तो इस जगत में सब आकार मिट जाते हैं और निराकार ही रह जाता है। और जहां निराकार है, वहां आनंद है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, वह मेरा सच्चिदानंद स्वरूप है, वहां सत, चित, आनंद, तीनों का वास है।

लेकिन निराकार में है। आकार में अगर खोजने जाएंगे, तो आकार में सत नहीं मिलेगा, मिलेगा असत।

सत का अर्थ होता है, एक्झिस्टेंस, अस्तित्व। असत का अर्थ होता है, आभास; दिखता है कि है, और नहीं है। अगर आकार में खोजने जाएंगे, तो चित नहीं मिलेगा। चित का अर्थ होता है, कांशसनेस, चैतन्य। आकार में खोजने जाएंगे, तो जड़ मिलेगा, चैतन्य नहीं मिलेगा। और तीसरा तत्व है, आनंद। आकार में खोजने जाएंगे, तो सुख मिलेगा, दुख मिलेगा, आनंद नहीं मिलेगा। आनंद तो निराकार में मिलेगा।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, मेरे सच्चिदानंद स्वरूप को वे बुद्धिमान जान पाते हैं, जो मेरे आकार और आकृति में नहीं उलझ जाते। जो पेनिट्रेट कर जाते हैं, जो पार चले जाते हैं, गहरे उतर जाते हैं और निराकार को खोज लेते हैं।

यह निराकार हमारे चारों तरफ सब तरह से मौजूद है; यहीं मौजूद है। लेकिन हम सबको आकार दिखाई पड़ते हैं। हमारी सिर्फ आदत है देखने की।

इसे ऐसा समझें कि एक आदमी अपने घर के भीतर बैठा है। कभी घर के बाहर नहीं गया। खिड़की से आकाश को देखता है। तो उसे आकाश निराकार दिखाई पड़ेगा कि साकार?

उसे साकार दिखाई पड़ेगा। क्योंकि खिड़की का ढांचा आकाश पर बैठ जाएगा। वह जो खिड़की का पैटर्न है, वह जो खिड़की का चौखटा है, आकाश उतना ही मालूम पड़ेगा, जितना खिड़की का चौखटा है। और अगर वह आदमी अपने घर के बाहर कभी न गया हो, तो क्या वह सोच सकेगा कि यह जो चौखट दिखाई पड़ रही है, मेरे मकान की है, आकाश की नहीं! कभी नहीं सोच सकेगा। इसके लिए बाहर जाना जरूरी है।

हम अपने मकान के बाहर कभी नहीं गए। शरीर के भीतर हैं। और हर चीज पर चौखट है। हमारी आंख की चौखट चीजों को आकार दे देती है। कान की चौखट चीजों को आकार दे देती है। हमारी इंद्रियां आकार का निर्माण करती हैं। और हम अपने शरीर के बाहर कभी नहीं गए। शरीर के भीतर से ही सब चीजें देखते हैं। और इंद्रियां आकार देती हैं हरेक चीज को। एक दफा हम शरीर के बाहर जाकर देख लें, तो भी काम हो जाए।

तो आपको एक दूसरा प्रयोग भी कहता हूं। वह भी अगर संभव हो सके, तो जैसे मैंने दो प्रयोग आपको कहे, एक प्रयोग और आपको कहता हूं। वह भी एक रास्ता है कि आप घर के बाहर जाकर देख लें।

आप पंद्रह दिन तक आधा घंटा रोज, पड़ जाएं जमीन पर मुर्दे की भांति और एक ही बात सोचते रहें कि मैं मर गया। कठिन पड़ेगा। खुद ही को डर लगेगा। बीच में एकाध दफे कह देंगे कि नहीं-नहीं; ऐसा नहीं; मैं जिंदा हूं!

नहीं, ऐसा नहीं चलेगा। कहते रहें, मैं मर गया, मैं मर गया। इसको मंत्र की तरह भाव करते रहें। पंद्रह दिन में आप अचानक पाएंगे कि कई बार आपको ऐसा लगेगा कि थोड़ा-सा आप शरीर के बाहर गए। कभी बाहर निकल गए हैं, कभी भीतर आ गए हैं। कभी बाहर गए हैं, कभी भीतर आ गए हैं।

एक महीना पूरा होते-होते आप इस स्थिति में आ जाएंगे कि आपको कई बार अपने शरीर को बाहर से देखने का मौका मिल जाएगा। एक क्षण को आप देखेंगे कि शरीर पड़ा है मुर्दे की तरह। आप पड़े हैं। घबड़ाकर आप फिर भीतर चले जाएंगे।

तीन महीने आप प्रयोग करते रहें और आप उस स्थिति में आ जाएंगे कि बराबर बाहर खड़े होकर अपने शरीर को देख पाएं कि यह पड़ा है शरीर।

और एक दफा आप अगर अपने शरीर के बाहर होकर अपने शरीर को देख पाएं, उस वक्त जरा लौटकर चारों तरफ देखना, सब निराकार दिखाई पड़ेगा, कहीं कोई आकार नहीं है। क्योंकि सब आकार शरीर की इंद्रियों के चौखटों का आकार है।

आंख का आकार है, इसलिए आंख निराकार नहीं देख सकती। कान का आकार है, इसलिए कान निराकार को नहीं सुन सकता। हाथ का आकार है, इसलिए हाथ निराकार को कैसे स्पर्श करे!

शरीर के बाहर, आउट आफ दि बाडी एक्सपीरिएंस, आपको खबर दिलाएगा कि सब निराकार है। उस दिन के बाद आपकी जिंदगी दूसरी हो जाएगी।

कृष्ण जो भी ये कह रहे हैं, ये योग के गहरे प्रयोगों की तरफ इशारे हैं। निराकार को जो देख ले, वही बुद्धिमान है। आकार में जो उलझा रह जाए, वह बुद्धिहीन है।

वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन।
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन।।26।।
और हे अर्जुन, पूर्व में व्यतीत हुए और वर्तमान में स्थित तथा आगे होने वाले सब भूतों को मैं जानता हूं, परंतु मेरे को कोई भी श्रद्धा-भक्तिरहित पुरुष नहीं जानता है।

मैं जानता हूं, कृष्ण कहते हैं, वह जो पीछे हुआ वह, जो अभी हो रहा है वह, जो आगे होगा वह—मैं सब जानता हूं।

इस सब जानने का अर्थ यह है—यह थोड़ी-सी कठिन बात है, थोड़ी समझ लेनी चाहिए—इस सब जानने का अर्थ यह है कि कृष्ण जैसी निराकार चेतना के समक्ष समय जैसी कोई चीज नहीं होती। वर्तमान, अतीत और भविष्य हम लोगों की धारणाएं हैं। जैसे ही कोई निराकार को जान लेता है, समय की सब सीमाएं गिर जाती हैं। और एक इटरनल नाउ, सब

चीजें अभी हो जाती हैं। न कोई अतीत होता है, न कोई भविष्य होता है, न कोई वर्तमान होता है। समय का क्षण ठहर जाता है।

अगर ठीक से समझें, तो हम निरंतर कहते हैं कि समय जा रहा है, समय बीत रहा है। स्थिति उलटी है। समय तो अपनी जगह खड़ा है, हम जा रहे होते हैं, हम चल रहे होते हैं। हमारी स्थिति करीब-करीब वैसी है, जैसी ट्रेन में कभी छोटा बच्चा पहली दफा बैठता है, तो उसे लगता है कि पास के वृक्ष पीछे जा रहे हैं। ट्रेन चलती है आगे की तरफ, बच्चा ही आगे जा रहा है, लेकिन खिड़कियों से पीछे की तरफ भागते हुए वृक्ष दिखाई पड़ते हैं। और पता लगता है कि वृक्ष पीछे जा रहे हैं।

हम सब कहते हैं कि समय जा रहा है। लेकिन असलियत बिलकुल उलटी है। हम जा रहे हैं; समय अपनी जगह खड़ा है। इसे थोड़ा समझना पड़ेगा।

समय अपनी ही जगह खड़ा है। समय कहीं नहीं जाता। समय जाएगा कैसे? जाएगा कहां? कल निकल गया, अब वह कहां जाएगा? कहीं अस्तित्व में कोई जगह होनी चाहिए न! कल जो बीत गया, वह कहां इकट्ठा होगा? और कल जो अभी नहीं आया है, वह कहां से आ रहा है? आने के लिए उसे कहीं होना चाहिए; और जाने के लिए भी कहीं पहुंच जाना चाहिए। इसका तो मतलब यह होगा कि पीछे एक अतीत इकट्ठा हो रहा है करोड़ों, अरबों, खरबों वर्षों का। सब इकट्ठा होगा वहां। और आगे, भविष्य आगे है, वह चला आ रहा है।

यह नहीं हो सकता। न तो भविष्य आ रहा है, न अतीत चला गया है। सिर्फ हम गुजर रहे हैं। जैसे एक आदमी रास्ते से गुजर रहा है। लेकिन ट्रैफिक, वन वे ट्रैफिक है। क्योंकि हम समय में पीछे नहीं जा सकते हैं, इसलिए हमें लगता है कि जो चला गया, वह खो गया। चूंकि हम समय में आगे छलांग नहीं लगा सकते हैं, इसलिए हमें लगता है कि भविष्य अभी आया नहीं है। भविष्य आ चुका है उतना ही; भविष्य मौजूद है।

मैं निकल रहा हूं एक रास्ते से। आगे का मकान मुझे दिखाई नहीं पड़ रहा है अभी, लेकिन वह अपनी जगह मौजूद है। थोड़ी देर बाद मैं उसके सामने पहुंचूंगा। वह मुझे दिखाई पड़ेगा। पीछे का मकान, जो थोड़ी देर पहले मुझे दिखाई पड़ता था, अब दिखाई नहीं पड़ रहा; वह खो गया। लेकिन खो कहीं नहीं गया; वह अपनी जगह मौजूद है।

समय चलता नहीं, समय की चलने की धारणा ट्रेन में गुजरने जैसी धारणा है, जैसे वृक्ष चलते हुए मालूम पड़ते हैं। आदमी चलता है, समय नहीं चलता है।

इसलिए कृष्ण जब कहते हैं, मैं सब जानता हूं, वह जो पीछे, वह जो आगे, वह जो अभी; उसका कुल मतलब यह है कि कृष्ण जैसे आदमी को उस परम चेतना की स्थिति में, उस समाधि की दशा में, वर्तमान, अतीत, भविष्य का फासला गिर जाता है।

समझें कि मैं एक बहुत बड़े दरख्त पर ऊपर बैठ गया हूं। आप दरख्त के नीचे बैठे हैं। मैं आपसे चिल्लाकर कहता हूं कि एक बैलगाड़ी रास्ते पर आ रही है। आप कहते हैं, मुझे नहीं दिखाई पड़ती; भविष्य में होगी। लेकिन मुझे दिखाई पड़ती है। मैं थोड़ा आपसे ऊंचाई पर बैठा हुआ हूं। मैं कहता हूं, भविष्य में नहीं है, वर्तमान में है। बैलगाड़ी आ गई है रास्ते पर। आप कहते हैं, कहीं नहीं दिखाई पड़ती। अभी नहीं आई है; भविष्य में है।

फिर थोड़ी देर में बैलगाड़ी आपके सामने आ जाती है। आप कहते हैं, आ गई। वर्तमान हो गई। फिर थोड़ी देर बाद बैलगाड़ी आगे निकल जाती है। आप कहते हैं, अतीत हो गई; अब दिखाई नहीं पड़ती। लेकिन मैं आपसे ऊपर के दरख्त से कहता हूं कि अभी भी वर्तमान है; दिखाई पड़ती है।

जितनी चेतना की ऊंचाई होगी, उतना ही वर्तमान, अतीत और भविष्य का फासला गिरता जाएगा। और जिस दिन कृष्ण जैसी परम ऊंचाई होती है चेतना की, उस दिन सब चीजें जो हो गईं, दिखाई पड़ती हैं; सब चीजें जो होने वाली हैं, दिखाई पड़ती हैं; सब चीजें जो हो रही हैं, दिखाई पड़ती हैं।

इस अनुभव के आधार पर ही समस्त ज्योतिष का विकास हुआ था। लेकिन अब तो बाजार में कोई चार आने देकर ज्योतिषी को दिखा रहा है। वह बेचारा कुछ बहुत नहीं बता सकता। उसे कुछ पता नहीं है।

ज्योतिष का सारा विकास समाधिस्थ चेतना से हुआ था। उन लोगों को, जिनको समय के सब फासले मिट गए थे, जिन्हें सब दिखाई पड़ रहा था। ज्योतिष ज्योतिर्मय चेतना के अनुभव से निकला था।

कृष्ण कहते हैं, मुझे सब दिखाई पड़ता है। लेकिन जो अज्ञानी हैं, वे मुझे नहीं देख पा रहे हैं, मैं उन सबको देख रहा हूं।

अब कृष्ण को भलीभांति दिखाई पड़ रहा है कि कौरव हार जाएंगे। यह बैलगाड़ी कृष्ण के लिए सामने आ गई है। अर्जुन को दिखाई नहीं पड़ रहा है कि कौरव हार जाएंगे कि पांडव जीत जाएंगे। यह दुर्योधन को भी नहीं दिखाई पड़ रहा है कि कौरव हार जाएंगे और पांडव जीत जाएंगे। अब यह अर्जुन भी डरा है कि पता नहीं हम हार न जाएं! अभी कौरव भी इस खयाल में हैं कि हम जीत लेंगे, क्योंकि शक्ति हमारे पास ज्यादा है। एक आदमी वहां मौजूद था, उस महाभारत के युद्ध में, जिसे पता था कि क्या होने वाला है और क्या होगा।

कृष्ण का अर्जुन से यह कहना कि तू भाग मत, बहुत दूर की जानकारियों से जुड़ा हुआ है। कृष्ण का यह कहना कि तू सोच रहा है, जिन्हें तू मारेगा, मैं तुझसे कहता हूं, समय ने उन्हें पहले ही मार डाला है। मैं उनकी लाशें देख रहा हूं। तुझे नहीं दिखाई पड़ता, मैं देख रहा हूं कि वे युद्ध के मैदान पर लाश होकर पड़े हैं। दो दिन बाद तुझे भी दिखाई पड़ेगा; बैलगाड़ी तेरे सामने आ गई होगी। तू समझता है, तू मारेगा। मैं कहता हूं कि विधि ने उन्हें समाप्त कर दिया है; तू केवल निमित्त होगा।

कृष्ण कहते हैं, मैं देख रहा हूं दूर तक, चारों तरफ, आगे और पीछे, लेकिन फिर भी मेरे आस-पास सैकड़ों लोग हैं, जो मुझे नहीं देख रहे हैं।

पहाड़ की ऊंचाई से नीचाइयों की तरफ देखना आसान है, नीचाइयों से ऊंचाइयों की तरफ देखना कठिन है। जितने हम नीचे होते हैं, उतनी हमारी चेतना नैरोड, संकीर्ण हो जाती है; जितने हम ऊंचे होते हैं, उतनी विस्तीर्ण हो जाती है।

तो कृष्ण को तो देखना आसान है कि वे देख लें सबको। लेकिन सब को देखना कठिन है कि वे कृष्ण को देख लें। हां, जो कृष्ण की थोड़ी-सी भी झलक देख ले, वह समर्पण के लिए राजी हो जाएगा। क्योंकि वह देखेगा कि पास में एक विराट खड़ा है। और तब वह अपने छोटे-से अहंकार और अपनी छोटी-सी बुद्धि से नहीं जीएगा; तब वह समर्पण करके जीना शुरू कर देगा। और जब वह समर्पण करके जीएगा, तब वह जानेगा; तब वह जानेगा कि जो कहा गया था, वही हुआ है। जो कहा गया था, वही हो रहा है। अन्यथा कुछ होता नहीं है। अन्यथा कुछ भी नहीं होता है।

जीसस को जिस रात पकड़ा गया, तो जीसस के मित्रों ने कहा, हमें खबर मिली है कि दुश्मन पकड़ने आ रहे हैं। अच्छा हो कि हम यहां से भाग जाएं। तो जीसस मुस्कुराए। वह मुस्कुराहट अब तक समझ के बाहर है। क्योंकि जीसस किसलिए मुस्कुराए होंगे? मैं कहता हूं, इसलिए कि जीसस जानते हैं, पकड़ा जाना जरूरी है; होने ही वाला है; इसलिए भागने का कोई अर्थ नहीं है। मुस्कुराए होंगे इसलिए कि ये जो मित्र बेचारे चिंता से कह रहे हैं, इन्हें कुछ पता नहीं है। जो होने वाला है, होगा।

फिर जीसस पकड़े गए। तो मित्रों ने कहा, हमने कहा था, आपने न सुना। फिर वे मुस्कुराए। क्योंकि उन्हें पता है कि जो होने वाला है, वह हो रहा है। कहना भी तुम्हारा जरूरी था; मेरा सुनना भी जरूरी था; और यह पकड़ा जाना भी जरूरी था।

फिर उनमें से एक ने कहा कि चाहे जान रहे, चाहे जाए, मैं तो आपके साथ रहूंगा। जीसस ने कहा, तुझे पता नहीं; सुबह सूरज के उगने के पहले तक तू तीन दफे मुझे इनकार कर चुका होगा। अभी आधी रात है, सूरज के उगने तक तू तीन दफे मुझे इनकार कर चुका होगा। उसने कहा, आप कैसी बातें करते हैं! मैं अपनी जान लगा दूंगा आपके लिए। मैं इनकार करूंगा?

जीसस मुस्कुराए। क्योंकि उस बेचारे को पता नहीं उसका भी कि वह क्या कर सकता है सुबह तक। लेकिन जीसस को दिखाई पड़ रहा है कि वह क्या करेगा।

फिर जीसस को पकड़कर दुश्मन ले चले। बाकी शिष्य तो भाग गए; वह एक शिष्य पीछे हो लिया, जिसने कहा था, मैं आखिरी दम तक साथ रहूंगा। दुश्मनों ने देखा कि कोई एक अजनबी आदमी साथ में है। कौन है यह? उन्होंने अपनी मशालें उसके चेहरे की तरफ कर दीं। उसको पकड़ लिया और कहा कि तू कौन है? तू जीसस का साथी तो नहीं है? उसने कहा, कौन जीसस! मैं तो पहचानता ही नहीं।

जीसस ने पीछे की तरफ देखा, मुस्कुराए और कहा, अभी सूरज नहीं उगा। और ऐसा तीन बार हुआ। फिर थोड़ी देर बाद रास्ते पर वे आए। और सैनिक आए और उन्होंने कहा, यह आदमी कौन है, जो बीच में चल रहा है? अजनबी मालूम पड़ता है। फिर उन्होंने उसे पकड़ा। उसने कहा, मुझे क्यों पकड़ते हो? मैं परदेसी हूं। तुम जीसस के साथी हो? उसने कहा, कौन जीसस! मैं पहचानता भी नहीं। जीसस फिर मुस्कुराए और उन्होंने जोर से कहा, देख! अभी सुबह नहीं हुई। ऐसा तीन बार रात में उसने इनकार किया।

जीसस को पता है, क्या होने वाला है, क्या होगा। इसलिए जो बहुत गहरे जीसस को पहचानते हैं, वे जीसस की मृत्यु को कहते हैं, क्राइस्ट ड्रामा। वे कहते हैं, उसको कोई ज्यादा गंभीरता से लेने की जरूरत नहीं है; जीसस के लिए तो वह नाटक से ज्यादा नहीं था। क्योंकि जब पहले से ही पता हो, तो मामला नाटक हो जाता है।

कृष्ण के लिए भी युद्ध नाटक से ज्यादा नहीं था। इसलिए कई लोगों को कठिनाई होती है कि इस युद्ध में वे इतनी प्रेरणा दे रहे हैं! अर्जुन को रोकते नहीं!

गांधीजी को बड़ी तकलीफ थी, कि इतना बड़ा युद्ध, इतनी हिंसा करवा देंगे! गांधी को बहुत प्रेम था गीता से, लेकिन फिर भी गीता पचती नहीं थी उनके मन को कहीं। गहरे में तो चोट लगती थी, क्योंकि है तो युद्ध का मामला। अहिंसा तो नहीं है कहीं भी। और हिंसा की इतनी सहज स्वीकृति किसी दूसरे आदमी ने कभी दी नहीं है। तो फिर गांधी के पास एक ही उपाय था, या तो गीता को छोड़ दें, या गीता की ऐसी व्याख्या कर लें कि मन में जम जाए।

तो उन्होंने एक तरकीब निकाल ली। और वह तरकीब उन्होंने यह निकाल ली कि यह युद्ध कभी हुआ नहीं। यह तो प्रतीकात्मक, सिंबालिक युद्ध है; यह कभी हुआ नहीं। यह तो आदमी में बुरी शक्तियों और अच्छी शक्तियों का युद्ध है। कुरुक्षेत्र पर कभी कोई युद्ध हुआ नहीं। तब उनके मन को थोड़ी राहत मिली। यह तो आसुरी और सदवृत्तियों का संघर्ष है। सच में कभी युद्ध हुआ नहीं। जब गांधी को यह व्याख्या पकड़ ली उन्होंने मन में, तब उनको राहत मिली।

लेकिन यह बात झूठ है। यह युद्ध हुआ है। इस युद्ध के होने के ऐतिहासिक प्रमाण हैं। और यह युद्ध प्रतीकात्मक नहीं है, यह युद्ध वास्तविक तथ्य है। फिर कृष्ण कैसे इस वास्तविक युद्ध में अर्जुन को धक्का दे रहे हैं?

असल में अर्जुन को जो नहीं दिखाई पड़ता है, वह कृष्ण को दिखाई पड़ता है। यह युद्ध होकर रहेगा। यह युद्ध नियति है, यह डेस्टिनी है। इस युद्ध से बचा नहीं जा सकता; यह होगा ही। सारी ऐतिहासिक शक्तियां जिस जगह ले आई हैं, वहां यह युद्ध होकर रहेगा। इसलिए अब सवाल यह नहीं है कि युद्ध हो या न हो। सवाल यह है कि युद्ध पर अर्जुन जाए, तो किस भाव को लेकर जाए। वह परमात्मा के प्रति समर्पित होकर युद्ध करे कि अहंकार से भरा होकर युद्ध करे, असली सवाल इतना ही है।

कृष्ण कहते हैं, मुझे तो सब दिखाई पड़ता है, लेकिन जो नहीं जानते, उन्हें मैं बिलकुल दिखाई नहीं पड़ता हूं।

वहीं लोग खड़े होंगे, जो कृष्ण को सारथी से ज्यादा न समझते रहे होंगे। सारथी थे ही वे, जहां तक आकार का संबंध है। अर्जुन के घोड़ों को सांझ जाकर नदी पर पानी पिलाकर, उनकी सफाई कर लाते थे। घोड़ों को दिनभर हांकते थे, सांझ उनकी सेवा करते थे। सारथी तो वे थे ही। उस युद्ध में बहुत सारथी थे। उनसे कुछ विशेष स्थान उनका न रहा होगा। जो नहीं देख सकते थे, उनको तो सारथी ही दिखाई पड़ा होगा।

लेकिन जो देख सकते थे, उनको तो, उनको जो दिखाई पड़ा होगा, वह निराकार है। जो देख सकते थे, उन्हें वे परम परमात्मा दिखाई पड़े। जो नहीं देख सकते थे, अंधे थे, उन्हें तो ठीक है, एक आदमी थे। आदमी थे ही, आकार था। आकार था निश्चित।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, आंख हो निराकार को खोजने की, तो ही मुझे कोई देख पाता है।

ओशो – गीता-दर्शन – भाग 3
धर्म का सार: शरणागति— अध्याय –7 (प्रवचन—10)

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत।
सर्वभूतानि सम्मोहं सर्गे यान्ति परंतप।।27।।
येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम्।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः।।28।।
हे भरतवंशी अर्जुन, संसार में इच्छा और द्वेष से उत्पन्न हुए सुख-दुख आदि द्वंद्व रूप मोह से संपूर्ण प्राणी अति अज्ञानता को प्राप्त हो रहे हैं। परंतु निष्काम भाव से श्रेष्ठ कर्मों का आचरण करने वाले जिन पुरुषों का पाप नष्ट हो हे गया है, वे रागद्वेषादि द्वंद्व रूप मोह से मुक्त हुए और दृढ़ निश्चय वाले पुरुष मेरे को सब प्रकार से भजते हैं।

प्रभु का स्मरण भी उन्हीं के मन में बीज बनता है, जो इच्छाओं, द्वेषों और रागों के घास-पात से मुक्त हो गए हैं। जैसे कोई माली नई जमीन को तैयार करे, तो बीज नहीं बो देता है सीधे ही। घास-पात को, व्यर्थ की जड़ों को उखाड़कर फेंकता है, भूमि को तैयार करता है, फिर बीज डालता है।

इच्छा और द्वेष से भरा हुआ चित्त इतनी घास-पात से भरा होता है, इतनी व्यर्थ की जड़ों से भरा होता है कि उसमें प्रार्थना का बीज पनप सके, इसकी कोई संभावना नहीं है।

यह मन की, अपने ही हाथ से अपने को विषाक्त करने की जो दौड़ है, यह जब तक समाप्त न हो जाए, तब तक प्रभु का भजन असंभव है।

सुना है मैंने, एक चर्च में एक फकीर बोलने आया था। कोई एक हजार लोग उसे सुनने को इकट्ठे थे। उसने उन एक हजार लोगों से पूछा कि मैं तुमसे पूछना चाहूंगा, तुममें से कोई ऐसा है जिसने घृणा के ऊपर विजय पा ली हो? क्योंकि जिसने अभी घृणा पर विजय नहीं पाई, वह प्रार्थना करने में समर्थ न हो सकेगा। इसके पहले कि मैं तुम्हें प्रार्थना के लिए कहूं, मैं यह जान लूं कि तुममें से कोई ऐसा है, जिसने घृणा पर विजय पा ली हो!

हजार लोगों में से कोई उठता हुआ नहीं मालूम पड़ा, लेकिन फिर एक आदमी उठा। एक सौ चार वर्ष का एक बूढ़ा आदमी खड़ा हुआ।

उस पादरी ने कहा, खुश हूं, प्रसन्न हूं, आनंदित हूं, क्योंकि हजार में भी एक आदमी ऐसा मिल जाए, जिसने घृणा पर विजय पा ली है, तो थोड़ा नहीं। और अगर एक आदमी भी इस चर्च में ऐसा है, जिसने घृणा पर विजय पा ली है, तो हम प्रभु को इस चर्च में उतारने में सफल हो जाएंगे। तुम्हारी अकेले की प्रार्थना पर्याप्त होगी, इन सबके जीवन में भी प्रकाश डालने के लिए। मैं तुमसे प्रार्थना करूंगा, उस फकीर ने कहा कि तुम इन लोगों को भी बताओ कि तुमने अपनी घृणा पर विजय कैसे प्राप्त की?

और उस बूढ़े आदमी ने कहा, बड़ी सरलता से। क्योंकि वे सब दुष्ट, जिन्होंने मुझे सताया था, और वे सब मूढ़, जिन्होंने मुझे परेशान किया था और जिनसे मुझे घृणा थी, वे सब मर चुके हैं। अब कोई बचा ही नहीं, जिसे मैं घृणा करूं। आप ही बताइए मैं किसको घृणा करूं?

एक सौ चार वर्ष उसकी उम्र है; करीब-करीब वे सारे लोग मर चुके हैं, जिनसे जिंदगी में कोई कलह, कोई संघर्ष था। कहने लगा, अब कोई घृणा की जरूरत ही न रही। ऐसे तो सभी के जीवन से राग-द्वेष चला जाता है; सभी के जीवन से। शरीर शिथिल होने लगता है, कामवासना शिथिल हो जाती है। जिंदगी की दौड़ उतरकर मौत के करीब पहुंचने लगती है, तो बहुत-से वेग अपने आप शिथिल हो जाते हैं। प्रतिस्पर्धा, जैसे-जैसे आदमी मौत के करीब पहुंचता है, कम होने लगती है। लेकिन इस भांति भी अगर कोई सोचता हो कि प्रार्थना में सफल हो जाएगा, तो संभव नहीं है।

ऊर्जा हो पूरी, शक्ति हो पूरी, अवसर पूरा का पूरा ऐसा हो, जहां कि द्वेष जन्मता हो और द्वेष न जन्मे; जहां घृणा पैदा होती हो और घृणा पैदा न हो; जहां राग का जन्म होता है और राग न जन्मता हो; जहां सारी प्रतिकूल परिस्थिति हो और मन, जीवन की जो सहज पाशविक वृत्तियां हैं, उनकी तरफ न दौड़ता हो, तो ही जीवन में प्रार्थना का बीज अंकुरित हो पाता है।

लेकिन हम सारे ऐसे लोग हैं कि हम चाहते तो हैं कि जीवन में प्रार्थना खिल जाए, और प्रभु का मिलन हो जाए, और आनंद घटित हो। और हम उन पर्वत शिखरों को देखने में समर्थ हो जाएं, जिन पर प्रकाश कभी क्षीण नहीं होता; और हम उन गहराइयों को जान लें अनुभव की, जहां अमृत निवास करता है; उन मंदिरों में प्रवेश कर जाएं, जहां परम प्रभु विराजमान है–ऐसी हम आकांक्षा करते हैं। लेकिन चौबीस घंटे घृणा के बीज को पानी देते हैं, द्वेष को सम्हालते हैं, शत्रुता को पालते हैं। और सब तरह से जमीन जिस तरह खराब की जा सकती है, वह सब करते हैं। और फिर हम सोचते हों कि कभी भगवत-भजन का फूल खिल सके, तो वह संभव नहीं है।

कृष्ण कहते हैं, जो नासमझ हैं, जो अज्ञानीजन हैं, वे इच्छा और द्वेष में ही अपने जीवन को समाप्त कर देते हैं। उनके पास न तो शक्ति बचती है, न समय बचता है, न चेतना बचती है कि मेरी ओर प्रवाहित हो सके। लेकिन जो ज्ञानीजन हैं...।

और ज्ञानी कौन है? ज्ञानी वही है, जो अपने जीवन को निरंतर आनंद की दिशा में प्रवाहित करने में समर्थ है।

और अज्ञानी वही है, जो अपने ही हाथों नर्क की यात्रा करता है। जो अपने साथ अपना नर्क लेकर चलता है। कहीं भी पहुंच जाए, तो वह नर्क को निर्मित कर लेगा। उसके पास बिल्ट-इन-प्रोग्रेम है। उसके पास हमेशा तैयार है फार्मूला नर्क बनाने का। वह कहीं भी पहुंच जाए, ज्यादा देर न लगेगी, वह नर्क निर्मित कर लेगा।

अज्ञानी वही है, जो अपने चारों तरफ नर्क की समस्त संभावनाओं को लेकर चलता है। और ज्ञानी वही है, जो अपने चारों तरफ स्वर्ग की समस्त संभावनाओं को लेकर चलता है। स्वर्ग की बड़ी से बड़ी संभावना प्रभु का स्मरण है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, वह ज्ञानी जिसने अपने मन को निष्काम कर डाला, पवित्र कर डाला, जिसके जीवन में पुण्य की गंध पैदा हुई, जिसने व्यर्थ के घास-पात को उखाड़कर फेंक दिया, राग-द्वेष में जो अब जीता नहीं, जो अब भगवत-भजन की दिशा में निरंतर चल रहा है; उठता है, बैठता है, चलता है, डोलता है, कुछ भी करता है, प्रत्येक कृत्य जिसका प्रभु के लिए समर्पित है और प्रत्येक क्षण, वैसा व्यक्ति मुझे उपलब्ध होता है।

दो बातें स्मरणीय हैं।

अभी इस घटना का उपयोग करूं। अभी वर्षा पड़ रही है। हमारी दृष्टि पर सब निर्भर है। अगर हम सोचते हैं कि बहुत बड़ा दुख हमारे ऊपर गिर रहा है, तो हमारी दृष्टि शत्रुता की हो जाती है। अगर हम सोचते हैं कि प्रभु की अनुकंपा बरस रही है, तो हमारी दृष्टि मित्रता की हो जाती है। और तब यह पड़ती हुई बूंद, पानी की बूंद नहीं रह जाएगी, यह पड़ती बूंद भगवत चेतना की बूंद हो जाती है।

हम कैसे लेते हैं जीवन को, इस पर सब निर्भर करता है। हमें पता ही नहीं है कि काश, हमें जिंदगी को जीने का खयाल होता, तो हम जब आकाश से बादल बरसते हों और पानी नीचे गिर रहा हो, तो हम नाच भी सकते हैं खुशी में। मोर नाचते हैं, और कभी आदमी भी नाचता था, लेकिन अब आदमी सिर्फ बचता है। सूरज निकला हो, तो उसकी रोशनी में हम सिर्फ धूप भी अनुभव कर सकते हैं, और जीवन भी। अंधेरा घिरा हो, तो हम आने वाली सुबह की यात्रा भी देख सकते हैं उसमें, और सिर्फ मृत्यु का अंधकार भी।

हमारे ऊपर निर्भर करता है कि हम जीवन को कैसे देखते हैं। वर्षा रुकेगी नहीं आपके देखने से। पानी बंद नहीं होगा, बादल आपकी फिक्र न करेंगे। लेकिन आपके दृष्टिकोण का अंतर, आपके एटिटयूड का जरा सा बदल जाना, और सब बदल जाता है।

सुना है मैंने कि केलिफोर्निया के एक मोटेल में एक यात्री मेहमान है। सुबह सूरज निकल रहा है और पक्षी गीत गा रहे हैं। तो मोटेल के मैनेजर ने उस यात्री को कहा कि आप कृपा करके बाहर आएं। सूरज निकला है, पक्षी गीत गा रहे हैं, आकाश बहुत सुंदर है। उस आदमी ने कहा, वह तो ठीक है। बट फर्स्ट लेट मी नो हाउ मच इट विल कास्ट--पहले मुझे बता दो कि कीमत क्या चुकानी पड़ेगी!

हम जिस दुनिया में जीते हैं, वह बाजार की दुनिया है। वहां हर चीज को हम मूल्य से आंकते हैं। अगर किसी दिन ऐसा हो जाए कि वर्षा मुश्किल हो जाए, तो निश्चित ही हम पैसे चुकाकर शावर के नीचे खड़े होंगे। और जिन मुल्कों में सूरज नहीं निकलता, जब सूरज निकल आता है, तो छुट्टी हो जाती है। अंग्रेजी में संडे के दिन छुट्टी का कारण है, क्योंकि वह सन-डे है, वह सूरज का दिन है। आकाश घिरा रहता है बादलों से; सूरज का कोई दर्शन नहीं होता। जब सूरज निकल आए, तो आनंद से प्रफुल्लित होकर लोग सूरज की धूप लेने के लिए लेट जाते हैं।

जो न्यून हो जाए, और जिसके लिए हमें पैसा देना पड़े, फिर हमें लगता है, उसमें कुछ आनंद है। लेकिन जो हमें मुफ्त में मिल जाए, अगर परमात्मा भी मुफ्त हम पर बरसता हो, तो हम द्वार-दरवाजे बंद करके भीतर हो जाएंगे।

(वर्षा शुरू हो गई है और भगवान श्री अपना बोलना जारी रखते हैं।)

मैं कहता हूं, इधर थोड़ी देर हम बैठेंगे ही। मुझे लगता है, कोई इनमें से जाने वाला नहीं है। जो जाने वाले थे, वे आए ही नहीं हैं। वर्षा भी रुकेगी नहीं। वर्षा भी आपसे डरेगी नहीं। वर्षा भी जारी रहेगी। बादल अपने आनंद में मग्न रहेंगे। अब इतनी देर घंटेभर हमें यहां रहना है। आपकी दृष्टि पर निर्भर करेगा।

मैं चाहूंगा कि थोड़ा-सा खयाल करें कि प्रत्येक बूंद परमात्मा का आशीष है। और यहां से जाते वक्त आपका शरीर ही नहीं गीला होगा, आपकी आत्मा भी भीग गई होगी। और वह आत्मा का भीग जाना ही प्रभु का भजन है। उसके भजन किन्हीं मंदिरों के कोने में बैठकर नहीं किए जाते हैं; उसके भजन जीवन के हर कोने में और जीवन की हर दिशा में और हर आयाम में किए जाते हैं।

कृष्ण कहते हैं, जिनके मन में काम-द्वेष नहीं है, जो किसी के लिए घृणा से नहीं भरे हैं, वे सरलता से ही मेरे भजन में लीन हो पाते हैं। और उन ज्ञानियों को मैं उपलब्ध होता हूं।

(वर्षा जारी है और भगवान श्री अपना बोलना जारी रखते हैं।)

इधर घंटेभर अज्ञानी मत बनें। घंटेभर के लिए कम से कम ज्ञानी बन जाएं। और एक क्षण के लिए भी कोई ज्ञान का आनंद ले ले, तो दुबारा अज्ञानी होने की उसकी तैयारी न होगी। वह हर जगह प्रभु के स्मरण को खोज पाएगा।

बूंद आपके ऊपर गिर रही है, वह सिर्फ पानी नहीं है, वह परमात्मा भी है। क्योंकि परमात्मा के सिवाय इस जगत में कुछ भी नहीं है। जब बूंद आपके सिर पर गिरे और आपकी आंखों से नीचे उतरे, तो जानना कि परमात्मा अपनी पूरी शीतलता को लेकर आपके ऊपर गिरा है और नीचे उतरा है। और आप पाएंगे कि यहां बैठे-बैठे इस वर्षा के क्षण में

भी एक प्रार्थना की गहराई आपके हृदय तक पहुंच गई है। और वह गहराई काम की हो जाएगी। ये कपड़े तो सूख जाएंगे, उस गहराई का सूखना मुश्किल है।

जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये।
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम्।।29।।
और जो मेरे शरण होकर जरा और मरण से छूटने के लिए यत्न करते हैं, वे पुरुष उस ब्रह्म को तथा संपूर्ण अध्यात्म को और संपूर्ण कर्म को जानते हैं।

जो मेरी शरण होकर!

इस छोटे-से शब्द शरण में, धर्म का समस्त सार समाया हुआ है। यह शरण इस पूरब में खोजी गई समस्त साधनाओं की आधारभूत बात है।

जो मेरी शरण होकर!

शरण होने का अर्थ है, जो अपने को इतना असहाय पाता है, इतना हेल्पलेस। और जो पाता है, मेरे किए कुछ भी न हो सकेगा। और जो पाता है, मेरे किए कभी कुछ हुआ नहीं। और जो पाता है कि मैं हूं न होने के बराबर, नहीं ही हूं। जो पाता है, मैं कुछ भी नहीं हूं। न श्वास मेरे कारण चलती है, न खून मेरे कारण बहता है; न बादल मेरे कारण इकट्ठे होते हैं, न वर्षा मेरी वजह से होती है। अज्ञात, अनंत शक्ति सब किए चली जाती है। मैं व्यर्थ अपने को बीच में क्यों लिए फिरूं! मैं अपने को छोड़ दूं; मैं बह जाऊं। इस अनंत के साथ संघर्ष छोड़ दूं; इस अनंत के साथ सहयोगी हो जाऊं; इस अनंत के चरणों में अपने को डाल दूं और कह दूं, जो तेरी मर्जी।

एक बार भी अगर कोई पूर्ण हृदय से कह पाए, जो तेरी मर्जी, उसके जीवन से दुख विदा हो जाता है। मेरी मर्जी दुख है; उसकी मर्जी कभी भी दुख नहीं है।

ऐसा नहीं कि फिर पैर में कांटे न गड़ेंगे, और ऐसा भी नहीं कि फिर कोई बीमारी न आएगी, और ऐसा भी नहीं कि फिर मृत्यु न आएगी। लेकिन मजे की बात यह है कि कांटे तो फिर भी पैर में गड़ेंगे, लेकिन कांटे नहीं मालूम पड़ेंगे। बीमारी तो फिर भी आएगी, लेकिन आप अछूते रह जाएंगे। मौत तो फिर भी घटेगी, लेकिन आप नहीं मर सकेंगे। घटनाएं बाहर रह जाएंगी, आप पार हो जाएंगे।

असल में मैं के अतिरिक्त इस जगत में और कोई दुख नहीं है, और कोई पीड़ा नहीं है। और हम इतने मैं से भरे हैं कि अगर परमात्मा हमारे भीतर प्रवेश भी करना चाहे, तो जगह न मिल सकेगी। रोएं-रोएं से मैं बोल रहा है। वह मैं ही हमें समर्पित नहीं होने देता। वह मैं ही हमें कहीं शरण, सिर नहीं रखने देता। वह मैं कहता है कि तुम, और सिर झुकाओगे? वह मैं कहता है, सारी दुनिया से हम ही सिर झुकवा लेंगे।

मैं नेपोलियन बोनापार्ट के बचपन की कुछ किताबें देखता था। नेपोलियन बोनापार्ट जब पढ़ता था, तो अपनी एक स्कूल की एक्सरसाइज कापी में, एक छोटी-सी कापी में उसने एक वाक्य लिखा है। भूगोल के बाबत जानकारी ले रहा था। किसलिए? भूगोल के बाबत जानकारी ले रहा था कि सारी दुनिया जीतनी है, तो भूगोल तो जानना ही पड़ेगा। बचपन से ही नेपोलियन के दिमाग में सारी दुनिया को जीतने का खयाल था, तो भूगोल की जानकारी जरूरी थी। एक बड़ी मजेदार घटना घटी। और इस जिंदगी में बड़ी मजेदार घटनाएं घटती ही हैं। जिंदगी बड़ी गहरी मजाक है।

सेंट हेलेना का छोटा-सा द्वीप है, बहुत छोटा। तो नक्शे पर नेपोलियन बोनापार्ट ने उसके चारों तरफ एक गोल लकीर खींच दी और लिख दिया, यह इतनी छोटी जगह है कि इसे जीतने की कोई जरूरत नहीं। और मजे की बात यह है कि नेपोलियन जब हारा, तो सेंट हेलेना के द्वीप में ही बंद किया गया, कैदी किया गया। जिस जगह को उसने जीतने के लिए छोड़ रखा था कि बेकार है; एक छोटा-सा द्वीप है, जिस पर कुछ नहीं, घास ही उगती है। इसको नहीं जीतने की कोई जरूरत है।

सारी दुनिया जीतनी चाही थी उसने! लेकिन कभी-कभी जिंदगी बड़े मजाक करती है। सारी दुनिया तो हार गया, आखिर में सेंट हेलेना का द्वीप ही बचा। और उस पर ही कैदी होकर नेपोलियन आखिरी वक्त में था। शायद उसे खयाल भी न आया होगा कि कभी मैंने भूगोल की किताब पर निशान लगाया था कि सेंट हेलेना बिलकुल बेकार है। आखिर में वहीं शरण मिली। जो बिलकुल बेकार मालूम पड़ा था, वही शरण बना। सारी जमीन छिन गई हाथ से, वह सेंट हेलेना का द्वीप ही छोटा-सा, कुल जमा शरण थी।

जिंदगी में ऐसा रोज होता है। जिस परमात्मा को हम सदा छोड़े रहते हैं कि पाने योग्य नहीं है, और जिस परमात्मा को हम सदा बाहर रखते हैं जिंदगी के, वही परमात्मा अंत में पता चलता है कि शरण होने योग्य था--वही परमात्मा।

(पानी की बूंदें पड़ने लगी हैं, कुछ लोगों ने छाता खोल लिए हैं। और भगवान श्री अपना कहना जारी रखते हैं।)

एक काम कुछ भी करें, या तो छाता खोले ही रखें, नहीं तो बादल आपसे मजाक जारी रखेंगे; आप खोले ही रखें। और या फिर बंद ही कर लें। या तो बादलों से कह दें कि अब तुम बेफिक्र रहो, हम अब खोलने वाले नहीं। और या फिर उनसे कह दें कि अब तुम बेफिक्र रहो, हम अब खोले ही रखेंगे। दो में से कुछ एक कर लें; दोनों न करते रहें, अन्यथा बेकार समय जाया होगा।

और जब भीग ही रहे हैं, तो पूरे ही भीग जाएं; इतनी कंजूसी भी क्या! कितना बचाएंगे! कितना बचाएंगे छाता-वाता लगाकर; कुछ बचेगा? सिर्फ वहम है आदमी का कि हम बचा लेंगे! क्या, बचा क्या पाएंगे? भीग जाएंगे पूरी तरह, भीग ही जाएंगे न! हो क्या जाएगा? तो भीग जाएं। छाते बंद करके नीचे रख दें। इसमें न भीगने का मजा ले पाएंगे, न सूखने का मजा ले पाएंगे। दोनों तरफ से जाएंगे, न दीन के न दुनिया के, न घर के न घाट के हो जाएंगे।

शरण बड़ा अदभुत शब्द है। शरण का अर्थ है कि मैं कहता हूं अब मैं नहीं हूं, तू ही है। और अब तू जो करेगा, जो करवाएगा, उससे मैं राजी हूं, स्वीकार करता हूं। मेरी एक्सेप्टेबिलिटी है।

जीसस मर रहे हैं, आखिरी क्षण में सूली पर लटके हैं। एक क्षण को उनके मन में, ऐसे ही आ गया होगा भाव, जैसे आपके मन में छाता खोलने का आता है, आ गया एकदम एक क्षण को भाव, कि मैं परमात्मा के लिए जिंदगीभर जीया और आखिर मुझे सूली लग रही है! एक क्षण को कहीं बुद्धि ने सवाल उठा दिया होगा। और एक क्षण को जीसस ने आकाश की तरफ देखकर कहा कि यह तू क्या करवा रहा है? छोटी-सी शिकायत थी, बहुत बड़ी नहीं, कि यह तू क्या करवा रहा है?

लेकिन तत्काल फिर खयाल आया कि यह तो शिकायत हो गई, यह तो सलाह हो गई परमात्मा को। यह तो मैं सलाह देने लगा कि तू क्या करवा रहा है! इसका अर्थ तो यह हुआ कि मेरी इच्छा कुछ और थी, जो होना चाहिए, और तू कुछ और करवा रहा है। यह तो मेरी इच्छा खड़ी हो गई!

उनकी आंख से दो आंसू के बूंद टपक पड़े। और उन दो बूंदों ने उन्हें वहां पहुंचा दिया, जिसको कृष्ण शरण कह रहे हैं। दो बूंद उनकी आंखों में आ गए। और उन्होंने जोर से कहा कि नहीं, नहीं, मुझे क्षमा कर; दाय विल बी डन--तेरी ही इच्छा पूरी हो। मैं कौन हूं! मुझे माफ कर दे। मुझसे भूल हो गई। मुझसे गलती हो गई। यह मैंने क्या कहा तुझसे कि यह तू क्या करवा रहा है!

इतनी-सी शिकायत जीसस के लिए बाधा थी। तो मैं निरंतर कहता हूं कि इस आखिरी क्षण तक भी जीसस क्राइस्ट नहीं थे। इस आखिरी क्षण तक वे जीसस ही थे। लेकिन यह आखिरी वक्तव्य, एक सेकेंड में सब दुनिया बदल गई। वह आंख से दो आंसू का गिर जाना और जीसस का कहना, दाय विल बी डन, तेरी मर्जी पूरी हो। और फिर प्रसन्न हो जाना और उस सूली पर ऐसे झूल जाना, जैसे वह झूला हो। वह जीसस, क्राइस्ट हो गए उसी क्षण। उसी क्षण वे मनुष्य न रहे, परमात्मा हो गए।

जिस क्षण कोई व्यक्ति अपने को परमात्मा की शरण में छोड़ देता है, उसी क्षण परमात्मा के साथ एक हो जाता है।

अब यह जिंदगी का पैराडाक्स है कि जब तक हम अपने को बचाते हैं, अपने को खोते हैं; और जिस दिन अपने को खो देते हैं, उस दिन हम अपने को बचा लेते हैं। और जब तक हम अपने को बचाएंगे, कुछ हमारे हाथ में आएगा नहीं; खाली होगी मुट्ठी। और जिस दिन हम खोल देंगे, उस दिन यह सारी संपदा, यह सारा जगत, यह सब कुछ, यह सब कुछ हमारा है। लेकिन जब तक मैं है भीतर, तब तक यह सब हमारा नहीं हो सकता है। यह मैं ही हमारा दुश्मन है, लेकिन मैं हमें मित्र मालूम पड़ता है।

एक बहुत अदभुत आदमी हुआ है, इकहार्ट। उसने मजाक में एक दिन परमात्मा से सुबह प्रार्थना की है। लेकिन उसकी प्रार्थना कीमती है और मन में रख लेने जैसी है। इकहार्ट ने एक दिन सुबह प्रार्थना की परमात्मा से कि हे प्रभु, मेरे दुश्मनों से तो मैं निपट लूंगा, मेरे मित्रों से तू निपट ले। मेरे दुश्मनों से मैं निपट लूंगा। उनकी तू फिक्र छोड़। मैं काफी हूं। लेकिन मेरे मित्रों से तू निपट ले; उनसे मैं बिलकुल नहीं निपट पाता।

इकहार्ट का शिष्य साथ में था। उसने यह प्रार्थना सुनी। वह बड़ा हैरान हुआ। हैरान इसलिए हुआ कि सवाल तो दुश्मनों से ही होता है निपटने का; मित्रों से तो कोई सवाल नहीं होता! और यह इकहार्ट क्या पागलपन की बात कह रहा है। कहीं गलती तो नहीं हो गई शब्दों की जमावट में! कहना चाहता हो कि मेरे मित्रों से मैं निपट लूंगा, दुश्मनों से तू निपट ले। कहीं भूल तो नहीं हो गई!

इकहार्ट जैसे ही प्रार्थना के बाहर हुआ, मित्र ने हाथ पकड़ा और कहा कि मालूम होता है, तुम कुछ भूल कर गए। यह तुमने क्या कहा! मित्रों से निपटने की कोई जरूरत ही नहीं है। और तुमने परमात्मा से कहा कि शत्रुओं से तो मैं निपट लूंगा, मेरे मित्रों से तू निपट ले।

इकहार्ट ने कहा कि मैं तुझसे कहता हूं कि जिन-जिन को हमने मित्र समझा है, वे ही हमारे शत्रु हैं, और उनसे निपटना बड़ा मुश्किल है। और उनमें सबसे बड़ा मित्र है मैं, ईगो। यह बहुत मित्र मालूम पड़ता है। हम इसी को तो जिंदगीभर बचाते हैं। यही है जहर, क्योंकि यही मैं शरण न जाने देगा। यही मैं सिर न झुकाने देगा। यही मैं छोड़ने न देगा आपको कि आप लेट गो में पड़ जाएं। कह दें कि ठीक।

कभी देखें। कभी देखें, जमीन पर ही लेट जाएं। किसी मंदिर में जाने की उतनी जरूरत नहीं है। जमीन पर ही लेट जाएं चारों हाथ-पैर छोड़कर, और कह दें परमात्मा से कि अब घंटेभर तू ही है, मैं नहीं। और पड़े रहें घंटेभर। अपनी तरफ से कोई बाधा न दें। सिर्फ पड़े रहें, जैसे कि मुर्दा पड़ा हो या कोई छोटा बच्चा अपनी मां की गोद में सिर रखकर सो गया हो। करते रहें, करते रहें। एक पंद्रह-बीस दिन के भीतर आपको शरण का क्या अर्थ है, वह पता चलेगा। यह शब्द नहीं है, यह अनुभव है।

जमीन पर पड़ जाएं; अपने कमरे को भी बंद कर लें, जमीन पर पड़ जाएं चारों हाथ-पैर छोड़कर। सिर रख लें जमीन पर, पड़ जाएं, और कह दें, प्रभु, घंटेभर के लिए तू है, अब मैं नहीं हूं। पड़े रहें। विचार चलते रहेंगे, भाव चलते रहेंगे। दो-चार-आठ दिन में विचार, भाव विलीन हो जाएंगे। पंद्रह दिन में आपको लगेगा कि वह जमीन, जिस पर आप पड़े हैं, और आप अलग नहीं हैं; एक हो गए; किसी गहरी इकाई में जुड़ गए। एक महीना पूरा होते-होते आपको पता चलेगा कि शरण का क्या अर्थ है। आपके भीतर प्रभु की किरणें सब तरफ से प्रवेश करने लगेंगी। क्योंकि शरण का अर्थ है, ओपनिंग।

इंडोनेशिया में एक आंदोलन चलता है, कीमती आंदोलन है। इस जमीन पर जो दो-चार कीमती बातें आज चल रही हैं, उनमें इंडोनेशिया में मोहम्मद सुबुद के द्वारा चलता हुआ एक छोटा-सा ध्यान का आंदोलन भी है। उस आंदोलन का नाम है सुबुद। उस आंदोलन की प्रक्रिया में कोई और विशेषता नहीं है, बस, इतनी ही प्रक्रिया है कि वे व्यक्ति को राजी करते हैं कि तू अपने को छोड़ दे परमात्मा के हाथों में। इसको वे कहते हैं, ओपनिंग। इसको कृष्ण कहते हैं, सरेंडरिंग। इसको वे कहते हैं, खुले अपने सब दरवाजे छोड़ दें। परमात्मा से कोई बचाव तो नहीं करना है, इसलिए खिड़की-दरवाजे सब खुले छोड़ दें। और ऐसा पड़ जाएं, जैसे परमात्मा है और हम उसकी गोद में पड़े हैं।

और एक तीन सप्ताह में परिणाम गहरे होने लगते हैं। जैसे ही आप अपने को खुला छोड़ते हैं...। रेसिस्टेंस छोड़ने में थोड़ा वक्त लगता है। दो-चार दिन तो आप कहेंगे, लेकिन छोड़ न पाएंगे। धीरे-धीरे धीरे-धीरे छोड़ पाएंगे। जिस दिन

भी छोड़ना हो जाएगा, उसी दिन आप पाएंगे, आपके भीतर कोई विराट ऊर्जा प्रवेश कर रही है। आपकी मांसपेशियों में कोई और नई चीज बहने लगी। आपकी हड्डियों के आस-पास किसी नई चीज ने प्रवाह लिया। आपके हृदय की धड़कनों के पास कोई नई शक्ति आ गई। आपके खून में कुछ और भी बह रहा है। आपकी श्वासों में कोई और भी तिर रहा है। और आप एक तीन महीने के अनुभव में पाएंगे कि आप नहीं बचे, परमात्मा ही बचा है। फिर तो यह भी कहने की जरूरत न रहेगी कि मैं शरण आता हूं। क्योंकि फिर इतना भी आप न बचेंगे कि कह सकें कि मैं शरण आता हूं।

बुद्ध के पास एक युवक आया। उसने सुन रखा था कि बुद्ध लोगों से कहते हैं, अप्प दीपो भव! अपने प्रकाश स्वयं बनो; बी ए लाइट अनटु योरसेल्फ। फिर जब वह युवक बुद्ध के पास आया, तो उसे बड़ी बेचैनी हुई। वहां उसने देखा कि लोग कह रहे हैं, बुद्धं शरणं गच्छामि, बुद्ध की शरण जाते हैं। उस युवक को तो बड़ी परेशानी हुई। वह तो सुनकर आया था कि बुद्ध कहते थे कि अपने दीए स्वयं बनो। तो यह तो बात बड़ी उलटी मालूम पड़ती है, बुद्ध की शरण जाओ! अपने दीपक बनना है, तो किसी की शरण मत जाओ, यही उसने मतलब लिया था।

स्वभावतः, हमारा अहंकार इसी तरह के मतलब लेता है। वह मतलब की बातें पकड़ लेता है। वह कहता है, किसी की शरण मत जाओ। तो वह कहता है, ठीक, यही तो हम कहते हैं, किसी की शरण जाने की कोई जरूरत नहीं है।

उस युवक ने देखा कि यह क्या हो रहा है! हजारों भिक्षु, और वे बुद्ध के चरणों में सिर रखते हैं, और कहते हैं, बुद्धं शरणं गच्छामि, बुद्ध की शरण जाता हूं। उस युवक ने बुद्ध के पास आकर कहा, माफ करिए! आप तो कहते हैं, अप्प दीपो भव; अपने प्रकाश स्वयं बनो; खुद खोजो सत्य को। और ये लोग क्या कर रहे हैं! ये कहते हैं, बुद्धं शरणं गच्छामि; हम बुद्ध की शरण जाते हैं!

तो बुद्ध ने कहा, तू पहले शरण जा, तभी तो तू हो पाएगा। अभी तू है ही नहीं। अभी जिसे तूने समझा है मैं, वही तो तेरे होने में बाधा है। उस मैं को हम तोड़ दें। हां, उस दिन मैं तुझे मना कर दूंगा कि अब शरण मत जा, जिस दिन तेरे भीतर कोई शरण जाने को न बचे। उस दिन मैं कहूंगा, अब शरण जाने की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन जब तक तेरे भीतर कोई शरण जाने के लिए बचा है, तब तक तू शरण जा। इन दोनों बातों में बुद्ध ने कहा, कोई विरोध नहीं है।

कृष्ण ने कहा है, शरण। कृष्ण की पूरी गीता का सार है, शरणागति।

महावीर ने ठीक उलटी बात कही है। महावीर ने कहा है, अशरण; किसी की शरण मत जाना। शब्द बिलकुल उलटे मालूम पड़ते हैं। लेकिन महावीर कहते हैं, अशरण तभी पूरा होगा, जब मैं न बचे। लेकिन मैं अगर भीतर है, तो अशरण कभी पूरा नहीं हो सकता।

तो कृष्ण भी यही कहते हैं, शरणागति से मैं मिट जाएगा। और तब तो शरण जाने को कोई नहीं बचता। किसकी जाओगे? कौन जाएगा? दोनों खो जाते हैं। बूंद सागर में गिर जाती है और एक हो जाती है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, जो शरण चला जाता है, वह सब कुछ पा लेता है।

साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः।
प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः।।30।।
और जो पुरुष अधिभूत और अधिदैव के सहित तथा अधियज्ञ के सहित सब का आत्मरूप मेरे को जानते हैं, वे युक्तचित्त वाले पुरुष अंतकाल में भी मुझको ही जानते हैं अर्थात प्राप्त होते हैं।

छोटा-सा सूत्र; आखिरी और बहुत कीमती।

कृष्ण कहते हैं, जो सब भूतों में मुझे ही जानते हैं, वे अंधकार में भी मुझे ही जानते हैं।

हम सबने सुना है कि परमात्मा प्रकाश-स्वरूप है। हम सबने सुना है कि परमात्मा जीवन-स्वरूप है। हम सबने सुना है कि परमात्मा आनंद-स्वरूप है। कृष्ण यहां कहते हैं, लेकिन जो मुझे सबमें देख लेता है, वह अंधकार में भी मुझे ही देखता है। वह दुख में भी मुझे ही देखता है, वह मृत्यु में भी मुझे देखता है।

और ध्यान रहे, जब तक मृत्यु में भी परमात्मा न दिखे, तब तक अमृत उपलब्ध नहीं होता है। और ध्यान रहे, जब तक दुख में भी परमात्मा न दिखे, तब तक आनंद उपलब्ध नहीं होता है। और ध्यान रहे, जब तक अंधकार भी प्रकाश न हो जाए, तब तक परमात्मा उपलब्ध नहीं होता है।

यह तो हम नासमझों की मांग है कि हे प्रभु, हमें अंधकार से प्रकाश की तरफ ले चल। यह तो हम नासमझों की मांग है। क्योंकि हम जिंदगी को दो हिस्सों में तोड़कर देखते हैं। हम कहते हैं, हे प्रभु, हमें मृत्यु से अमृत की ओर ले चल। हम कहते हैं, हे प्रभु, हमें भय से अभय की ओर ले चल। दुख से सुख की ओर ले चल, आनंद की ओर ले चल। ये तो हमारी प्रार्थनाएं हैं, उनकी प्रार्थनाएं, जिन्हें कुछ भी पता नहीं है, जो जिंदगी को दो टुकड़ों में तोड़ लेते हैं।

कृष्ण का वचन बड़ा अदभुत है। हम सबने सुना है ऋषि का वचन, अंधकार से प्रकाश की ओर ले चल। और कृष्ण कहते हैं, जो सब भूतों में मुझे देखते हैं, वे अंधकार में भी मुझे ही देखते हैं।

अगर ठीक प्रार्थना हो, तो वह ऐसी होगी कि हे प्रभु, अंधकार में भी मुझे तू दिखाई पड़े। दुख में भी तू मुझे दिखाई पड़े। मृत्यु में भी तू मुझे दिखाई पड़े। अमृत की मेरी चाह नहीं मृत्यु में भी तू मुझे दिखाई पड़े। आनंद की मेरी चाह नहीं; दुख में भी तू ही मुझे मिले। प्रकाश की मेरी मांग नहीं; अंधकार भी मेरे लिए प्रकाश हो।

यह मांग पहली मांग से ज्यादा गहरी है; और कृष्ण जो कहते हैं, उसके अनुकूल है। क्योंकि जगत में तत्व एक है, दो नहीं। और जिसे हम अंधकार कहते हैं, वह केवल प्रकाश का एक रूप है। और जिसे हम मृत्यु कहते हैं, वह अमृत का एक रूपांतरण है। और जिसे हम दुख कहते हैं, जिसे हम दुख जानते हैं, जिसे हम पीड़ा कहते हैं, संताप कहते हैं, वे भी आनंद की यात्रा के पड़ाव हैं। लेकिन यह हमें तब दिखाई पड़े, जब हम पूरे जीवन को कांप्रिहेंसिवली, इकट्ठा देख सकें।

हम तो खंड-खंड करके जीवन को देखते हैं। हमारी बुद्धि हर चीज को खंड-खंड कर देती है। बुद्धि का एक ही काम है, चीजों को तोड़ना। जोड़ना बुद्धि नहीं जानती। बुद्धि के पास जोड़ने का कोई भी उपाय नहीं है।

आज से एक हजार साल पहले सेलवीसियस नाम का एक ईसाई, कैथोलिक फकीर हिंदुस्तान आया। सेलवीसियस बहुत अदभुत आदमियों में से एक था। और बाद में वह कैथोलिक चर्च का पोप बना, हिंदुस्तान से लौटने के बाद। और जितने पोप बने हैं, उनमें सेलवीसियस का मुकाबला नहीं है। सेलवीसियस ने हिंदुस्तान के बहुत-से राज समझने की कोशिश की और हिंदुस्तान की धार्मिक साधना में गहरा उतरा। हिंदुस्तान के फकीरों ने उसे बहुत-सी चीजें भेंट दीं कि तुम ले जाओ।

एक फकीर ने उसे एक चीज भेंट दी, एक तांबे का बना हुआ आदमी का सिर भेंट दिया। वह सिर बहुत अदभुत था। एक बड़ी से बड़ी रहस्य और मिस्ट्री उस सिर के साथ जुड़ी है। उस सिर से कोई भी जवाब हां और न में लिया जा सकता था। उससे कुछ भी पूछें, वह हां या न में जवाब दे देता था। वह था तो सिर्फ तांबे का सिर, आदमी की एक खोपड़ी पर चढ़ाया हुआ। वह अदभुत था। सेलवीसियस ने हजारों तरह के सवाल पूछे और सदा सही जवाब पाए। पूछा कि यह आदमी मर जाएगा कल कि बचेगा? उसने कहा, हां, मर जाएगा, तो मरा। उसने कहा कि नहीं, तो नहीं मरा। न मालूम क्या-क्या पूछा और सही पाया।

सेलवीसियस बड़ी मुश्किल में पड़ गया। उस फकीर ने कहा था, लेकिन एक खयाल रखना, बुद्धि की मानकर कभी इस सिर को खोलकर मत देखना कि इसके भीतर क्या है। लेकिन जैसे-जैसे सेलवीसियस को उत्तर मिलने लगे, वैसे-वैसे उसका मन बेचैन होने लगा। उसकी रात की नींद खो गई। उसको दिनभर चैन न पड़े। कब इसको खोलकर देख लें, तोड़कर, इसके भीतर क्या है!

वह बामुश्किल हिंदुस्तान से जा पाया। रोम पहुंचते ही उसने पहला काम यह किया कि उसको तोड़कर, उसको खोलकर देख लिया। उसके भीतर तो कुछ भी न था। एक साधारण खोपड़ी थी। कुछ भी न मिला।

सेलवीसियस बहुत दुखी और परेशान हुआ। आज भी उस सिर के टुकड़े, टूटे हुए, वेटिकन के पोप की लाइब्रेरी में नीचे दबे पड़े हैं; आज भी। और भी बहुत-सी चीजें वेटिकन की लाइब्रेरी में दबी पड़ी हैं, जो कभी बड़ी काम की सिद्ध हो सकती हैं। सेलवीसियस बहुत रोया, बहुत पछताया, बहुत जोड़ने की कोशिश की। सब जोड़ा-जाड़ा। लेकिन जवाब फिर न आया।

बुद्धि तत्काल चीजों को तोड़कर देखना चाहती है कि भीतर क्या है। लेकिन भीतर जो भी है, वह सिर्फ जुड़े हुए में होता है, टूटे में नहीं होता। जिस चीज को भी हम तोड़ लेते हैं, उसकी होलनेस, उसकी पूर्णता नष्ट हो जाती है। और जीवन के सब रहस्य उसकी पूर्णता में हैं।

इसलिए विज्ञान कभी जीवन के परम रहस्य को उपलब्ध न हो पाएगा। क्योंकि विज्ञान की पूरी प्रक्रिया तोड़ने की है, एनालिसिस की है, विश्लेषण की है। चीजों को तोड़ते चले जाओ। इसलिए एटम तो मिल गया; आत्मा नहीं मिलती। एटम मिल जाएगा; वह तोड़ने से मिलता है। आत्मा नहीं मिलती; वह जोड़ने से मिलती है। विद्युत के कण मिल जाएंगे, इलेक्ट्रांस मिल जाएंगे, लेकिन परमात्मा नहीं मिलेगा। इलेक्ट्रांस तोड़ने से मिलते हैं; परमात्मा जोड़ने से मिलता है।

कृष्ण बड़े से बड़े जोड़ की बात कर रहे हैं। वे कह रहे हैं, अंधेरा और प्रकाश मैं ही हूं। जीवन और मृत्यु मैं ही हूं। सृष्टि और प्रलय मैं ही हूं। और जो सब भूतों में मुझे देखता है, वह एक दिन अंधकार में–उसमें भी, जो अप्रीतिकर मालूम पड़ता है–मुझे देख पाएगा।

और जिस दिन अप्रीतिकर में भी परमात्मा दिखाई पड़ता है, उस दिन क्या अप्रीतिकर बचता है? मेरा यह हाथ किसी को सुंदर मालूम पड़ सकता है। इस हाथ को तोड़कर सड़क पर डाल दें, फिर यह बिलकुल सुंदर नहीं मालूम पड़ेगा; बहुत कुरूप हो जाएगा। आपकी आंख किसी को सुंदर मालूम पड़ सकती है; निकालकर टेबल पर रख दें, तो दूसरा आदमी आंख बंद कर लेगा कि यह न करिए।

क्या, बात क्या है? आंख सुंदर होती है, जब शरीर की पूर्णता में होती है; अलग होकर कुरूप हो जाती है। हाथ सुंदर होता है, जब शरीर की पूर्णता में होता है; अलग होकर सिर्फ गंदगी और दुर्गंध फैलाता है।

यह पूरी जिंदगी, यह पूरा विराट एक है। और जब कोई इसे एक की तरह देख पाता है, तो वह परम सौंदर्य के अनुभव को उपलब्ध होता है। वही परम सौंदर्य भागवत सौंदर्य है। वही डिवाइन ब्यूटी है।

लेकिन हम तो सब टुकड़ों में देखते हैं; हम पूरे में तो कुछ नहीं देख पाते। वृक्ष को हम देखते हैं, तो सूरज को नहीं देख पाते, हालांकि सूरज और वृक्ष जुड़े हुए हैं। सूरज को देखते हैं, तो जमीन को नहीं देख पाते; हालांकि जमीन और सूरज जुड़े हुए हैं। रात देखते हैं, तो दिन को नहीं देख पाते; हालांकि दिन और रात एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। प्रकाश देखते हैं, तो अंधेरा खो जाता है। अंधेरा देखते हैं, तो प्रकाश नहीं होता; हालांकि दोनों एक-दूसरे के पहलू हैं।

आदमी कितना कमजोर है, कभी आपने खयाल किया है! एक छोटे-से नए पैसे को हाथ में लेकर कभी आपने कोशिश की कि दोनों पहलू एक साथ देख लें? तब आपको पता चलेगा, आदमी कितना कमजोर है। एक छोटे-से सिक्के के एक पैसे के दोनों पहलू आप एक साथ नहीं देख सकते। जब एक पहलू दिखाई पड़ता है, तब दूसरा खो जाता है। जब दूसरा दिखाई पड़ता है, तो पहला खो जाता है।

इसलिए जो बहुत तर्क में गहरे उतरते हैं, वे कहते हैं कि जब किसी ने आज तक देखे ही नहीं दो पहलू एक साथ, तो यह कहना कहां तक उचित है कि पैसे में दो पहलू होते हैं? क्या पता, नीचे का पहलू बचा हो अब तक न बचा हो! क्या पक्का है? अनुमान है सिर्फ कि नीचे भी पहलू होगा। होगा या नहीं होगा, क्या पता!

आदमी की बुद्धि पूरे को नहीं देख पाती; दि होल, वह जो पूर्ण है, नहीं देख पाती। आदमी की बुद्धि खंड-खंड करके देखती है। खंड-खंड में सब सौंदर्य खो जाता है, खंड-खंड में सब चेतना खो जाती है, खंड-खंड में सब सत्य खो जाता है। असत्य के टुकड़े ही हाथ में लगते हैं--असुंदर, कुरूप।

कृष्ण कहते हैं, जो सब भूतों में मुझे देखेगा।

सब भूतों में देखना शुरू करें। वर्षा में, बादल में, सूरज में, पानी में, दुख में, सुख में, मित्र में, शत्रु में--देखना शुरू करें। शब्द में, मौन में--एक को ही देखना शुरू करें। और तब एक दिन जरूर वह घटना घटती है कि विपरीत नहीं रह जाता, द्वैत नहीं रह जाता, दो नहीं बचते, एक ही बचता है।

और जिस दिन प्राणों के सामने एक ही बचता है, उस दिन ऐसी छलांग लगती है कि एक नए आयाम में, एक नए जगत में प्रवेश हो जाता है। फिर आप वही नहीं होते, जो आप कल तक थे। सब कुछ वही होता है, फिर भी सब बदल जाता है। आप दूसरे ही आदमी हो जाते हैं। आपका नया जन्म, आप रि-बॉर्न, पुनर्जन्म को उपलब्ध हो जाते हैं। यह पुनर्जन्म शरीर का नहीं, आत्मा का। यह आत्मा नई होकर प्रकट होती है।

यह कृष्ण ने पूरा का पूरा विज्ञान आत्मा के नए जन्म को देने के लिए कहा है। आखिरी में शरण को याद रखना कि परमात्मा पर छोड़ देना है सब।

और दूसरी बात, अनुकूल में तो दिखाई ही पड़ेगा परमात्मा, प्रतिकूल में भी परमात्मा को देखने की खोज जारी रखना। जो खोजता है, वह पा लेता है। सिर्फ वे ही वंचित रह जाते हैं, जो कभी खोज पर ही नहीं निकलते हैं। और कृष्ण जो कह रहे हैं, जितना कहने से कहा जा सकता है, उतना वे कह रहे हैं। लेकिन कुछ है, जो चुप होकर ही जाना जा सकता है।

दस दिन तक निरंतर मैं आपसे बात कर रहा था। अब मैं चाहूंगा कि दस दिन कम से कम एक घंटे--दस दिन मैंने आपसे बात की--दस दिन आप इस गीता ज्ञान यज्ञ को और जारी रखना अपने घर पर। एक घंटा रोज अब आप चुप बैठ जाना। और जो मैंने आपको कहकर समझाया है, और समझ में न आया होगा, वह उस एक घंटे की चुप्पी में आपकी समझ में उतरेगा और गहरा होगा।

यह गीता ज्ञान यज्ञ आज समाप्त नहीं होता। आज सिर्फ गीता ज्ञान यज्ञ शब्द से समाप्त होता है, मौन से शुरू होता है। कल से आप दस दिन कम से कम एक घंटा मौन में बिता देना।

सुना है मैंने, एक अमेरिकन यात्री एक पहाड़ की यात्रा पर गया था। बड़ी मुश्किल में पड़ गया। गांव में कई लोगों से उसने बात करने की कोशिश की, लेकिन किसी ने कोई जवाब न दिया। सांझ को कुछ लोग एक कुएं की पाट पर बैठे थे, तो वह भी जाकर बैठ गया। उसने दो-चार दफे बात चलाने की कोशिश की। लोगों ने देखा, लेकिन चुप ही रहे। फिर उसने पूछा कि क्या मामला है? क्या इस गांव में कोई कानून है बोलने के खिलाफ? बोलते क्यों नहीं हो? इज़ देअर एनी ला अगेंस्ट स्पीकिंग?

फिर भी थोड़ी देर चुप रहे लोग। फिर एक बूढ़े ने उससे धीरे से उसके कान में कहा, देअर इज़ नो सच ला हियर, बट अप हियर पीपुल स्पीक ओनली व्हेन दे फील दैट बाई स्पीकिंग दे कैन इम्प्रूव अपान साइलेंस। तभी बोलते हैं, जब उन्हें लगे कि बोलने से मौन के ऊपर कुछ कहा जा सकता है; अन्यथा नहीं बोलते।

हमने कभी खयाल ही नहीं किया है। तो यहां तो समाप्त हो जाएगा। आप दस दिन मौन में बैठना एक घंटा, और उस घंटे में मैं फिर आपसे बोल सकूंगा; लेकिन वह बोलना बहुत गहरा हो जाएगा। और उस दस दिन के मौन में आप वह जान पाएंगे, जो शायद शब्द से न जान पाए हों।

शब्द से बहुत थोड़ा कहा जा सकता है; मौन से बहुत ज्यादा कहा जा सकता है। शब्द से बहुत कम समझा जा सकता है; मौन से बहुत ज्यादा समझा जा सकता है। क्योंकि शब्द बुद्धि का उपकरण है; और बुद्धि तोड़ देती है। और मौन अखंड है; तोड़ता नहीं, जोड़ देता है।